मीराँ प्रेम दीवानी

(उपन्यास)

लेखक

रामचंद्र ठाकुर

वोरा ॲन्ड कम्पनी पब्लिशर्स लिमिटेड

३, राउन्ड बिल्डिंग, बम्बई २.

प्रथम संस्करण

मूल्य रु. ५)

मुद्रक:- भाल मलजी, लिपिका प्रेस, कुर्ला रोड, अंधेरी.

प्रकाशक:-एम. के. वोरा, वोरा ऐण्ड कंपनी, पब्लिशर्स लि०,
३, राउण्ड बिल्डिंग, कालबादेवी रोड, बम्बई-२

भूमिका

हिन्दुस्तान के दुर्भाग्य से उसके श्रेष्ठ कवि–कलाकारों ने अपने जीवन को अपनी कला में विशेष उल्लिखित नहीं होने दिया। इतना ही नहीं, उनकी कला के रसिकों और भोक्ताओं ने उनकी जीवन कला में या उनकी मृत्यु के बाद उनका अत्यन्त गुणानुवाद किया है—परन्तु यह सब केवल उनकी कला ही का। उनके जन्म, जीवन और मरण के समय को लेखों में संग्रह कर रखना इन्हें कभी महत्त्वपूर्ण मालूम न हुआ।

फल स्वरूप संवत् चलाने वाले चक्रवर्ती महाराज विक्रम सरीखे राजा और अद्वितीय कवि कालिदास जैसे महाकवि, अजन्ता की गुफाएँ तैयार करने वाले कलास्वामी अथवा दुःख और जुल्म के सामने प्रेम से हँसते हँसते जीनेवाली मीराँ जैसे सन्त-भक्तों के निजी जीवन इतिहास के पृष्ठों पर अधूरे, अर्धसत्य या नहीं के बराबर अंकित हैं।

मीराँ, गुजरात की प्रथम कवयित्री मीराँ, वैष्णवों की प्रथम स्त्री–सन्त मीराँ, मेवाड़ और मारवाड़ की अेक और अद्वितीय मीराँ जीवित रही, मरी और पदावलियों में जीवित रह गई—दन्त कथाओं और कपोल कल्पित अनेक बातों के पीछे।

जन्म–समय

मीराँ के समय से सबसे अधिक निकटका ग्रन्थ है: नाभाजी कृत भक्त-माल। भक्तमाल लिखा गया संवत १६१२ में। भक्त मीराँ की इसमें बहुत ही प्रशंसा की है:

सदृश गोपिन प्रेम प्रकट कलजुगहि दिखायो ।
निरंकुश अति निडर रसिक जस रसना गायो ॥
भक्ति निसान बजाय के काहू तें नाहीं लजी ।
लोकलाज कुलश्रृंखला तजि मीरां गिरधर भजी ॥

परन्तु इसमें मीराँ की जन्म तिथि या मरण तिथि नहीं। प्राचीन गुजराती साहित्य के गहरे अभ्यासी सद्गत श्री इच्छाराम देसाई और श्री जयसुखलाल जोधपुरिया मीराँ की जन्मतिथि १४०३ में मानते हैं। "महाजन मंडल" और "सती मंडल" वाले मीराँ का जन्म १४२५ मे रखते हैं परन्तु मारवाड़ी रियासत का अविरत अभ्यास कर ऐतिहासिक असत्यों को दूर करनेवाले मुंशी देवी प्रसादजी और राजस्थानी इतिहास के आधुनिक श्रेष्ठ आधार भूत व्यक्ति महामहोपाध्याय गौरी शंकर ओझा खूब जाँच पड़ताल करने के बाद मीराँ का जन्मकाल १४६८ से १५०५ के भीतर ठहराते हैं। जब कि बाबू कार्तिक प्रसाद मीराँ का जन्म निश्चित रूप से १४६६ मानते हैं।

जन्म स्थान

मीराँ बाई ने अपने पदों में एक स्थान पर लिखा है.

पीहर म्हारो मेड़तो रे सासरियो चित्तौड़

पुराने लेखों में मेडन्तकपुर नाम के नगर का उल्लेख है। जोधपुर से लगभग पैंतीसेक मील दूर परमार राजा मान्धाता ने मान्धाश्रीपुरी नगर बसाया—इसी का अपभ्रंश यह मेडन्तकपुर, मेड़ता।

राठौड़ राव जोधाजी ने अपने बाहुबल से जोधपुर नगर बसाया। उनके एक पुत्र राव बीकाजी ने बीकानेर की गद्दी स्थापित की और उनके दूसरे पुत्र राव दूदाजी ने (१४४०-१५१५) अजमेर के सूबेदार को हराकर मेड़ता प्रान्त

छीन लिया और वहाँ नये सिरे से मेड़ता नगर बसाया। उनकी शाखा के राठौड़ ने "मेड़तिया राठौड़" नाम से बहुत प्रसिद्धि पाई।[1]

राव दूदाजी के चार पुत्र थे (या दो?) उनमें से एक पुत्र रत्नसिंह को बाजोली, कुड़की इत्यादि बारह गाँवों की जागीर दी हुई थी। इस जागीर के मुख्य गाँव कुड़की * में राव रत्नसिंह की रानी की कोख से सन् १४६८ के आसपास मीराँ बाई का जन्म हुआ।

और दूदाजी के उत्तराधिकारी राव वीरमदेव के यहाँ अकबर का गर्व खंडित करने वाला वीर राठौड़ जयमल पैदा हुआ।

ऐतिहासिक रूपरेखा

मीराँबाई के बाल्यकाल में ही उनकी माता का देहान्त हुआ इस से मीराँ दादा दूदा के पास रहने लगीं। राव दूदाजी पक्के वैष्णव थे। श्री चतुर्भुज जी का मनोहर मन्दिर अभी भी मेड़ता में उनकी साक्षी देता हुआ खड़ा है। मेड़तिया राठौड़ मन्दिर में विराजे हुए चतुर्भुजजी को अपना इष्ट देव मानते थे। द्वारका, वृन्दावन और जगन्नाथ जी की यात्रा में निकले हुए साधु सन्यासी और वैष्णव भक्त मेड़ता में बहुत आदर पाते। कहा जाता है कि यात्रा में निकले हुए एक साधु के पास कृष्ण की एक सुन्दर मूर्ति देखकर मीराँ ने उसे लेनेका हट किया। और साधु ने उसे देने से इन्कार किया परन्तु बाद में बाबा को सपना आया इसलिए मीराँ को अवतारी 'महा-आत्मा' समझ कर जाते समय देता गया। ये ही मीराँ के गिरिधर गोपाल थे। इस मूर्ति को उन्होंने जीवन पर्यन्त पूजा। जयपुर की प्राचीन राजधानी आमेर में जगत् शिरोमणि का नया नाम देकर इन गिरिधारी लालजी की मूर्ति की पुनः

---

१ जान मां ऊदा मरण मां दूदा। अर्थात् विवाह प्रसंग में उदयसिंह के राठौड़ अच्छे और प्राण देने के लिए दूदा के मेड़तिये राठौड़ उत्तम।

* मुंशी देवी प्रसाद एक स्थान पर चोकडी बतलाते हैं।

स्थापना हुई। सन् १५७७ में चित्तौड़ जीतने के बाद राजा मानसिंह उस मूर्ति को आमेर ले गये थे ऐसा कहा जाता है। १

चाहे जो हो, परन्तु कृष्ण का रात दिन पूजन अर्चन करते हुए दूदाजी को मीराँ बाल्यकाल से ही देखने लगी। कृष्ण-प्रेम के बीज मीराँ के हृदय में बचपन से ही गिरे और स्नेही दादाजी की छत्रछाया के नीचे दिनों दिन बढ़ने लगे।

मीराँ के पिता रत्नसिंह युद्धों में उलझे रहने से मीराँ दादाजी की लाडली बन गई। राजकन्या के अनुरूप सारी शिक्षा और संस्कार मीराँ ने वहीं प्राप्त किये। अमर हो जाने के कारण सन् १५१६ के आसपास मेवाड़ के वीर राणा संग्रामसिंह जी (साँगा) के ज्येष्ठ पुत्र कुँवर भोजराज के साथ उनका विवाह हुआ। मीराँबाई अपने कुलाचार के अनुसार ससुराल आकर रहने लगीं, परन्तु उनका वैवाहिक जीवन अधिक न टिका। विवाह के बाद पाँच सात बरस के अन्दर राणा साँगा के जीते जी ही युवराज भोज का शरीरान्त हो गया। पूरी जवानी अनुभव करने का समय आते आते तो मीराँ विधवा हो गईं।

और, मानों उन्हीं के अनिष्ट रूप से हुआ हो, मेवाड़ पर एक के बाद एक आपत्ति आने लगी। रणक्षेत्र में कभी न हारने वाला, बड़े बड़े छत्र-धारियों का गर्व मिट्टी में मिला देने वाले, वीरता और विजय के चिह्नरूप अस्सी अस्सी घाव अपने शरीर पर धारण करने वाला महापराक्रमी राणा साँगा शिलादित्य नाम के एक कुलांगार के कपट से मुगल शाह बाबर के सम्मुख हारा और मुँह नीचा कर चित्तौड़ में बैठने के बदले उसने बाहर ही संघर्ष करते करते मृत्यु को निमंत्रण दिया।

---

१ फतहपुर जिले में गंगातट पर स्थित शिवराजपुर में जो मूर्ति है वही मीराँ के गिरिधारीलाल हैं ऐसा कानपुर के और युक्त प्रान्त के कई एक प्रसिद्ध लोग कहते हैं।

राणा का दूसरा पुत्र रत्नसिंह गद्दी पर आया, परन्तु अन्दरूनी अदावत का शिकार बन कर साँगा के नाम को लजाते हुए थोडे ही समय तक राज्य कर के मर गया। उसके बाद साँगा का तीसरा पुत्र विक्रम, हाडी रानी करमैती का सब से बडा पुत्र, गद्दी पर आया। विक्रम बहादुर था परन्तु खुशामद परस्त और हलकी वृत्ति के निम्न कोटि के लोगों में ही फँसा रहता। मीराँबाई को अनेक प्रकार से दु ख देने वाला और उनके पदों में यदाकदा आने वाले जिस क्रूर और घातक राणा का उल्लेख आता है, वह यही राणा विक्रम था।

बचपन से मीराँ को कृष्ण की–अपने गिरिधारी की–लौ लगी थी। अचानक वैधव्य आ पड़ा इसलिए मीराँ के हृदय मे धीरे धीरे पलता हुआ अतृप्त संसारिक प्रेम उनके गिरिधारी लाल के प्रेम और भक्ति मे रूपान्तरित हो आया ...दिन बीतने पर मीराँ की प्रेम भक्ति राजमहल मे ही बंधी न रह सकी। मेडता की तरह चित्तौड के राजमहल में भी साधु, संन्यासी, और वैष्णव यात्रियों की जमात जमने लगी। सूर्यवंशी राणा के राजमहल के लिए यह नई और अशोभनीय बात थी। राणा ने मीराँ की प्रवृत्तियो का विरोध किया। क्लेश बढ़ने लगा; परन्तु कृष्ण के प्रेम में अपनेपन को सम्पूर्ण भूली हुई मीराँ को तो कोई किसी तरह रोक न सका। अन्त मे मीराँ को मार डालने के उपाय खोजे गये; परन्तु वे भी निष्फल। मीराँ राज्य के दाँवपेंच और संसार के क्लेशों से तंग आकर वृन्दावन गईं—वहाँ भी उनके हृदय को शान्ति न मिली। आखिरकार मेवाड़ और मारवाड़ को सदा के लिए त्याग कर उन्होंने द्वारका में निवास किया।

कहा जाता है कि इस अर्से में युद्धों और अकालों से पीड़ित प्रजा के अतिशय आग्रह से राणा के नाम मीराँबाई को पुनः मेवाड़ पधारने की विनती की गई। मीराँ द्वारकानाथ की आज्ञा लेने मन्दिर में गई और भगवान ने उन्हें मेवाड़ न जाने देकर अपने अंग में समा लिया। तात्पर्य यह कि मीराँबाई मेवाड़ न गईं परन्तु अदृश्य हो गईं—या अदृश्य रहीं।

इतिहास की इतनी कम सामग्री मीरॉबाई के जीवन के लिए इस समय उपलब्ध है।

मीराँ का प्रेम

स्थूल वासना रहित 'परकीया' प्रेम का प्रचार करने वाले चैतन्यदेव या जयदेव की मीराँबाई अनुयायी नहीं थीं। गीतगोविन्द और भागवत उन्होंने नहीं पढ़े थे यह तो कहा ही नहीं जा सकता। वृन्दावन जाकर जीव गोसाईं या रूप गोसाईं से वे मिलकर आई थीं यह भी हम कबूल करते हैं। परन्तु वे किसी भी आचार्य की दीक्षा लेकर उसके सम्प्रदाय के अनुसार नहीं चली थीं।

तो भी उनका कृष्ण प्रेम पूर्ण रूप से चैतन्य की तरह 'परकीया' था। अन्तर केवल इतना ही है कि प्रभु को सबका मानने के बदले अपनी अकेली के ही पति रूप में मीराँ ने उसका अधिक विचार किया है। कृष्ण की विरह-वेदना में वह उन्मत्त बनती है, आत्मवेदना में वह रोती है। अपना होकर भी अपने से दूर रहनेवाले अपने गिरिधर गोपाल को अनेक तरह से रिझाती, आक्रन्द करती प्रार्थना करती हुई उसे अपने पास खींच लाने के लिए मीराँ रात दिन व्याकुल है। एक बार उसके साथ बातें करने का उसे चाव है। कभी कभी वह अति निराश हो आती है तो कभी कभी आशाभरी बाट देखती है। कभी वह आत्मानन्द में मस्त बनकर डोलती है—और गाती है तो कभी चुप रहकर आँसू बहाती है। परन्तु उसका गिरिधारी उससे दूर ही रहता है। मीराँ धीरज नहीं छोड़ती। कभी कभी अपने प्रभु के प्रति रोष भी लाती है, कभी कभी उपालम्भ भरे शब्दों का भी उच्चारण कर देती है। परन्तु उसके प्रत्येक शब्द के पीछे उसका अचल प्रेम चमकता रहता है।

पदावली की मीराँ और मीराँ का प्रभु

मीराँ कन्हैया को अपना पति मान चुकी है। उसकी प्रीति 'पूर्वजन्म की' है। सांसारिक भावों से वह उसकी याचना करती है, पूजती है। उसे श्रृंगार कराती है, भोग लगाती है गाती है और नाचती है।

'पचरंग चोला' धारणकर वह फाग खेलने जाती है। कृष्ण कन्हैया सब का नहीं ऐसा वह नहीं कहती, परन्तु वह उसका अपना है ऐसा निश्चय मानती है और जीती है। किसी का 'पिया परदेस' बसता है परन्तु उसका पिया उसके हृदय मे बसता है। 'प्रेम भट्ठी का मद पी-पी' दिनरात वह मस्त बनी घूमती है। उसका कृष्ण सगुण भी है और निर्गुण भी। गोपियों का है और उसका अकेली का है। वह लौकिक है और अलौकिक है। वह हँसता है और रुलाता है। वह उसे प्रेम की कटारी मारता है और दुखडे भी देता है। आधी रात की उसकी मुरली उसे सोते हुए जगा देती है। बाल-स्वरूप मे कृष्ण बालकुमारी मीराँ का वस्त्र खींचता है और उससे प्रीति लगाता है। बडा होनेपर मोह के बाण मारकर नागरनन्द भाग जाता है और मीराँ उसके मुकुट पर मुग्ध होकर बिचार मे पडती है। समय बीतता है, डूँगरों पर मीरो का बारीक स्वर छिडता है। 'सावन की बदरिया' बरसती है और कन्हैया के मुखडे की जिसे माया लगती है उस मीराँ के, कृष्ण दिखाई न पड़ने से, 'दरस बिन' नैन दुखने लगते हैं। पत्तों की तरह पीली पडती है और लोग कहते है कि 'पिडरोग' हो गया है। मीराँ दर्द दीवानी बनती है, परन्तु कोई उसका दर्द जान नहीं सकता। 'बावल बैद' बुलाया जाता है परन्तु उसका रोग कोई जान नहीं सकता। उसे अपने कन्हैया को एक बार अपने सामने देखना है बुलाना है और उससे बातें करनी हैं। उससे मिलने के लिए उसने छिप छिप कर लंघन किये है। परन्तु कन्हैया आता नहीं, बोलता नहीं।

यों, पिया बिन उसका देश सूना हो पड़ता है। रात और दिन वह उसकी विरह में तड़पती है। कन्हैया के लिए उसने 'सब सुख' छोड़ दिये हैं उसका तड़पता हुआ हृदय अन्त मे पुकार उठता है—ऐसी लगन लगाय कहाँ तू जासी.. ...

परन्तु मीराँ तब तक न मानेगी जब तक वह बोल न ले।

कठिन लगन की प्रीति मीराँ जानती है। आखिर रंग बिरंगी चुनरी त्याग कर वह काला कम्बल धारण करती है, जिसे और दूजा रंग न लगे।

ना, ना, उससे भी आगे बढती है। चूड़ियाँ फोड कर, माँग बिखेर कर, आँखों का काजल धोकर, चीर फाडकर और गले में माला डालकर वैरागिन बनने का निश्चय करती है।

अरे! यह भी नहीं। 'अपने हाथ' 'अगर चन्दन' की चिता बनाकर स्वयं भस्म की ढेरी बनने को तैयार होती है, परन्तु वापस विचार आता है; वह एक बार कृष्ण से बात किए बिना भस्म हो जाये? नही।

मौन धारण किये हुये कृष्ण (गिरिधर गोपाल की मूर्ति) के पास वह पुनः आती है। उसे देखती रहती है और इस मोहिनी मूरत को देखते ही मीराँ का सारा रोष समाप्त हो जाता है। कृष्ण के मुँह पर से नजर हटा कर मीराँ उसके चरणों की ओर दृष्टि उतारती है—यही—इसी चरण से गंगाने प्रकट होकर भगीरथ के कुल को तारा! इसी चरण के प्रताप से कंगाल सुदामा कोट्याधीश बने और इन्हीं चरणों ने अहल्या का उद्धार किया! मीराँ का मन और हृदय पुनः उन्ही चरणकमलों मे लिपट जाते हैं।

फिर मीराँ, लोगो को दिल खोल कर दीपक प्रकट करने को कहती है। इसी काया में बाटिकाएँ हैं और भीतर मोर बोलते हैं। इसी काया मे सरोवर हैं और भीतर हंस किलोलें करते हैं। इसी काया में हाटें हैं और भीतर अपार बणिज व्यापार करने के लिए मीराँ सबको उकसाती है।

और इतने ही के लिए खुद गोविन्दाको बिना मोल लिए बैठी है। कोई कन्हैया को सस्ता कहता है कोई मँहगा, कोई हलका, कोई भारी परन्तु मीराँ ने तो वृन्दावन की कुंज गलियों में ढोल बजा कर खरीदा है। इस खरीदे हुए नटखट को मीराँ पुनः पहले को तरह नहलाती है। शृंगार सजाती है और थाली परोस कर ठाकुर को पुकारती है। प्रेम के प्यासे प्रभु को कंगाल दासी मीराँ बिना रबड़ी-पूड़ी की सूखी थाली पर आमंत्रण देकर अपनी आशा पूरी करने की प्रार्थना करती है।

परन्तु प्रभु गिरिधर नागर पधारते नहीं। बोलें तो काहे के?

समय निकलता जा रहा है।

साँवरिया की कठोरताएँ मीराँ भली भाँति जानती है तो भी हरि को अपनी बाँह ग्रहण करने के लिए एक सी याचना करती रहती है। मीराँ थकती नहीं। पर शरीर अब थकने लगा है। कन्हैया के चरणों मे पड़ कर वह अरज करती है कि हरि बिना कौन गति ? परन्तु हरि मौन भंग नहीं करता। हाजिर-नाजिर कब की खड़ी मीराँ दीनानाथ को पलकें खोल कर उसे देखने की विनती करती है। सारे सगे-सम्बन्धियों को दुश्मन और अकेले हरिको ही साजन बनाकर बैठने वाली मीराँ समुद्र के बीच डोलती हुई नैया में बैठी है। दिन में चैन नहीं, रात मे नींद नहीं। हृदय मे विरह के बाण से घायल हुई खड़ी खड़ी सूखती जाती है। पत्थर की अहिल्या को तार दिया तो उसमे कितना भार था ? परन्तु मेरा स्नेही कृष्ण, कुछ भी न बोलने का निर्णय करके मूर्ति में बैठा है।

पिया के कारण मीराँ पीली पड गई है, "उँगली की मुँदरी" हाथ में आ जाय ऐसी सूख गई है। भले ही शरीर सूख जाय—जो हठ किया है वह किया है—देहं पातयामि कार्यं साध्यामि वा !

तो भी मीराँ का प्रभु उसे दर्शन नहीं देता।

जैसे जल बिना कमल, और चाँद बिना रात होती है वैसे ही कृष्ण के बिन मीराँ व्याकुल व्याकुल हुई दिनरात फिरा करती है। भूख नहीं लगती। नींद नहीं आती। मुँह से किसी को कह नहीं सकती। कहा कैसे जाय यह उसे मालूम नहीं। क्या करने से यह दिल की जलन शान्त हो ? अधिक न सताई जाने के लिए अन्तर्यामी के पैरों पड़ कर जन्म की दासी पर कृपा कर उसे मिल जाने के लिए मीराँ आक्रन्द कर चुकती है। परन्तु...कन्हैया नहीं बोलता।

मन्दिर पुराना होने को आया। काया का गढ़ डोलने लगता है। दाँत गिर गये हैं। हंस (आत्मा) उड़ने की तैयारी करने लगा है। मीराँ अधिक

श्रद्धा से, अधिक आर्द्र कंठ से गोवर्धन गिरिधारी से प्रार्थना करती है; तुम बिना मेरी कौन खबर ले ? द्रोपदी की लज्जा रक्खी थी अब मेरी रक्खो......

कन्हैया थकता है—मौन रह रह कर। आखिर नन्दनन्दन गिरिधारी, मीराँ का प्यारा, एक शुभ दिन उसके घर आता है। मीराँ के तन का ताप मिटता है और हिलमिल मंगल गाती है। उसके हृदय मे आनन्द छा जाता है। मीराँ पागल हो उठती है। उसकी आँखें हर्षाश्रु से बहने लगती हैं। 'अपने' प्रभु से मिलते समय मीराँ मगन हो जाती हैं क्यों कि उसके इस भव का दर्द मिट जाता है।

मीराँ गाती है:—

चँद कूँ निरखी कमोदणि फूले
हरखि भया मेरी काया जी
रग रग सीतल भई मेरी सजनी
हरि मेरे महल सिधाया जी।
सब भगतन का कारज कीन्हा
सोई प्रभु मैं पाया जी
मीराँ बिरहिणी सीतल होई
दुख दुंद दूर नसायाजी ॥

सचमुच ! दुःख द्वन्द्व को जीत कर मीराँ राधाभाव से 'परकीया' प्रेम में अपने प्रभु को प्राप्त करती है।

स्वीकार

मीराँ-पदावलियों में दिखाई देने वाली, ऐसी मीराँ को उपन्यास के प्रकरणों में बाँधने का मैंने प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न पाठक के हृदय को यदि एक-सा खींच सकेगा तो इसका खास कारण मीराँ है और मीराँ को लिखाने वाले, इस पुस्तक के चेतनाप्रेरक प्रकाशक श्री. नन्दलाल बोडीवाला हैं, मैं नहीं।

व्याकरण की व्यवस्थित सीमाओं को हमेशा लाँघ जाने वाले मुझ को कब्जे में रखकर सीधे रास्ते पर चलाकर मेरे साथ साथ दौड़ने के लिए इस पुस्तक के प्रुफ़ देखने वाले और कई प्रकारके महत्त्वपूर्ण सुधार कराने की सूचना देने वाले प्रो० मुरली ठाकुर का, और मीराँ-साहित्य इकट्ठा करके देने-वाले श्री अरविन्द शास्त्री का मैं बहुत ऋणी हूँ।

मैंने अनेक पुस्तकों का आधार लिया है, उनमे मुन्शी प्रेमचन्द की एक कहानी भी आ जाती है। अन्तिम प्रकरणों मे एक प्रमुख परिशिष्ट श्री लक्ष्मी नारायण आचार्य का आभारी है।

एन. एम. ठक्कर कम्पनी वाले श्री नन्दलालभाई तो मेरे प्रत्येक लेखन के जिम्मेदार बन गये हैं......

मैंने यथाशक्ति मीराँ के पदों को राजस्थानी रंग में रखने का प्रयत्न किया है।

जनवरी, १९५६
गोपाल-निवास,
बम्बई-२

रामचन्द्र ठाकुर

सूची

वरराजा

मेड़ता के राव दूदाजी के राजमहल में बड़ी खलबली मच रही थी। विनम्र जवान दासियों और गंभीर प्रौढ़ा दाइयों ने महल के कोने कोने में, ऊपर-नीचे, चौतरफ खलबली में भागदौड़ कर रक्खी थी।

पहली दासी पूछती—मिलीं?

दूसरी हाँफती-हाँफती जवाब देती—ना।

और शीघ्र ही फिर ये दोनों दौड़तीं।

आखिरकार, महल की सब से पुरानी और सब से बूढ़ी दाई रतन ने थक कर चौक के बीचों-बीच खड़ी होकर पुकारा—

"मीराँ बाई? ओ........मीराँ बाई?"

शीघ्र ही महल की पचासों दासियों ने रतन की आवाज़ मे आवाज़ मिलाई और एक पर एक पुकार लगाती हुई दौड़ने लगीं—मीराँ बाई! ओ मीराँ बाई! माँ बुलाती हैं!—मीराँबाई!

परन्तु,

निरी पाँच साल की मीराँबाई का कहीं पता न लगा। ऊपर झरोखे में हंसा ठकुरानी अतिशय क्रोध में खड़ी थीं। रतनदाई हारी-थकी, उदास मुँह, अन्त मे उन के पास आ खड़ी हुई।

"मिली? यह भी कोई लड़की है?" क्रुद्ध होकर रतन को देखते हुए ठकुरानी बोलीं। रतन चुप रही।

झरोखे के नीचे मेड़ता के राजमहल के मुख्य द्वार के पास वरघोड़ा लगभग आ पहुँचा। मेड़ता के मोची महाजन का सात वर्ष का इकलौता बेटा

एक छोटे से टट्टू पर बैठा पाँच साल की बहूरानी को गाजों-बाजों के साथ लिए घर लौट रहा था। वरराजा कोई अशोभनीय पराक्रम न कर बैठे, इसलिए वरराजा के दो काका टट्टू के दोनों ओर उस के पागडे पकड़े हुए चल रहे थे। टट्टू के पीछे-पीछे आनेवाले म्याने मे घूँघट निकाल कर बैठी हुई पाँच साल की बहूरानी जरूर कुछ खा रही थीं, क्योंकि उन का मुँह बंद था और इस से उन के हृदय का भाव व्यक्त करने का समय अभी नहीं आया था। वरघोडे के आगे बजनेवाले बाजे ब्याह के इच्छुक तरुण हृदयों को और समस्त वातावरण को विचित्र आनन्द की खुमारी से भर रहे थे।

'मरी' रतनदाई का तकिया-कलाम था। हर रोज के सौ सौ बार 'मरी' 'मरी' शब्दों को सुनने पर भी मरने का जरा भी विचार नहीं करती। आज सुबह इस 'मरी' रतन ने मीराँबाई के सामने मोची के वरघोडे की बात की थी, इसलिए सुबह से ही मीराँबाई हंसा ठकुरानी को तंग करने लगी। न जाने रतन ने मीराँ को क्या समझा दिया था कि वर-बहू देखने की मीराँ ने अटल जिद पकड ली थी।

और अब, जब कि वरघोड़ा राजमहल के आगे आ पहुंचा था, हंसा ठकुरानी की इकलौती बेटी का कहीं पता नहीं लग रहा था। ठकुरानी का क्रोध अन्त में फूट निकला और बरसा इस मरी रतन पर। मीराँ के पिता को भी गोद खिलानेवाली वयोवृद्धा रतनदाई मे पुरानी राजपूती की खुमारी और सहज विनोद-वृत्ति भी थी। उसका प्रभाव हरेक पर था। उस मे राव, ठाकुर या ठकुरानी के चाहे जितने क्रोध को सहन कर लेने का माद्दा था। वरघोड़ा देखने का समय हाथ से निकल रहा था। अपनी बेटी का स्वभाव अपने समान समझतीं थीं, इसलिए, हंसा ठकुरानी ने क्रोध ही क्रोध में सौवीं बार (या हजारवीं बार!) रतन दाई को अपने गाँव चले जाने को कहा और किसे पता और भी बहुत कुछ कहा, परन्तु नीचे वरघोडे के बाजे इतने जोर से बजने लगे थे कि ठकुरानी की आवाज़ उस मे डूब गई और क्रोध में मात्र उन के होंठ ही फड़कते हुए दीखे। रतन सिर नीचा किए हुए खडी थी। एकाएक उस की नज़र

एक जगह पर पड़ी, उस ने चौक कर सिर ऊँचा किया और जोश मे कुछ कहने लगी, परन्तु वरघोडे के बाजों मे उसकी आवाज़ भी डूब गई और मात्र उसके होठ ही हिलते हुए दिखाई दिये।

ठकुरानी की नज़र फिर रतन पर पडते ही उनको बहुत क्रोध आया। समझ बैठी कि इस खूँसट बुढिया की कोई नई शरारत है इसलिए जोर से बोलीं—"क्यो, बोलती क्यों नहीं ? जबान बन्द हो गई क्या ? आवाज़ तो निकाल ?"

"बाई" रतन ने होंठ फडकाये ! वह आगे भी बोली; परन्तु रतन का बोलना ठकुरानी सुन नहीं सकीं और ठकुरानी के शब्दों को वह समझ नहीं सकी। यह सोच कर कि ठकुरानी का क्रोध अधिक न भडक उठे, रतन ठकुरानी की तरफ थोडा हाथ का इशारा करके झरोखे की दूसरी तरफ सहज मुस्कराता मुँह करके ऐसी शान्ति से खडी रही और वरघोडा देखने लगी कि मानो कुछ हुआ ही नहीं।

हंसा ठकुरानी के क्रोध की अवधि आ गई। चीख मार कर ये मरी बुढ़िया को कुछ कहे इस से पहले ही उन की दृष्टि अचानक अपने पैर के पास पड़ी। जहाँ वे खड़ी थी उस से एक ही हाथ दूर झरोखे के कोने में झरोखे से बाहर सिर लटका कर 'पाँच' वर्ष की मीरी कभी की वरघोड़ा देखने मे तल्लीन हो गई थी।

ठकुरानी एकदम चुप हो गई। कुछ बोले बिना वे भी वरघोड़ा देखने लगीं।

झरोखे की दूसरी तरफ खड़ी रतन बुढ़िया धीरे-धीरे गुनगुना रही थी—बगल में पूत गाँव में ढिंढोरा! परन्तु अच्छा हुआ कि उस के शब्द कोई दूसरा न सुन सका।

मेड़ता के राव दूदाजी परम वैष्णव भक्त थे। उन्होंने अपने महल के बीचोंबीच एक छोटा-सा सुन्दर मन्दिर बना कर उसमें नन्हें गिरधारीलालजी

की सुन्दर मूर्ति विराजमान की थी। राव दूदाजी के विषय में यह प्रसिद्ध था कि:—

दूदाजी के हाथ में जब माला न होती तो तलवार होती और उस समय भय के मारे दुनिया काँप उठती।

दूदाजी के हाथ में जब तलवार नहीं होती तो तुलसी की माला रहती और उस समय दुनिया प्रेमभक्ति से गद्‌गद् हो जाती।

मेड़ता का राज्य स्थापित करने वाले पराक्रमी राव दूदाजी के दो पुत्र भी पराक्रमी थे। मीराँ के पिता ठाकुर रतनसिंह और उन के बड़े भाई वीरमसिंह, तुलसी की माला गले मे डाल कर धर्म की तलवार हाथ में लेकर दुश्मनों को निष्प्राण करने के लिए राज्य की सीमा पर गए थे। परम वैष्णव दूदाजी के पास उन की अठारहों वर्णों की क़ौमें बेखटके प्रेम से चली आती थीं। भगवानसे प्रेरित प्रेम का राज्य राजपूत धर्मी दूदाजी के राज्य में स्पष्ट दिखाई देता था। इसी से, मोची महाजन बहू को लेकर गाँव में प्रवेश करते समय राव दूदाजी का आशीर्वाद लेने राजमहल के सामने से निकला था।

"राजा को घोड़े से न उतारना" वृद्ध दूदाजी ने आशीर्वाद देते हुए सात बरस के वरराजा को अपने पास लाने से मना करते हुए कहा, "घोड़े पर चढ़ा हुआ वरराजा, राजा है।"

भेंट-नज़राना न्यौछावर हुआ। आशीर्वाद, प्रत्येक प्रजाजन को मिलता था उसी तरह मिला और वरघोड़ा खूब आनन्द और हर्ष मे डोलते हुए बारातियों के साथ महल के सामने से निकल गया।

उसी समय,

मीठी, अत्यन्त मीठी, दादा दूदाजी की आँख में झट आँसू बहा दे ऐसी बोली, ऊपर झरोखे से सुन पड़ी।

"रतन, ओ रतन मेरा सिर निकाल!"

झरोखे के छेद में फँसा हुआ सिर भीतर खींच लेने को छटपटाती हुई नन्ही मीराँ चीख उठी।

दूदाजी ने झट ऊपर देखा। रतन के होश हवाश गुम हो गये; परन्तु मीराँ का मुँह ऐसी बुरी तरह फँसा हुआ नहीं था। रतन और हंसारानी ने साव-धानी से मीराँ को झट बाहर निकाला। रतन ने मीराँ को उठा लिया और ठकुरानी एक रोष भरी दृष्टि अपनी बेटी पर डाल कर झरोखे के बाहर जाने लगीं। परन्तु मीराँ के, नासमझ नन्हे हृदय में वरघोड़े को देख कर एक प्रचण्ड तूफान उठ गया था और वह उसके मुँह पर साफ झलकता था। माँ को जाते देख मीराँ रतन के हाथ से उछल कर नीचे कूद पड़ी और क्रोध में कदम बढ़ाये जाने वाली माँ के पीछे दौड़ कर उसके घिरावदार रेशमी घाघरे को नन्हे हाथ में पकड़ कर खींचती खींचती स्वयं भी साथ साथ दौड़ने लगी.......

"माँ...बताओ, उस घोड़े पर कौन था?"

"वरराजा।" क्रोध को थोड़ा भी शान्त किये बिना ठकुरानी चलते-चलते बोलीं।

"और म्याने में कौन था?" हजारों प्रश्न पूछने की उतावली से मीराँ ने हंसा से दूसरा प्रश्न किया।

"बहूरानी" जरा क्रोध की मात्रा कम करते हुए चलते-चलते हंसा बोलीं।

"बहूरानी? यानी क्या?" माँ के साथ घाघरा पकड़े हुए दौड़ती-दौड़ती मीराँ बोली।

"जो वरराजा को ब्याहे।"

"माँ ब्याह क्या?"

"वरराजा की बहूरानी बनना।" क्रोध ठंडा करते हुए हंसा बोलीं।

"माँ, तो तू ब्याही है?" दौड़ती मीराँ ने शीघ्र पूछा।

"सब स्त्रियाँ ब्याह करती हैं।" हंसा इस ढंग से बोली मानो अपने क्रोध पर आप ही हँस रही हों।

"मैं स्त्री हूँ?"

"क्यों?"

"माँ, मुझे विवाह करना है।"

"क्यों ?" एकदम अटकती हुई हंसा बोली।

"तूने कैसे विवाह किया ?" सहज ही हाँफती हाँफती मीराँ बोली।

पाँच-छ बरस की लड़की को क्या समझाना ? किस तरह समझाना ? विवाह कोई छोटी-मोटी चीज़ है ? सात बरस के वरराजा से पाँच बरस की बहू विवाह करे यह देखने में खेल-जैसा लगने पर भी खेल नहीं था। यह सारी गहरी बात इस नटखट लड़की को कौन समझावे ? मीरॉं धुनी थी। एकबार पकड़ी हुई धुन छोड़ती नहीं थी। हंसा यह अच्छी तरह जानती थी। इस लिए वह और कुछ बोले बिना ही फिर चलने लगी, लेकिन मीराँ अपनी माँ को यों छोड़ने वाली नहीं थी। उसके घाघरे को छोड़े बिना ही उसके साथ साथ घिसटती हुई कहने लगी—

"माँ, मुझे विवाह करना है।"

हंसा फिर ठिठक कर खड़ी हो गई; लेकिन शीघ्र ही फिर चलने लगी। मीराँ ने भी हट चालू रक्खी "सुनती नहीं माँ ? मुझे विवाह करना है— अभी विवाह करना है—जा मेरे लिए वरराजा ले आ !"

"तेरे पिताजी को आने दे, फिर विवाह करना।" जरा तेज चलते हुए हंसा ने कहा।

"नहीं, अभी का अभी करना है।" माँ के साथ साथ दौड़ती मीरॉं ने निश्चित वाणी में कहा।

"रजपूत की बेटी का विवाह सरल होगा, लेकिन राठौड़ की बेटी का विवाह कोई सरल बात नहीं है—समझीं बेटीजी !"

लेकिन मीराँ कुछ न समझी और घाघरे की पकड़ भी न छोड़ी।

दौड़ती दौड़ती अधिक आग्रह से मीरॉं कहने लगी—"माँ, तू ही मेरा विवाह कर। तू है, दादा है। जा, वरराजा ले आ न !"

"अरी, मैं वरराजा कहाँ से ले आऊँ ?"

"चाहे जहाँ से ला पर अभी का अभी ला।"

लड़की की जिद् बढती गई ! माँ की झुंझलाहट बढती गई । ज्यों ज्यों ठकुरानी उतावली होकर डग भर रही थी त्यों त्यों मीराँ घाघरे को छोड़ कर उसकी चुंदड़ी पकड खींचती–खिंचाती साथ-साथ दौड़ रही थी। मीराँबाई के पीछे रतन बुढिया भी धीमी चाल से चली आ रही थी । परन्तु सारी दासियो को उसने इशारा करके आगे जाने से रोक लिया था ।

एक दालान पार किया। दूसरा भी पार किया परन्तु मीराँ गाय के पीछे राँभती हुई शरारत पर उतरी छोटी बछिया की तरह शोर मचाती हुई भाग रही थी । उनकी धुन मे सच्ची लगन लग रही थी—सच्ची उत्कंठा थी ।

इसे वरराजा के साथ खेलना था ।

आखिरकार, हंसारानी हारीं। झुँझला गई । उन्हें विश्वास हो गया कि मीराँ वरराजा लिए बिना नहीं रहेगी। वे घिसटती हुई मीराँ के साथ कृष्णमन्दिर के सामने से अपने महल की तरफ जा रही थीं। इसीबीच उन्हें हठात् एक विचार आया। तुरन्त मन्दिर के आगे रुक गईं और मीराँ से पीछा छुडाने के लिए गुस्सा पीती हुई बोलीं, "वह रहा वरराजा, जा। बस!"

कृष्णमन्दिर मे भगवान् गिरिधारीलालजी की हंसती मूर्ति की तरफ उँगली का इशारा कर, मीराँ की उँगलियों से चुँदड़ी छुडाते हुए हंसा ने कहा। मीराँ ने चुँदड़ी छोड़ी नहीं परन्तु उसका ध्यान एकाएक मूर्ति की तरफ गया। यो तो दादाजी की गोद में बैठकर मीराँने मूर्ति को कई बार देखकर प्रणाम किया था, परन्तु वरराजा के रूप में उन्हें वह आज ही देखने लगी। उसे वरराजा के साथ जल्दी से विवाह कर लेना था। वरराजा के साथ जल्द ही खेलना था।

वरराजा मिल गया। कोई नया नहीं—पुराना, जाना–पहिचाना, बहुत परिचित वरराजा मिल गया था। उसके हृदय मे किसी विचित्र आनन्द की ऊर्मियां उछलने लगीं। आनन्द एकदम असीम बन गया। हाथ छुडाने को व्याकुल माता के हाथ को एकबार और जोरसे पकडा हुआ रख कर आनन्दमग्न मीराँ बोल उठी—

"माँ, तो देख कहे देती हूँ। यह वरराजा मेरा और मैं इनकी बहूरानी, हो ?"

"हाँ भई, हाँ। कह तो दिया !"

किसी तरह मीराँ का हाथ छुडाते हुए ठकुरानी बोलीं। मीराँ का हाथ छूट गया। बेसुध हो क्षणभर अतीव आनन्द मे निमग्न होते हुए विश्वासभरी वाणी में माँ को फिर पकडे रख कर मीराँ बोली—"माँ, देख लेना हो, यह वरराजा मेरा ही है और किसी का नहीं। तेरा नहीं। बापूजी का नहीं। दादा का नहीं। जयमल भाई* का नहीं। मेरा, केवल मेरा ही।"

"हाँ रे हाँ।" माँ ने हाथ छुड़ाते हुए झुँझलाते हुए कहा।

परन्तु इस बीच मीराँ की दृष्टि गिरिधारीलाल पर जम चुकी थी। माता के अन्तिम शब्द उसने सुने ही नहीं। हंसा चली गई; परन्तु मीराँ मन्दिर के प्रवेशद्वार के पास धीमी धीमी आ खड़ी हुई। उसका हृदय, मन, आँख, सब एकटक होकर हँसती मूर्ति—गिरिधारीलाल पर अटक गये।

दूरी पर खडी रतन मीराँबाई को मालूम न हो इस तरह दूर से ही मीराँ को एकटक देखने लगी।

शान्त खड़ी मीराँबाई ने अपने नन्हें हाथ से उस म्याने में बैठी हुई बहूरानी की तरह शीश पर ओढ़नी खींच कर सारा मुँह ढँक लिया। घूँघट निकालने के बाद पूरा सिर 'मानो लाज मे' नीचे झुका दिया—ठीक उस म्याने में बैठी हुई बहूरानी की तरह।

और फिर,

धीरे धीरे, प्यासी आँखों से, एक सरीखा, अविरल हँसती हुई मूर्ति की तरफ झीनी ओढ़नी में से मीराँ झाँकती रही।

वरराजा हँसते थे।

बहुरानी हँसने लगी।

धीरे, धीरे।

---

* मीराँ के चाचा वीरमसिंह का बेटा। जो आगे चल कर अकबर के विरुद्ध अपूर्व वीरता से लड़ते हुए दगे से अकबर की गोली से मारा गया।

विवाह कर ही लिया

"बापजी, जरा अन्दर पधारो.. ." उकसाये हुए चन्दनसिंह ने घबरा देनेवाली ध्वनि में राव दूदाजी को बतलाया। राजमहल के भीतरी चौगान मे दूदाजी अपनी प्रतिदिन की खास मंडली में बैठ कर भागवत सुन रहे थे। वृन्दावन की कुंज-गलियों में कन्हैया के साथ चावसे राव खेल रहे थे इतने में इस कमबख्त चन्दनसिंह ने उनका ध्यान भंग कर दिया। दूदाजी खीझे; परन्तु अन्त पुर का आह्वान देख कर उतावल मे बोल उठे—"क्या है रे?"

"अन्नदाता—मीराँबाई का विवाह होता है..."

"हैं!" एक ही साथ सारे सुननेवाले बोल उठे। पाँच-छः बरस की मीरांबाई का विवाह? एकाएक, अचानक मेड़ता की राज कुँवरी का विवाह मेड़ता के राज महल में हो और मेड़ता के राव को पता तक न चले? मेड़तिया सरदार तलवार पर हाथ रख कर खडे हो गये। दूदाजी, वृद्ध दूदाजी, बालक की तरह उतावल से अन्त पुर में गये। दरवाजे में प्रवेश करते ही वृद्धा रतन सामने मिली "अरी रतन! इस चन्दनिया का माथा फिर गया है क्या—यह बक क्या रहा है?......मीराँबाई का विवाह है?"

घूँघट निकाल कर मुँह फिराये हुए रतन ने 'हाँ' मे सिर हिलाया। दूदाजी स्तब्ध रह गये—वास्तव में घबरा गये। चन्दन के साथ साथ उनको रतन का भी मगज़ खराब जान पड़ा। रतन चुपचाप उनको गिरिधारी लालजी के मन्दिर के पास ले गई।

दूदाजी को अब पता लगा।

था, मीराँबाई का सचमुच विवाह था।

था ही?

अरे, हो चुका था।

गिरिधारीलाल के छोटे मन्दिर मे, नन्हीं मीराँ, छोटी-मोटी लड़कियों के बीच बैठी हुई थी। पुरोहित की लड़की थी और रतन की दौहित्री थी। सरदार शार्दूलसिंह की बेटी और सरदार रामप्रताप की बेटी।

सारे रावळे की लड़कियाँ किस तरह आई और किसने उन्हे बुलाया इसका पता सारी रात जागने वाली रतन को भी न चला। लड़कियों ने मीरॉ को कब शृंगार कराया, मूर्ति के लिए कब फूल, तोरण और आभूषण तैयार किये, कहाँ से...आया और कहाँ से वेदी का ईंधन आया, ढोल और तुरही: कब आ टपके और पुरोहित बाबा का पगड कब खिंचा चला आया—अरे इतनी सुन्दर ताजी वरमाला कैसे आई,कहाँ से आई, ये प्रश्न विचारते हुए दूदाजी एक तरफ घूंघट निकाले खडी हुई हंसारानी दूसरी तरफ देख रहीं थीं—मुंह फाडे, मुँह बिचकाये।

राव दूदाजी के मन्दिर मे बिराजे हुए प्राणाधार मनमोहन गिरिधारीलाल अपना 'पाषाणी' हास्य हँस रहे थे।

किस की तरफ?

लग्न की वेदी की तरफ? मीराँ की तरफ? मुंह फाड़ कर खडे हुए दूदाजी की तरफ? या फिर क्रोध मे लाल-पीली हुई ठकुरानी की तरफ? किसे पता। पर, हँस जरूर रहे थे। और विवाह के गीत, नादान बालिकाएँ जैसे-तैसे समझे-बिन समझे, आधे ठीक आधे बेठीक जैसे गा रही थीं वैसे ही गातीं रहीं।

नादान बालिकाओं के मन मे यह सच्चा खेल था।

नादान नन्हीं मीराँ के मन में यह सच्ची बात थी।

. विवाह मे बजनेवाला एक वाद्य। प्राय दर्जी ही बजाते हैं या ढोली या नौबतिये।

पिछले दिन महल के सामने से जानेवाली उस म्यानेवाली बहू की तरह इसने खींच कर घूँघट निकाला था और एकटक प्यासी आँखो से नन्हीं मीराँ देख रही थी...उस हँसते गिरिधारी की तरफ पिता का पग्गड सिर पर रख कर बैठी हुई पुरोहित की बेटी हथलेवा और सप्तपदी तक तो ज्यों त्यों कर के शास्त्रों का छकडा खींच लाई थी; परन्तु अब प्रश्न यह था कि विवाहित गिरिधारी–मीराँ का वरघोडा कैसे निकालना ? उस म्याने वाली बहू की तरह मीराँबाई को ससुराल तो भेजना ही चाहिए, नहीं तो विवाह पूरा कैसे कहलावे ? महल से बाहर गिर कर प्राण दे देने की धमकी देकर मीराँ ने रतन से चुपचाप म्याना और एक सफेद घोडा तैयार रखाया था, परन्तु मीराँ के वरराजा उस हँसते गिरिधारी को घोडे पर कैसे बिठावें ?

गिरिधारी के हँसते-हास्य मे बिलकुल पगी हुई मीराँ की तरफ राव दूदाजी प्रेमल आँखों से निहारते रह गये। अपने प्रभु को अपनी पौत्री द्वारा वरराजा बनाया देख कर इस परम वैष्णव की आँखों के कोनों में आँसू छलछला आए—चुपचाप, बोले बिना आगे आ कर उन्हो ने धीरे से मीराँ को उठाया और छाती से लगा लिया।

"मेरा बेटाजी क्या करता है रे ?"

"दादाजी ! मैंने विवाह कर लिया। मुझे नज़राना करो।"

"अरे नज़राना तो वर--बहू को मुझे करना चाहिए।"

"कैसे ?"

"राज्य मेरा है।"

"ओ-हो-लो-लो।"

इतना कह कर सवेरे दादाजी का दिया हुआ हीरे का हार मीराँबाई ने अपने गले में से उतार कर मेंहदी लगे हाथ मे रख दूदाजी के सामने कर दिया, "स्वीकार करें।"

"अरी, यह हार तो मैंने दिया है।"

"तो यह—लो,—, झूमर. .यह सब..."

"ना, ना, ना बेटमजी ये सब तो मैंने दिये हैं।"

"तो फिर क्या दूँ ?"

"मेरे गिरिधारीलालजी को ब्याह लिया है, उनको वापस दे।"

"अरे राम ! कभी ऐसा भी कहते हैं दादाजी ? देखना हो—यह आपको नहीं मिलेगा।"

"क्यों"

"यही...?" इतना कहते ही मीराँ की दृष्टि दूर कोने में बाघिनी की तरह खड़ी हंसा पर पडी। तुरन्त दादाजी के गले को उसने जोर से पकड़ लिया और दूदाजी के कान के पास झुककर धीमी और बैठी हुई आवाज़ मे बाकी बचा हुआ वाक्य कहने लगी: "इतनी भी समझ नहीं ? अब ये मेरे वरराजा हैं, आज से ये मेरे अकेली के।"

दादा ने तुरन्त बैठी हुई आवाज़ में कहा:—"लेकिन लाया तो मैं हूँ !"

"लेकिन विवाह तो मैंने किया है।" मीराँने धीरे से दादा के कान में कहा।

इस के बाद एक दूसरे के कान में क्या घुसपुस बातें हुईं इसे क्रोध में मुट्ठियाँ भींचे हंसारानी न जान सकी; परन्तु थोड़े ही क्षणों में इस घुसपुस हुई बातों का भंडा फूट गया—उसके ससुर, उसकी बेटी से भी आगे बढ गये। मन्दिर के आगे म्याना और घोड़ा ले आया गया। राजमहल की तमाम दासियाँ बुलाईं, गिरिधारीलालजी की पालकी सफेद घोड़े पर विराजमान हुई। बूढ़ा राव पत्थर के हँसते वरराजा को थामने लगा। दासियाँ गीत गाने लगीं। घड़ी मे इधर और घड़ी में उधर झुक पड़ने वाले वरराजा को वृद्ध राव थामता था और उस के पीछे पीछे म्याने में मीराँबाई ससुराल जा रही थीं।

मन्दिर से वरघोड़ा निकलने के बाद जब वापस मन्दिर तक आया, इस बीच तो हंसाबाई को कुछ का कुछ ही हो गया; परन्तु भक्ति में पागल ससुर और वर में पागल मीराँ के लिए उसे कुछ भी कहना-सुनना निरर्थक जान पड़ा। उसे दोनों का ही दिमाग़, दोनों के ही विचार, दोनों का हँसना एक

परन्तु उनके क्रोध की अवधि तो तब आई कि जब मीराँबाई वरघोडे के अन्त में माँ के पैर छूने आई। यह असह्य था। आशीष लेने को पैरों आगे झुकी हुई मीराँ को हंसाबाई आवेश में उठा कर शयनभवन की तरफ चलने लगी।

रतन दाई पीछे दौडी और हंसाबाई के हाथों से मीराँ को बलपूर्वक खींच कर रसोईघर की तरफ जाने लगी। हंसाबाई को तब खयाल आया कि मीराँ ने दिन भर का कुछ नहीं खाया और अब समझी कि वह कैसे सारे दिन भूखी रही थी। मन में तो ऐसी आई कि उसे भूखी ही सुला दे, परन्तु रतन दाई होने पर भी ठकुरानी हंसाबाई को उसके आगे झुकना पड़ता था। भला हुआ जो जयमल अपने ननिहाल गया हुआ था नहीं तो चचेरा होते हुए भी सगे लगने वाले ये भाई बहिन कोई और ही तूफान खड़ा करते।

भोजन के बाद मीराँ शान्त नहीं हुई। माँ को राजी करने मे इकलोती बेटी को देर न लगी। विवाह के बाद क्या करना और कैसे रहना इन प्रश्नों हंसाबाई को फिर अर्ध विक्षिप्त करना प्रारंभ किया। जिन्दगी के भारी प्रश्न एक नादान लड़की को कैसे समझाये जायें? हंसाबाई मीराँ की एकसरीखी बकझक सहन न कर सकी और साथ ही क्रोध भी प्रकट न कर पाई। हंसा हार थक कर अन्त मे मीठी मीठी बातें करने लगी और मीराँ का ध्यान गिरिधारीलाल और विवाह पर से हटाने लगी। आखिरकार बड़ी मुश्किल से, बड़ी मेहनत से मीराँ को सुलाया।

"बहू सा! मीराँबाई सो गई?"

बाहर के दालान में धीमे धीमे प्रवेश कर आ खड़े हुए दूदाजी ने सुन पडे इस तरह किन्तु धीमी वाणी से पूछा।

"हाँ बाबासा" इतना कहते हुए हंसाबाई ने झट खड़े हो कर दरवाजा खोल दिया और घूंघट निकाले खडी रहीं। जिन को देखने के लिए आँखें तरस रही हैं ऐसे दादा दूदाजी मीराँ के पलंग की तरफ धीरे से चले। हंसाबाई ने मीठा व्यंग करते हुए कहा, "बाबासा, इस मूर्खा को आप भगवान् की प्रतिमा के साथ खेलने दें यह......"

"हाँ, हाँ बेटा हाँ। बोलना मत। भगवान् के साथ यह खेलती थी कि भगवान् इस के साथ खेलते थे? या फिर मेरा साँवरिया गिरिधारी हम सबके साथ खेलता था? कुछ कहा नहीं जाता बेटा, कुछ नहीं कह सकते। मैं तब से विचार करता हूँ कि यह क्या है? चालीस-चालीस वर्षों से जिसके पैरों में सिर रक्खे जिसे पाने को तड़फ रहा हूँ मेरे उसी प्यारे से इस छोकरी ने विवाह कर लिया? इसे अपना बना लिया? बहूरानी सच कहूँ? भगवान् का रास्ता अलौकिक है। जिन को यह मिला है उनके चेहरे पर प्रभुप्रेम जगमगाता रहता है। देखो, यहीं देखो। बाईसा के मुख पर नया ही तेज झलक रहा है। अनन्त प्रेम की दीप्ति इन के मुँह पर छा गई है। भगवान् का आशीर्वाद है, बेटा यह लड़की अलौकिक होगी—"

"बाबासा ..." कुछ विरोध में बोलने के लिए हंसाबाई ने मुँह खोला, परन्तु इस से पहले ही वयोवृद्ध पूज्य बोल उठे: बोलना मत बेटा, भगवान् के साथ खेलनेवाला अलौकिक ही होता है। मुझे जरा देखने दोगी?

हंसाबाई ने शीघ्र रास्ता दिया।

मेड़ता का राज्य स्थापित करने वाला पराक्रमी राठौड़ वीर राव दूदाजी हाथ में माला फेरते हुए पलंग के बिलकुल पास जाकर नींद में हँसती हुई मीराँ की तरफ क्षण भर देखता रहा और फिर आँखों में आंसू भरे हुए बोला:

"बहूरानी, देखो, देखो। मेरे गिरिधारीलाल ने अपना हास्य इस के होठ मे भर दिया है। अपना लावण्य इस के मुखडे में उँडेल दिया है। देखो बहू भगवान् के तेज मे तपती हुई इस बालिका को इस नटखट ने अपनी बना लिया है—जीओ मेरी मा, चिरायु हो—खूब जीओ।"

इतना कह कर दूदाजी ने नन्ही मीराँ का छोटा सा चरण काँपते हुए होंठों से चूमा-ढंका और गिरिधर गिरिधर कहते, माला फेरते हुए बाहर निकल गये.....आँखें पोंछते हुए और सिर हिलाते हुए।

हंसाबा को अब पूरा पूरा विश्वास हो गया कि बूढ़े काका सचमुच बिगड़ गया है।

गिरिधारी

बाल गिरिधारी उस सफेद घोड़े पर मीरों के साथ बैठ कर जमुना के किनारे किनारे जाते थे और उन के पीछे उन की कमर पकड़ कर क्षण भर को इस तरफ, तो क्षणभर को उस तरफ, झुकती हुई बाते कर रही थी।

"अरे गिरिधारी तब मेरी माँ तो तुझे कृष्ण कृष्ण कहती है!"

"मै कृष्ण भी हूँ और तेरे दादा का गिरिधारी भी हूँ।"

"उँ-हूँ। मेरे दादा का नहीं अब तो तू मेरा गिरिधारी है।"

"कैसे?"

"अरे इतना भी नहीं समझता? अपना विवाह हो गया है न! अब तू मेरा—मीराँ का गिरिधारी। स्वीकार है या नहीं?—कर स्वीकार।"

"स्वीकार।"

"देखा! अब कैसा बोलता है? मैने तो सोचा था कि अगर तू न बोलेगा तो "

"तो क्या करती?"

"अरे पीटती रे! खूब मरम्मत करती! तुझे क्या यों छोड़ देती? मैं भट्टजी की बेटी जैसी नही हूँ। वह पगली तो एक दिन दूल्हा-दूल्ही खेलती थी। खेलते खेलते उस का दूल्हा नाराज़ होकर चलने लगा और वह मरी कुछ बोली भी नहीं—दूल्हे को जाने दिया। मैं जो उस की जगह बहू होती तो देख लेती कि वह कैसे जाता है?"

"मैं जो उस दूल्हे की जगह होता तो फिर तुझे पीटता।"

"तो इस से क्या मार खाती, लेकिन वर को नहीं जाने देती।"

"इस घोड़े पर बैठ कर भाग जाता।"

"यह तो दादाजी का घोड़ा है।"

"यह क्या मुझे नहीं ले जाता? जरूर ले जाता।"

"तो क्या दादाजी के साथ भी-इस तरह घूमने जाता है?" मीराँ ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, रोज घूमने जाता हूँ, परन्तु दादाजी को पता नहीं चलता।"

"तू बड़ा मीठा बोलता है।"

"तू भी बड़ी मिठबोली है।"

"खैर, मैं तुझे छोड़ कर जाऊँ तो तू क्या करे?

"तू जायगी ही नहीं न!"

"कैसे?" मीराँ ने आश्चर्य से पूछा।

"मैं नहीं बोलता था तब तू रो रही थी और मैं हँस रहा था। मैं जानता हूँ कि तू न जायगी।"

"सचमुच मैं नहीं जाऊँगी, तू मुझे बहुत प्यारा है। सब कोई झूठ कहते थे कि तू 'पत्थर का है।'

"मैं हूँ नहीं।—मुझे बना दिया है। तू मानती है मीरी कि मैं पत्थर का हूँ?"

"बिल्कुल नहीं। सब मूर्ख हैं।"

"सब मूर्ख हैं" कृष्ण गिरिधारी ने जाने किस पर हँसते-हँसते कहा।

"भला देख तो। तू पत्थर हो तो यों बोले! दादाजी भी नहीं मानते।"

"तू मुझे बड़ी प्यारी है।" माखनचोर ने कहा।

"तू भी" यों कह कर चित्तचोर नन्ही मीरों ने जोर से कृष्ण को पीछे से जकड़ लिया। प्यार का जोश अज़ब होता है।

परन्तु इस से नन्हा कृष्ण घोड़े पर से सन्तुलन खो बैठा और दोनों जने घोड़े से नीचे लुढ़क गये।

"अरे वाह! मुझे चोट क्यों कर नहीं लगी?" मीराँ ने खड़े होते हुए कृष्ण को आश्चर्य से पूछा।

"मेरे साथ होकर भी तुझे चोट लगे ? खड़ी हो।" अभी तक जमीन पर पड़ी हुई मीराँ को बैठी करते हुए गिरिधारी ने कहा। मीराँ खड़ी हुई और दोनों एक दूसरे का हाथ पकड कर चलने लगे। जमुना मीठी ध्वनि करती बह रही थी। नदी के उस पार दूर दूर क्षितिज मे महलों की पंक्ति दीखती थी। उस तरफ जाती हुई गौवें और बछड़े मुँह फेर कर इन दोनो को जाते हुए देखते रहे। एक बड़े भारी महल की ओर उँगली का इशारा करते हुए मीराँ बोली—

"वह तेरा घर ?"

"हाँ, वह मेरा घर, तुझे कैसे मालूम ?"

"देख फिर। तुझे कितनी बार कहूँ ? मैं तेरी बहू हूँ न! मुझे तेरे घर का झट पता चलता है; परन्तु गिरिधारी! दादाजी तो कहते थे कि तू वृन्दावन में रहता है।"

"तो यह वृन्दावन ही है !"

"यह बात है ? तो बता, नंद यशोदा कहाँ हैं ?"

"तुझे उन्हें देखना है या रासलीला ! जमुना के उस पार घर है। इस पार मैं हूँ। तुझे कहाँ जाना है ?" मीराँ इस प्रश्न पर उसकी तरफ देखती रही। नटखटिये ने प्यार से मीराँ का हाथ पकड़ कर खींचा और बोला :

"इधर आ, बैठ।"

मीराँ बैठ गई। उसने आसपास देखा। उसका नन्हा हृदय किसी अज्ञात आनन्द से छलकने लगा। पत्थर का गिरिधारी इस समय उसी के समान जीता जागता मालूम होता था। राधाकृष्ण की मीठी मीठी बातें उसे इस समय जीवित जान पड़ती थीं। नदी, वृक्ष, फल, फूल जैसे दादाजी ने कहे थे ठीक वैसे ही दीख पड़ते थे। एक विशाल वृक्ष की छाया में वह बैठी थी। पूँछ फटकारती हुई गायें और माँ से मिलने को व्याकुल बछड़े रह-रह कर मीराँ-गिरिधारी को देख रहे थे। मोर, पपीहे और अन्य पक्षीगण ने धीमा-धीमा मधुर कलरव प्रारंभ कर दिया था। इसी बीच एक मधुर आवाज़ सुन पड़ी—

कुहूक। मीराँ ने ऊपर देखा! उस के सिर पर पेड़ की डालियों में एक नहीं अनेक कोयलें बैठी थीं। सुग्गे, चक्रवाक और मैना जिस डाली पर वे बैठे थे उसी पर झूमते हुए आनन्द मे एक दूसरे से बातें कर रहे थे। मीराँ ने हाथों से तालियाँ बजा कर थोड़ी देर उनको देखा फिर बोली : "दादाजी कहते थे वह कदम्ब का पेड यही है न ? कहते थे कि इस के नीचे बैठ कर तू रोज मुरली बजाता है!"

"इसी से तो बैठा हूँ। बैठ मेरे पास!"

"परन्तु राधा कहाँ है ? मुझे देखना है।"

"तुझे दादाजी ने नहीं कहा कि मैं जब मुरली बजाता हूँ, तभी राधा और गोपियाँ आती है।"

"अरे मै मूर्खी, भूल गई। तो गिरिधारी, बजा न मुरली।"

"तू मेरे पास बैठ तो बजाऊँ।"

"ले, यह बैठी।"

"यों नही, मुझ से सट कर, लगोलग।"

"फिर राधा आयगी तो ?"

"आने दे न! भले ही देखे। तू ने मुझे ब्याहा है कि नहीं ?"

"हाँ, हाँ।"

"बस तो तू अब मेरी गोपी।"

"मेरे गिरिधारी! तू कितना मीठा बोलता है! मेड़ता में कोई ऐसा नहीं।" परन्तु मीराँ कुछ और भी बोलती इस से पहले हँसते हुए बाल कृष्ण ने होंठ पर बाँसुरी रक्खी और सुर छेड़ा....जवाब में वातावरण ने धीरे धीरे रंग बदला...पवन पेड़-पौधों को मीठा-मीठा नचाने लगा। बगीचे के फूल महकने लगे। कालिन्दी के पानी की लहरें मीठी मीठी बाँसुरी की धुन मे नाचने लगीं। मीराँ के हाथ और पैर मे सनसनी होने लगी। एकाएक पूरब और पश्चिम, उत्तर और दक्षिण से पायल के मीठे ठुमके सुनाई पड़ने लगे। मीराँ ने चौंक कर चारों तरफ देखा। उसी के जैसी, उस के समान ही बालि-

काएँ धीरे धीरे हँसती, चिढ़ती, चिढ़ाती आगे आने लगी। मीराँ की आँखों मे खुमारी आने लगी। मुरली की तान से उस का शरीर डोलने लगा। देखते ही देखते कृष्ण और कदम्ब वृक्ष को गोपियों ने घेर लिया। गोपियों के पीछे गोप आये। मृदंग पर वृद्धा ग्वालिनों के हाथ पड़ने लगे। ता ता थै, ता ता थै, रास शुरू हुआ, शोभित होने लगा। पैर का ठुमका, हाथ की ताली, डंडियों का डंका, एकधुन, एकरस, एक उमंग में मानो ओतप्रोत होने लगे।

कृष्ण की रासलीला शुरू हुई। कृष्ण के आसपास उस की बाँसुरी सब से मीठी बज रही थी। मीठी मीठी गोपियों के मीठे मीठे सुरों को दबा कर दिग्पाल और वसु, यक्ष और किन्नर मानो बादलों के पीछे एकत्र होकर बादलों को नचाने लगे।

"मीराँ बैठ मत, नाच, तू गोपी है" कृष्ण ने चीख मारी।

"परन्तु मुझे नाचना नहीं आता।" मीराँ ने निराश होकर कहा।

"गोपी होकर नाचना नहीं आता? अरे चल मैं सिखाऊँ।"

कृष्ण खड़े हुए। नृत्य का प्रारंभिक अभिनय करने से पहले सबसे बड़ी गोपी आगे बढ़ी और मीराँ को कुंडाले मे ले गई। मुरली फिर बजने लगी। वह बड़ी गोपी हँसते हँसते बोली; "अभी तक मुझे न पहिचाना, मैं राधा हूँ। मुझे भी पहले पहल नाचना नहीं आता था। परन्तु मुरली बजते ही मैं खड़ी हो जाती और झट अपने आप ही मेरे पैर और हाथ काँपने लगते।"

"मेरे भी पैर काँपते हैं।" मीराँ झट बोल उठी।

"बस, तब तू नाचती है यही समझ ले।"

"यह बात है!" इतना कह कर मीराँ आसपास देखने लगी तो कुंडाले मे यह कभी की घूमती थी। उस के हाथ और पैर मुरली के नाद और धुन में अनेक घुमाव लेते थे। उसके शरीर मे कोई अद्‌भुत चेतना प्रसारित हो रही थी। रास का वेग बढ़ने लगा। राधा जोर से घूमर लेती गई। मीराँ ने भी अपनी गति तेज़ की। धीरे धीरे वह इतनी बढ़ गई कि नृत्य, ताल, संगीत और अभिनय एक हो गये। पृथ्वी और ब्रह्माण्ड उसे फिरते हुए नज़र आये,

सारे गीत, सारी लय, सारी मस्ती चक्कर काट रहे थे ।—मीराँ अपने आपको हाथ से खिसकते हुए महसूस करने लगी। उस ने सन्तुलन खो दिया, काबू गँवा दिया। उसे ऐसा जान पड़ा कि वह अकेली किसी वातचक्र में चक्कर खाने लगी है और उस ने जोर से चीख मारी : "गिरिधारी! गिरिधारी! बस! बस। मुझ से नहीं सहा जाता। नहीं नाचा जाता, बस नहीं !" कहते कहते वह धम्म से कृष्ण की गोद में जा पड़ी, थोड़ी देर रह कर मीराँ ने सहज ही आँखें खोलीं और जोर से कृष्ण को लिपट गई। घूमता हुआ ब्रह्माण्ड आस्ते आस्ते शान्त हुआ। मीठा मीठा पवन और गुलाब, चम्पा की शाखाओं का एक दूसरे के साथ झूमने से होने वाली धीमी धीमी आवाज़ उसे सुनाई देने लगी। धीरे-धीरे मीरां ने आँखे खोलीं। वह पत्थर का हास्य हँसता हुआ गिरिधारी उस के गाल पर हाथ फेरता हुआ देख रहा था। धीरे से खड़ी होकर मीराँ ने आसपास दृष्टि डाली।

गोपी नहीं थी। गोप नहीं थे। मृदंग, झाँझ बजाने वाली वृद्ध ग्वालिनें और दूर दूर मुँह से मुस्कानेवाले किसान—कोई न था।

"लुच्चा!" मीराँ एकदम अलग हो कर गरज उठी। "दादा ठीक कहते थे—तू नटखट है। कहाँ गई राधा?"

"जाने दे; उसे। राधा के साथ बहुत नाच चुका हूँ। अब मैं तेरे साथ नाचूँगा। आ, मेरे पास। तुझे बाँसुरी सिखाऊँ।" कहते ही बालकृष्ण ने मीराँ को छाती तक खींच लिया और अपनी जूठी हुई मुरली मीराँ के मुँह पर रख दी। अभी भी हाँफती हुई मीराँ ने मुरली को झट से खींच लिया और कृष्ण को हलका धक्का लगाया। "जा मैं अपने हाथ से अकेली सीखूँगी। तेरी मुरली से सबको नाचना पड़ता है।"

"और फिर गिरते हैं—" नटखट कृष्ण ने कहा।

"हाँ।" मीराँ ने व्यंग किया। "मुझे नाचना ही है, गिर नहीं जाना।"

"परन्तु तू गिरी तो मेरी गोद में न? मैंने बचा न लिया?"

" तो क्या तू हर बार मुझे बचाने आयगा ?"

' हरेक गोपी को बचाता हूँ।"

" तू पूरा एक और हजार गोपियों को कैसे बचा सकता है ?—जा रे झूठे !"

" तो फिर दे दे मेरी बाँसुरी "

" नहीं देती—जो तेरी चीज़ है वह अब मेरी है, तू मेरा वर है।"

" देती है कि नहीं ?" यह कहकर कृष्ण ने जोर से मुरली खींची और मीराँ को धक्का मारा।

" ठहर जा, यह मुरली मेरी है। मै तेरी वहू हूँ। रतन कहती थी, हरेक वस्तु वर-बहू दोनो की होती है।" कहते कहते जोर से कृष्ण को धक्का मार कर मीराने उसकी मुरली खींच ली। परन्तु उस ने इत ने जोर से खींची कि मुरली के साथ वह जमीन पर पड़ी और साथ ही साथ कृष्ण ऊँचा उछला और नीचे बहने वाली गहरी कालिन्दी मे गिरा।—मीराँ ने एक करुणाभरी चीख निकाली।—"गिरिधारी—मेरे गिरिधारी !" जंगल, पहाड़ मे से लौटती प्रतिध्वनि आई, गिरिधारी—मेरे गिरिधारी ! उसने इतनी जोर से चीख मारी थी कि स्वयं ही उससे डर गई और आँखों बन्द कर लीं। चीख की प्रतिध्वनि धीरे धीरे शान्त हो गई थी इसलिए धक् धक् करती छाती को दबा कर उसने चुपचाप आँखे खोलीं।

उस की आँखों ने अद्भुत कौतुक देखा। खुद अपने पलंग से नीचे पड़ी है और हाथ मे एक नन्ही सी बाँसुरी पकड़े हुए है। स्वप्न था ?

ना।

हाँ।

मीराँ की चीख से हँसाबाई घबराकर उठ बैठी और चिल्ला उठीं—"क्या है मीरी ? क्या हुआ बेटा ?"

मीराँ स्तब्ध रह गई। वह कहाँ थी ? क्या हो गया ? हँसाबाई झट पलंग से नीचे उतरीं, परन्तु इस बीच तो मीरी जोश में खड़ी हुई और बाहर दौड़ी।

"मीरी-मीरी—खड़ी रह ! अरे रतन ! कोई है ? दौड़ो···" हँसाबाई चीखती हुई मीराँ के पीछे दौड़ीं। दासियाँ और दारोगनियाँ चौंक-चौंक कर खड़ी हो गई और आँखे मसलतीं, ओढनी बिना ही हँसाबाई के पीछे दौड़ने लगीं। हँसाबाई दौड़ती-दौड़ती गिरिधारीलाल के मन्दिर आगे आकर रुकीं। मन्दिर का पट खोल कर मीराँ गिरिधारीलाल से जोर से लिपट कर रुक-रुक कर रोने लगी।

हँसाबाई के पीछे हाँपते-हाँपते खड़ी रतन को याद हो आया कि पिछली रात को भोजन करते समय रतन ने कृष्ण और मुरली की अनेक बातें मीराँ को कही थीं और गिरिधारीलालजी की मुरली लेकर ही सोने के लिए मीराँ की जिद भी हँसाबाई को याद आई।

यही मुरली लिए मीराँ गिरिधारीलालजी के आगे रुक-रुक कर रो रही थी।

"बोल गिरिधारी, बोल ! तू मुझे माफ करेगा कि नहीं ? अब किसी दिन तुझे धक्का न मारूँगी। तुझे बोलना ही पड़ेगा। अब मैं तेरी बहू हूँ। तुझे माफ करती हूँ। बोल गिरिधारी बोल। मैं तुझे बुलवाकर छोड़ूँगी. जरूर बुलवाऊँगी।"

हँसा माँ का दिल भर आया। पिछली रात इकलौती बेटी पर बड़ा क्रोध किया था, उसी का यह परिणाम समझ कर वे शान्त रही और मीराँ के पास आकर प्रेम से मीराँ को उठाकर छाती से लगा लिया। मीराँ एकदम थक गई थी। थकान और नींद की खुमारी चढ़ती थी।

"माँ, भूल मेरी है। मैंने इसे जोर से धक्का मारा और गिरिधारी कालिन्दी में पड़ गया।"

शयनगृह की तरफ चलती हुई हँसाबाई के कन्धे पर पड़ी-पड़ी मीराँ अर्धनिद्रा में बोल रही थी। उस के शब्द सुनते बन्द हुए तब एक विशाल स्तम्भ के पीछे अभी तक पीठ करके खडे रहे दूदाजी धीमे से हँसते हुए गिरिधारीलाल की तरफ फिरे समीप आकर प्रणाम करके बोलेः—

"वाह मेरे प्यारे ! इस अनपढ़ को तो तूने तलवार पकड़ना ही सिखाया ? पैंतालीस बरस के सतत अनुभव के बाद भी इस दुष्ट हाथ को माला फेरनी भी नहीं आई ! फिर इस हाथ की सेवा तुझे क्यों कर स्वीकार हो ? परन्तु मेरी बच्ची के हाथ का धक्का तुझे मीठा लगता है ! वाह मेरे प्रभु ! वाह ! खेल। सब के साथ खेल। मेरे साथ न बोलने का खेल करे। परन्तु आज तुझे कह देता हूँ। मैं हार जाऊँगा, पर यह तुझ से नहीं हारेगी। तुझे यह बुलायगी, जरूर बातें करके रहेगी। उस के हृदय में तू खेल रहा है। खेल, खेलता रह—खेलता रह मेरे नाथ ! मेरे गोविन्द !"

और मन्दिर के फर्श को अश्रुओं से गीला करता हुआ मेड़ता का महा-पराक्रमी वृद्ध सिंह दूदाजी गिरिधारीलाल के प्रेम में झुका रहा।

★

वाद-विवाद

'अली, तुझे पुरुष होना रुचता है या स्त्री'' शरारती काशी ने पूछा।

"मर राँड ! ऐसा भी पूछते होंगे !'' पद्मा ने तुनक कर जवाब दिया।

"जा भी ! सब जानती हूँ जो बडी भोली बनी फिरती है। ऐसी बातें सुनने में जैसे कुछ मजा भी नही आता होगा !''

"मर री ! मुझे तो कुछ भी समझ नहीं पडता।''

"पदमड़ी ! मीरॉंबाई के पास रात दिन रहने से जो मीरॉंबाई होना होता तो मैं रात दिन उन के पास रहती हूँ, मैं भी दासी हूँ और तू भी दासी है, परन्तु मैं मीरॉंबाई नहीं और होना भी नहीं है।'' तारुण्य और यौवन के बीच की देहरी पर पैर रख कर खडी हुई शरारती काशी ने मुँह में चुप परन्तु हृदय में गुदगुदी अनुभव करती हुई पद्मा को सिर फिराते हुए कहा। दोनो की आँखों मे यौवन की मस्ती हिलोरें ले रही थी। जिस तरह पहले दिन चोरी करने को निकला हुआ चोर का बेटा बेहद आनन्द और भय एक साथ अनुभव करता है वैसी ही स्थिति इन दोनो की थी। फर्क इतना ही था कि काशी वाचाल थी और पद्मा मितभाषिणी। दोनों मीरॉंबाई की छाया थीं। केवल पूजा के समय ही मीरॉंबाई से दूर रहतीं। वर्ष तो शीघ्र ही बीत जाते हैं; परन्तु लडकियों के वर्ष कैसे जल्दी से चले जाते हैं इस का निराकरण किसी ने नहीं किया। यह काशी और पद्मा दस वर्ष पहले नन्हीं मीरॉं के साथ गुडियॉं खेलती थीं। आज दस वर्ष बाद इनकी खुमारी ऐसी है कि मानो ये कभी बच्चियॉं थी ही नहीं। यही विशाल महल है। यही राजस्थानी और गुजराती जैन शिल्पियों का नमूनेरूपी नेत्रों को मोहित करने वाला नक्काशी-

किया हुआ अन्तःपुर है। यही झरोखा है और मन्दिर भी यही है। तो भी ये लडकियाँ बदल गई है। उन का शरीर, उन का मुँह, उन का रूप, उन की आँख, जी हाँ, सर्वथा बदल गई हैं। वे न रुक सकनेवाली मस्ती मे झूमती है। एक छोटे झरोखे मे फूलों की माला गूँथती हुई रतन की ये दो भानजियाँ वाद-विवाद कर रही हैं। मीराँबाई के साथ बाहर जाने का समय हो रहा है तो भी काशी जिद पर चढी जाती है।

"मर, बातें छोड काशली!" अन्त में आसपास देखकर घबराती हुई पद्मा ने कहा।

"तू मर, गूँगी-डरपोक!" काशी ने नाक फुलाकर कहा "मुँह पर कुछ, कलेजे मे कुछ! मेरा खसम जब मुझसे मिलने आता है तब तो राँड लुक-छिप कर मुझे देखा करती है! यह खसम तो मेरे वश मे है और तुझमें केवल रूप ही भरा है नहीं तो मेरे खसम को तू कभी का घर में डाल लेती!"

"भई, तेरे पैरों पड़ती हूँ। अब मुँह पर लगाम लगा!" घबराई हुई पद्मा ने खडी होकर कहा—"हमारा तो दासो का जीवन है। बडों की तरह नहीं कहना चाहिए।"

"शिकोतरी बात बदलनी कैसी आती है!" इतना कहकर काशी ने पद्मा को हाथ खींच नीचे बिठाया "पूछ देखती हूँ, तुझे मेरा खसम पसन्द है?"

"ले, फिर वही की वही बात!" बनावटी झुँझलाहट दिखाते हुए पद्मा बोली।

"इस उमर में भी ऐसी बातें न हो तो फिर बुढ़ापे मे होंगी?"

"मुझे नहीं सुनना" फिर खडी होती हुई पद्मा बोली। काशी ने जोर का झटका देकर उसे खीच बिठाया—"राँड, मन मे तो तुझे मेरी बातो मे खूब मजा आता है और ऊपर-ऊपर हूँ—हाँ! सुन, तू खसम पर ही लट्टू नहीं, खसम जैसे चाहे जिस जवान पर तू लट्टू हो जायगी—केवल तू ऐसे बालमों की नजर पडनी चाहिए; परन्तु तेरे में एक दोष है।"

"क्या दोष है?" तुनक कर स्त्रीसहज उत्सुकता से पद्मा बोल उठी।

"तू ने दिखावा ऐसा किया है—मीराँबाई जैसा। जवान होकर भी गंभीर। गुण होते हुए नादान, रूप है पर विरक्त, मधुर है, किन्तु गूँगी। ऊपर-ऊपर के दिखावे से तो तू मीराँबाई, बिल्कुल मीराँबाई है।"

"तेरी जीभ पर बिजलियाँ गिर पड़े काशली! तू अन्नदाता की मस्करी करती है?"

"डायन! मै मीराँबाई की बात नहीं करती। मीराँबाई की तरह जो तू बनी फिरती है उसकी बात है। मीराँबाई की तरह तू अकेली-अकेली रहती है और फिरती है। तभी वह रंगीला, मानिया, चन्दनिया सब दौड़ते फिरते हैं। बाई मीराँबाई की बात अलग है। दस-दस वर्ष बीते, हम अटल देखती आ रही हैं कि इसी मूर्ति के आगे यहीं मीराँबाई सुबह, दोपहर शाम जब समय होता है तभी बातें करती रहती हैं—जैसे भगवान् अभी उन के साथ बातें करेंगे, पर यों पत्थर के भगवान् बातें करते होंगे?"

"जीजी तेरे पैरों पड़ती हूँ...तू..." पद्मा एकदम घबड़ाकर काशी से चुप रहने की विनती करने लगी।

"मीराँबाई पैरों पड़-पड़ कर एक को बुलाने के लिए रात-दिन एक कर रही हैं तब मुझ, बोलती हुई की तू जबान बन्द करती है! तू मीराँबाई जैसी बिलकुल नहीं होने की। सुन ले पद्मड़ी!...किन्तु तो भी तू है मेरी मौसेरी! हम मीराँबाई के साथ ही बड़ी हुईं; परन्तु उनका मन समझते-समझते हँसाबाई गईं, और रावदादा जुग-जुग जियें, इनकी भी कमर झुक चली है लेकिन अभी मीराँबाई को नहीं समझ सकते।"

"यह बात तो तूने सच कही?" पद्मा स्थिर मुँह किए बोली। "पढ़ाईं उतनी ही पुस्तकें मीराँबाई ने पढ़ी। वहीभाटों से इतिहास और चारणों से चरित्र सुने, कथा-वार्ता सुनीं, नाच सीखा, गीत सीखे, महारानी बनने के लिए जो कुछ सीखा—किन्तु कौन जाने भगवान् की मूर्ति के पास जाते ही क्या हो जाता है—मीराँबाई मीराँबाई रहतीं ही नहीं।"

पन्ना की यह बात सुनकर काशी झुँझलाई और बोली:—' इन के मन की बात या तो ये जानें या पत्थररूप गिरिधारी जाने।"

"हाय राम रे! तेरी जीभ मे काँटे क्यों नहीं चुभ जाते। भगवान् को ऐसा कहते?" पन्ना दाँत भींच कर बोली।

"राँड! मीराँबाई जैसी रूप से लदी हुई भरयौवन वाली सुलक्षणी राजकुँवारी, सुबह दोपहर और शाम नमती-नमती आवे, तो भी मात्र दाँत निकाले हँसते गिरिधारी भगवान्, इन के भाव को ही नहीं जानते, इन को भी नहीं जानते, और न इन के साथ बोलते हैं न खेलते हैं, तो फिर यह सच-मुच में पत्थर है या और कुछ?"

अज्ञान काशी के शब्दों मे पन्ना को कुछ सच्चाई जान पड़ी। प्रेम-दीवानी मीराँ के सामने भगवान हँसते जरूर थे। परन्तु प्रत्यक्ष नहीं होते और यह भी कोई आज या कल की बात थोड़े ही है! पूरे दस साल बीत चले। इस एक ही दशक में क्या-क्या हो गया?

मारवाड़ के तीन राजकुँवर नवलखा, नवलोहिया, जोधाजी ने जोधपुर स्थापित किया। उनके पुत्र बीकाजी ने बीकानेर बसाया और दूसरे पुत्र वीर वैष्णव दूदाजी ने मेड़ता की ठकुराई पुनः स्थापित कर उसे मजबूत बनाया। उन के आने के बाद मेड़ता में शूरवीर और भक्त पैदा होने लगे। सर्वगुणी दो पुत्र भगवान् ने दूदाजी को दिये, वीरमसिह और रतनसिह। वीरमसिंह के जन्मे जयमल, रत्नसिंह को भगवान् ने दी मीराँ। दोनों भाई रणक्षेत्र और दोनों भाई-बहिन दादाजी की छत्रछाया में खेलने लगे। वीरमजी स्वर्ग सिधारे और भाई का वैर निकालने मीराँ के पिता रत्नसिह ने रणक्षेत्र मे ही घर किया। पति-वियोग मे व्याकुल हँसाबाई ने मीराँ को दादाजी के हाथ सौंप कर इसी दशक मे परलोक-गमन किया। अन्तिम आठ वर्षों से जयमल ननि-हाल में ही बड़ा होता था, इसलिये मेड़ता के महालय में वयोवृद्ध दूदाजी और गिरिधरमग्ना मीराँ ही प्रमुखरूप मे विचरते थे। दोनों अकेले और दोनो को गिरिधरलालजी की लगन। मीराँ को जो चाहिए था, वह दादा ने दिया;

परन्तु वन-उपवन, चाँद-तारे, फल-फूल, यौवन, चांचल्य, आभूषण, आवरण सभी कुछ मीराँ को कृष्ण और गोपियों के दर्शन के लिए अधिक से अधिक खींचते गये। पानी में रहने वाले कमल की तरह, कमल पर रहने वाले जल-बिन्दु की तरह मीराँ संसार में रहकर भी संसार से अलिप्त रहने लगीं।

तो भी मीराँबाई हँसती थीं।

और जब वे हँसती थीं तब सौन्दर्य हँसता था। निर्दोष आनन्द हँसता था। राजकुँवारी मीराँ ने इस दशक में यह प्राप्त किया था। इसलिए काशी जैसी सब डावड़ियाँ और सरदार कन्याएँ यह मानने लगी थीं कि यह हास्य और सौन्दर्य बेकार जाता था। मीराँबाई उन के साथ खेलतीं थीं, खिलवाती थीं तो भी लड़कियाँ अन्त में निराशा में ही सिर धुनती थीं। राजपूत-कन्या मीराँ जब धनुष-बाण लेती तब रणभेरियाँ बजतीं। अभिसारिका मीराँ जब प्रभु-मन्दिर को जाती तो घण्टे और झाँझ बजते। प्रेममयी मीराँ जब भजन गाती तो वीणा-वाद्य छिड़ते, परन्तु इस प्रत्येक कार्य में मीराँ का हृदय और मन किसी गहराई में सरक पड़ते। उन के अधरों पर हास्य और आँखों में दुःख उतरा आता। हृदय की वेदना गीत में झनझनाती और होंठों पर तैरती।

गिरिधारी की मीराँ ने दशक भर में यह भी पाया था।

मीराँबाई जो कुछ करती हैं वह ठीक है ऐसा मानने वाली भीरु पद्मा ने शरारती काशी को आखिर डरते-डरते पूछा:—

"तुझ में मीराँबाई जैसा रूप होता तो तू क्या करती ?"

"क्या करती ?"

फूल का हार एक तरफ रख आगे झुकती हुई काशी कहने लगी, "चौदह चौकड़ी का राज करती—और जो जवान छैल और छबीलियाँ एक-दूसरे से भागते फिरते, उनको फाँसी पर लटका देती और तेरे जैसी मुँह में राम बगल में छुरी वाली बगुलियों को बाघों के आगे डाल कर चिरवा देती—"

"हाय बाप रे ! डायन ! इतना बढ़-बढ़ कर बोलना तुझे किस ने सिखाया ?"

"मेरे मारूजी ने" आँखें नचाते हुए काशी ने कहा ।

"हूँ" आँखें फाड़ते हुए पद्मा बोली ।

"गँवार ! अपने मारूजी से सीखा ! समझी ? तभी तो कहती हूँ कि तुझे पुरुष बनना रुचता है या स्त्री ?"

"पुरुष" थोड़ी देर विचार करने के बाद पद्मा बोली !

'डूब गई दुनिया !—क्या बनना ठीक लगता है । री ? पुरुष ? हट् ! मुझे तो लुगाई बनना पसन्द है ।"

काशी ने सीना निकाल कर लुभाई आँखों से देखते हुए मटक कर कहा ।

"काशली, जरा धीमी बोल ! बता तो पुरुष बनना क्यों पसन्द नहीं ?" पद्मा ने जरा गम्भीर होकर पूछा ।

"बनी बनाई गँवार है ! पुरुष चाहता है कि आसमान जितना ऊँचा हो जाय और भगवान् जैसा बड़ा पर झुकता—तो औरत के ही आगे है न ! मेरा खसम मेरे बिना पानी नहीं पीता, पानी । कारण ? जानती है ? मैं औरत हूँ इसीलिए । पुरुष होती तो मेरी तरफ कोई देखता भी ?"

"देखा स्त्री का अवतार ! परवश ! पराया !"

"ठीक है । तेरी जैसी अबोध के लिए तो स्त्री का अवतार कुछ नहीं ।"

भई सा'ब तेरे पैर पड़ती हूँ । अब बस करो । बाई आज डूँगरी के कृष्णमन्दिर को जाने वाली हैं—याद है ? मृदंग कौन बजायगा, और वीणा ?

दोनों सखियाँ उस तरह खड़ी हो गईं जैसे यकायक कुछ याद हो आया हो और ज्यों ही पैर उठाने लगीं कि पाँव जमीन से चिपक गये ! उन के सामने भैंस की-सी आँखें निकाले बुढ़िया रतन कभी की कमर पर हाथ रक्खे खड़ी थी ।

रतन अभी तक मर नहीं गई थी। ज़िन्दा थी। वर्षों पूर्व राव दूदाजी की महारानी ने मरते-मरते रतन को अपने पास बुलाकर कहा था, "रतनी, महाराजा को रोटी-पानी का जरा भी कष्ट न हो,—सम्भालना।" इसलिए राजभक्त रतनदाई को दूदाजी की खातिर जीना पड रहा था। कमर झुकने को आई थी—किन्तु थोडी ही। हाथ डगमगाते थे, किन्तु थोड़े-थोडे। सिर सफेद बालो से बूढ़ा हो चला था लेकिन थोडा-सा। अभी तक बुढ़िया की आँखें बाज जैसी थीं।

"राँडो!" बुढ़िया रतन ने गरजते हुए कहा। "पेट की हो इसलिए समझती हो कि छोड़ दूँगी? टंटियाँ तोड़ डालूँगी—"

रतन इतना कहते-कहते अटक गई...धीमा-धीमा, मधुर, सुमधुर, अति-मधुर, अति परिचित आवाज़ वायु को छेद कर रतनदाई के कान मे गूँजने लगी—आवाज़ के स्पर्श के साथ ही बुढिया की आँखें खिंची—शरीर जड हो गया और आवाज़ जहाँ से आती थी उसी दिशा में काँपते हुए किन्तु मज़बूती से पैर उठाती हुई चली।

छोटे से मन्दिर के गुम्बद से घुमाव लेते हुए, वीणामिश्रित ध्वनि क्रमश: स्पष्ट होने लगी—

दरस बिन दूखन लागै नैन !
जब से तुम बिछुरे पिय प्यारे,
कबहूँ न पायो चैन ॥
शब्द सुनत मेरी छतियाँ काँपै,
मीठे लागैं बैन ॥
एक टकटकी पंथ निहारूँ,
भई छमासी रैन ॥
विरह-बिथा कासों कहूँ सजनी,
बह गई करवत नैन ॥

मीराँ के प्रभु कबहूँ मिलोगे,
दुख मेटन सुख दैन ॥

मीराँ के प्रभु ?

हाँ ! मीराँ अकेली के प्रभु—यह गिरिधर गोपाल को मीठे ठपके से रिझाती हुई मीराँ, वियोगिनी मीराँ गा रही थी । मन्दिर के पास आकर खड़ी हुई वृद्धा रतन अपनी आँखें पोंछते-पोंछते गुनगुनाई 'दरस बिन दूखन लागै नैन ।' परन्तु आँखों का पानी रुका नहीं । हृदय का मंथन करने वाली मीराँ की प्रार्थना प्रतिदिन एक नया गीत बन जाती । मीराँ की आवाज़ उस की वृद्ध आँखों को हरा देती । इसे छिपाने को बुढ़िया ने इधर उधर देखा और बगल में खड़ी हुई काशी को देखकर दबी हुई आवाज़ मे किन्तु खीझते हुए कहा—"काशली ! तलवार कोठे मे रख दी ?"

"कभी की रख आई मौसी ।"

"राँड झूठी ! तैंने रक्खी थी कि मैं रख आई थी' 'मुझे बूढ़ी समझती है "

परन्तु बूढ़ी के शब्द पूरे होते-होते तो काशी और पन्ना प्राण लेकर भागीं ! ज़रा दूर खड़ी रतन ने, फिर दूर गिरिधारी के मन्दिर मे से सौन्दर्य और तेज की मूर्ति बाहर निकलती देखी—और चुप हो गई । अ हा हा हा ! मीराँबाई का ऐसा रूप । अभी-अभी रतन को खींचने लगा था । मीराँ को देखते-देखते उसका पेट ही नहीं भरता था बस, देखती ही रही । जैसे कि समस्त मारवाड़ मे मीराँ जैसी राजकुँवारी न हुई थी, न होने वाली थी !

मीराँ के मुख पर शान्ति थी, मधुर हास्य था । रतन उसे गीली आँखें लिए जाते हुए देखती रही फिर अपने ही शब्दों पर हँसने लगी और कहने लगी:—'बूढ़ी तो जरूर हो चुकी तो भी—हे गिरिधारी ! सत्तर वर्ष में यह चोला बदल जाता तो छाया की तरह अपनी मीराँबाई के साथ फिरती ।"

"सत्तर वर्ष में जवान होना है रतनी ?"

वृद्ध दूदाजी की गहरी किन्तु सहज विनोदभरी वाणी सुन पड़ी। रतन दाई सत्तर वर्ष मे भी ओढनी खींचकर सहम गई और फिर काँपती हुई जीभ से बोली, "अन्नदाता मैंने कहा आज की उच्छृङ्खल लडकियो का मुझे जरा भी विश्वास नही यह काशी और पद्मा''इसलिए''"

रतन आगे न बोल सकी। इस उमर में भी रतन शरमाकर, काँपकर खड़ी रही। "नीचे बैठ" इतना कहकर वृद्ध शान्ति से गोपालगिरिधर के मन्दिर की सीढ़ी पर बैठा और गहरी आवाज़ मे धीरे से रतन को सम्बोधित कर बोला:—"फिर कुछ पता लगा?"

आज्ञाधीन रतन कुछ दूर जमीन पर बैठी और एक नन्हे दीपक की बातों को झाड़ते हुए बोली—"ना, अन्नदाता!"

"हूँ" वृद्ध दूदाजी विचार में पड़े हुए बोले—"आज उन राजकुमारों के चित्र दिखाए थे।

"हाँ अन्नदाता!"

"फिर?"

"मीरांबाई ने तो एक तूलिका लेकर पूरा दिन उस सारे चित्रों के दोष निकालने मे बिता दिया। एक भी चित्र को देख कर उन्होंने नहीं पूछा कि कौन है, कैसा है! बापजी! मीरांबाई को समझाना मेरे लिए भगवान को समझा सकने जैसा कठिन है।"

वृद्ध दूदाजी रतन के अन्तिम शब्दों पर रुके रह कर मन्दिर के मुख्य द्वार की तरफ फिरे और सदा की तरह शीश झुका कर बोलेः—"वाह रे, मेरे प्यारे, वाह! तुझे कौन समझ सकता है? मेरी बेटी के बिना नन्दलाल, तुझे कौन समझ सकता है?"

परन्तु वृद्ध के बालम ने जवाब न दिया।

वह तो अपना वही पुराना हास्य हँसते हुए खड़ा था।

★

यह कौन है ?

चतुर्भुजी के मन्दिर से थोडी दूर, नगर के बाहर एक प्राचीन कृष्ण-मन्दिर का जीर्णउद्धार हुआ था। नगर की कुमारियाँ विशेष दिनों में यहाँ एकत्र होतीं और उद्यापन करतीं। मीरांबाई ने प्रत्येक महीने के प्रारम्भ में यहाँ दर्शन करने जाने का नियम किया था। यहाँ के कृष्ण भगवान तो काले थे ही, मन्दिर भी काला था...मन्दिर के पिछवाडे की टेकरी भी काली थी और इस पर भी ये काले जादू करते थे। मन्दिर के सामने पथराया हुआ बगीचा अपने हलके रंग के विविध पुष्पो से मन्दिर को अनोखा आकर्षण दे रहा था और इसी से आशामयी कलारसिक कुमारियों का यह मान्य स्थान था।

आज मीरांबाई आने वाली थी इसलिए मन्दिर का काला मण्डप रूपवती गोरी कुमारियों से उभरा जा रहा था। मन्दिर के गर्भद्वार के पास शीश झुकाए मीरां बैठीं थीं। वृद्ध पुजारी और जवान कुमारियाँ झुकी आंखों से राजकुँवारी मीरां को देख रहे थे। शरारती काशी ने शान्तिपूर्वक तलवार को एक ओर रखकर वीणा हाथ में ली।

पद्मा ने तलवार एक तरफ रख कर हाथ में मृदंग लिया। वीणा का मन्द-मन्द स्वर और मृदंग पर पडने वाली हलकी थाप कुमारियों के हाथ सचेत करने लगीं।

"बसो मोरे नैनन में नंदलाल।

धीरे-धीरे मीरांबाई की स्पष्ट आवाज़ वीणा के तारो को झनझनाती हुई सुन पड़ने लगी। सखियों ने आश्चर्यमय और आतुर आँखों से मीरां की

टकटकी बाँधी। पुरोहित की कन्या ने यह बात फैला दी थी कि मीराँबाई जब भगवान् की भक्ति मे मुग्ध होती हैं तो अपने आप गाने लगती है और जो कुछ गाती हैं वह किसी का गाया हुआ नहीं होता। कुमारियो के साथ-साथ विवाहिता परन्तु दूर-दूर के ससुरालो से पीहर आई हुई सखियाँ भी यह सुनने के लिए आतुरता से आई थीं।

कृष्ण की मूर्ति के सामने आँखें मिलाकर बैठी हुई मीरांबाई की वाणी फिर से सुनाई दीः—

बसो मेरे नैनन मे नंदलाल!

मोहनी मूरत, साँवरी सूरत, नैना बने विशाल।
अधर सुधारस मुरली राजत उर बैजन्ती माल ॥ १ ॥
छुद्र घंटिका कटितट शोभित, नूपुर शब्द रसाल,
मीराँ प्रभु संतन सुखदाई भगत वछल गोपाल ॥ २ ॥

कुमारियों ने राजकुँवरी मीराँ को अपने संगीत में बेसुध पाया। यही कृष्ण जब उन को देखता था अथवा वे इसे देखती थीं तब उन के मुँह पर यह व्यथा यह रंग नहीं दीख पडता था जो मीराँ के मुँह पर चमकता था।

यह चमक इस समय अधिक जान पडती थी। सब के नेत्र अनिमेष मीराँ के मुखारविन्द पर अटक रहे थे। गीत ने भूख बढ़ा दी। सारी सखियाँ खूब आतुर हो देखती रहीं। केवल कृष्ण की मूर्ति को देखती हुई मीराँ मस्त हो डोलने लगी। धीमी-धीमी वीणा डोल रही थी। उन के होठ फिर से खुलेः—

कोई कहियो रे प्रभु आवन की।
आवन की मन भावन की॥
आप न आवै लिख नहिं भेजे
बाण पड़ी ललचावन की।
ए दोऊ नैन कह्यो नहिं मानै

नदियाँ बहै जैसे सावन की ॥
कहा करूँ कछु बस नहि मोरे
पाँख नही उड जावन की ।
मीराँ कहे प्रभु कबहूँ मिलोगे
चेरी भई हूँ तेरे दाँवन की ॥

मीराँ के पल्लव-जैसे होठों से शब्द झरते थे और सखियाँ सुनती थीं। सगीत, शब्द, ताल, रस, सब स्वरों मे चढ़े थे—इतने में पुरोहित की बेटी और पन्ना ने एक साथ कारुणिक चीख निकाली। काशी विद्युत् वेग से वीणा को डाल तलवार लेकर खड़ी हो गई। सारी लडकियाँ आकुल-व्याकुल हुईं मन्दिर की दाईं ओर देखने लगी। मीराँ ने चौंक कर उस तरफ देखा। एक विकराल सिंह छलाँग मार कर मीराँ पर उचका था। लडकियाँ डर कर इधर-उधर खिसक गईं।

काशी और पन्ना ने तलवारें खींची। परन्तु अभी उनकी तलवारें सिंह पर पड़ें या सिंह मीराँ को पंजे मे ले, इस से पूर्व ही दो तीरों ने भिन्न-भिन्न दिशाओं से सिंह को भेद डाला। मीराँ दो कदम पीछे हट गईं। दहाड़ मार कर सिंह जमीन पर पछाड़ खा गया लेकिन खड़ा होने से पहले काशी और पन्ना की तलवारें सिंह की गर्दन पर गिरीं।

उन की तलवारें थीं ?

ना। उन की तलवारें तो उन के हाथों में ही थीं। सिंह की गर्दन पर पड़ने वाली दो तलवारें पराई थीं। दो जवान राजपूतों की।

मीराँ और सारा सखी समूह अवाक् होकर, अचानक आये हुए जवानों को देखता रहा। यह सब इतनी शीघ्रता से हो गया था कि विचार का भी मौका न रहा।

मीराँ क्षण भर तलवार वाले दोनों जवानों की तरफ देखती रही। एक बड़ा था। एक छोटा था। छोटा नौजवान बड़े से बोला:—

"राठौड़ के तीर से पहले सिंह के पेट में तुम्हारा तीर घुसा है इसलिए तुम हमारे मेहमान।"

बड़े ने मुस्करा कर जवाब दिया:—

"परन्तु सीसोदिया की अपेक्षा राठौड का तीर पहले सिंह के पेट को आर-पार भेद कर गया है—तुम वीर हो?"

"वीर हो तब ऐसा कहते हो।" छोटे राठौड ने प्रशंसा करते हुए कहा; परन्तु मोटा सीसोदिया देख रहा था, मीराँ की तरफ—और मीराँ, सीसोदिया से नज़र हटा मरे हुए सिंह को देख रही थी।

इतने में मीराँ के ध्यान को भंग करती हुई एक धीमी आवाज़ आई:—

"बहिन!"

मीराँ ने चौंक कर अपने दायें हाथ की तरफ खड़े बड़े सीसोदिया की तरफ देखा। शीघ्र ही, मोहित हुए सीसोदिया ने 'नकार' में उँगली हिला कर मीराँ को उस की बाँई ओर देखने का इशारा किया। मीराँ छोटे राठौड़ की तरफ घूमी।

नई उम्र के किशोर राठौड़ ने फिर से आशाभरी आँखों से कहा, "बहिन! तूने मुझे नहीं पहचाना? मैं जयमल।"

"जयमल भाई!" मीराँ ने प्यार से उस का हाथ पकड़ते हुए कहा। मीराँ अतीव हर्षित हो गई। आठ बरस बाद युवक हुए, सगे काके के बेटे को आज पहली बार अच्छी तरह देखा। बालपने के साथी, एक-दूसरे पर असीम प्रेम। हँसाबाई मरीं तब, रोती मीराँ का हाथ पकड़ कर साथ रोने वाला जयमल। और जयमल के पिता ने जब रण में अप्सरा का वरण* किया तब आँसू बहाते हुए जयमल का हाथ पकड़ गिरिधारी के मन्दिर में बैठने वाली मीराँ ही। एक ही कोख से जन्म लेने को सर्जित ये भाई-बहिन पूर्वजन्म की किसी भूल से थोड़े अलग होते हुए भी दोनों के बीच बेहद प्रेम

---

* राजपूतों की यह मान्यता है कि युद्ध में वीरगति पाने वालों को स्वर्ग की अप्सरायें वरण करती हैं। अनुवादक

था और इस का मूलकारण वह मन्दिरवाला गिरिधारी और गिरिधरवाला दादा दूदाजी थे। मीराँ अत्यन्त हर्षित होकर बोलीः—"भाई ननिहाल से कब आए?"

"इसी दम चला आ रहा हूँ। मेडता में सिंहो की दहाड़ पढ़ने लगी है न?"

"मेडता के सिहराज तुम्हे जबाब देने को खड़े ही हैं!" मीराँ ने प्यार से बोलते हुए कहा, "भाई तुम न आते तो दो-चार निर्दोष कुमारियों का लहू भगवान् के सामने बिखर जाता—अरे, मै तुमको बिलकुल पहिचान ही नहीं पाई?"

"मुझे भी पहिचानने की जरूरत है। निर्दोष कुमारियो के बचाने में मैने भी थोडी सेवा अर्पित की है ' " वाचाल सीसोदिया बीच ही मे 'मोहिनी' डालते हुए बोला। अन्तःपुर मे ही विहार करने वाली कुँवारी, जिस का मुँह कदाचित् ही देखने को मिले, उसे अनायास ही देखकर सीसोदिया सुधबुध भूला। जिस तरह मीराँ बोली थी" सीसोदिया जवान के लिए बहुत काफी था।

मात्र पुरानी कहानियों से ही सुनने को मिले ऐसा अवसर उसे मिला था! कल्पना सुन्दरी उसके सामने खड़ी थी। लज्जावती, शीलवती, रूपवती। अलभ्य मौके को उसे गँवाना नहीं था।

मीराँ ने दाईं तरफ खडे मोहक सीसोदिया की तरफ नज़र की। जवान सीसोदिया को भगवान् की मूर्ति को ढाँकते हुए, भगवान् और अपने बीच खडा मीराँ ने देखा। जवान निःसन्देह जयमल से बड़ा था। ऊँचा सुन्दर, समांगी, हँसमुख। ऐसे जवान पुरुष के साथ इतने निकट से मीराँ का यह पहला ही परिचय था। संयोग ऐसे थे कि मौन नहीं रहा जा सकता था। खुल कर बोलने में मर्यादा-भंग था। मीराँ सीसोदिये को झट जवाब न दे सकी। सिंह की मृत्यु ने रसभंग कर दिया था। निर्मल प्रेम प्रेरित कृष्ण-मन्दिर के सम्मुख सिंह की मृत्यु से मीराँ की निस्सन्देह रुचिभंग हुई।

जवान को देखकर मानो भावना भंग होने लगी। घबराये बिना, शान्ति से राजपूत कुँवरी सिंह को देख रही थी; परन्तु सीसोदिया का मीठा हास्य, उसकी नन्ही बाँकी मूँछें और नवयौवना के प्राणों को आकर्षित करने वाली उसकी आँखों मे चमकने वाली लापरवाही ने मीराँबाई को अपनी तरफ क्षण भर को खीचा। सीसोदिया ने हँसते मुँह के पीछे उसे अपना मन्दिर वाला कृष्ण छिपा हुआ दीखा। मीराँ को यह अच्छा न लगा। दृष्टि को सहज ही नीची करके समीप खड़े भाई के पास सरक कर मीराँ ने जवाब दियाः—

"मेरे प्राण बचाने का यह प्रयत्न हुआ तो—उपकार।"

"और यदि ऐसा न होता तो?" सिसोदिया ने हँसकर पूछा।

"तो फिर मैं मंदिरमे बैठे हुए उस भगवान का उपकार मानूँगी, यद्यपि उन्होंने मुझे किसी रूपमें भी उपकृत नहीं किया है!"

राठौर बहन को, राठौर भाई के सामने किसी पराये पुरुष से बातें करना मर्यादा के विरुद्ध प्रतीत हो रहा था। सिसोदिया का चेहरा ही बता रहा था कि वह कोई रजवंशी था। पर मीराँ भगवान को प्रणाम करके भाई की ओर घूमकर बोली—"चलो! मेहमान से पूछ–ताछ किये बिना ही चलें? अच्छा, तुम चलो, मै भी आ रहा हूँ।" जयमल ने कहा।

मीराबाई, जयमल से इस विषय मे अधिक बातचीत करना उचित न समझ सीधी बहली मे आकर बैठ गई। अन्य सखियाँ भी, जो अब तक घबराई हुई-सी थीं स्वस्थ होकर चलने लगीं। काशी, बीजाको मंदिर मे ही छोड़ आई थी इस लिए जब बहली में से उतर कर उसे लेने गई तो तलवार मंदिर में छोड़ आई। पद्मा, अपनी चुनरी का छोर मरोड़ने के बदले बैल की पूँछ मरोड़ती हुई मीराँबाई को देखती रही। पुरोहित की बेटी मन्दिर में पड़ी काशी की तलवार उठा कर क्षणभर सिसोदिया को और क्षणभर मीराँ को देखती हुई दौड़ती दौड़ती बहली के पास आ खड़ी हुई। काशी ने जोर से उसे नोंच लिया।

काशी के शरीर में पागलपन समाया था। खून और साँस उत्तेजित

क्रिया कर रहे थे। सिंह का मरना, सीसोदिया का आना, मन्दिर में ही एकत्र होना उसके मन में भाट-बारहट का अद्‌भुत कथाओं से भी ज़्यादा चमत्कारी प्रसंग था। उसकी आँखें और उसका हृदय अनेक बातें कहने के लिए तड़प रहे थे। पद्मा, पुरोहित की पुत्री, अन्य सहेलियाँ, सहचारियाँ और दासियाँ आँखों से अनेक बातें एक दूसरी को बिना इशारे किये कर रहीं थीं। मीराँबाई ने, सहज कुतूहल से एक बार मन्दिर की तरफ भाई को देखने के लिए दृष्टि पसारी और फिर बहली की एक छोटी सी छड से सटकर बैठी।

काशी ने मनहीमन निश्चय कर लिया था कि, बस, अब कल से गिरधारीलाल के मंदिर में पूजापाठ के लिए उसे स्वयं आना पड़ेगा। पद्मा ने भी मन ही मन सोच लिया कि वह भी स्वयं ही मंदिर का ताला लगाकर आयेगी। मीराबाई के विषय में सभी अपने अपने मस्तिष्क में तर्क-वितर्क करने लगे लेकिन उनके सामने बोलने का किसी को साहस नहीं हुआ, यहाँ तक कि काशी भी मीराँबाई से कुछ कहने का साहस न कर सकी।

उसमें सबसे अधिक उत्सुक हो रहा था सिसोदिया। कौन था वह?

"आपने अभी तक यह नहीं बताया कि आपका शुभ नाम क्या है?" जयमल ने सिसोदिया से पूछा।

"भोजराज।" सिसोदिया ने उसी लापरवाही से हँसते हँसते जवाब दिया।

"युवराज भोजराज? राणा साँगा के वीरपुत्र? पधारिये, पधारिये युवराज।...तो अभी तक आप मेरी परीक्षा ले रहे थे?" जयमल तनिक घबराहट के साथ क्षुब्ध-सा होकर बोला।

"नहीं एक वीर को ढूंढ रहा था। यदि आप जैसा वीर मेरे साथ हो तो मैं संसार के किसी भी हिस्से को जीत सकता हूँ। वैसे तो राठौर और सिसोदिया पहले कई बार मिल चुके हैं परन्तु हमारा यह मिलन, भगवान चाहे तो सारा संसार देखेगा!"

"यह तो आप बहुत बढ़चढ़कर प्रशंसा कर रहे हैं युवराज! सिंह का

काल बनना ही तो क्षत्रियों का सच्चा धर्म है—इसमे कोई बड़े साहस की बात नहीं है !"

"यही बहुत बड़ी बात है ! अस्तु, देखते हैं आगे क्या होता है। हाँ, मै इसी समय चित्तौड जाना चाहता हूँ।" यूँ कहकर युवराज ने बात विषय बदल दिया और दूसरी ही बातें करने लगे। युवराज की बहुत इच्छा हो रही थी कि मीराँबाई के विषय मे जितना पूछा जाय, पूछ ले और पूछने पर आकाश में उडकर राणा से मिले और उनकी अनुमति लेकर फिर आकाश मे उडते हुए यहां आ पहुंचे और मीरा का हाथ थामकर वापस चित्तौड लौट जाये। मीरा का प्रभाव युवराज के तन, मन और अणु अणु पर छाया हुआ था।

अवश्य, अवश्य आज उसे कुछ हो गया था !

राज्य की सीमा पर मुग़लों की एक छोटी सी टोली को भगाकर मार्ग भूलकर भोजराज यहाँ आने पर फिर अपना मार्ग भूल गया था। पहले तो उसे लगता कि वह इसी संसार मे है और उसके आसपास यही संसार है किंतु आज उसे मालूम हुआ कि वह स्वयं है ही नही, और यदि है भी तो उसे मालूम नहीं है कि वह स्वयं कौन है, कहाँ है, और कहाँ जा रहा है ? वह बस इतना ही जानता है कि वह जा रहा है !

जयमल ने भी मीराबाई के विषय मे बहुत कुछ सुन रखा था किंतु आज वह एक उलझन में आ फंसा था। भगवान के नाम पर सुध-बुध खोने वाली मीराँ बडी है या मीराँ के पीछे सुध-बुध खो बैठने वाला यह युवराज बडा है इसका निर्णय वह न कर सका।.. फिर भी भोजराज उसे पसंद आ गया था।

युवराज को मेवाड की ओर विदा करके जयमल, दादा दूदाजी को यह शुभ-संवाद सुनाने के लिए जल्दी-जल्दी महल की ओर चल पड़ा, जहाँ मीरा-बाई अपने गिरधारीलाल के दोनों चरण पकड़े सिर झुकाये बैठी थी।

रात गहरी हो चली थी। मीराबाई ने धीरे-धीरे आँखें उठाई और दूसरा कोई न कह सके इस तरह गद् गद् होकर धीरे धीरे कहने लगी—

"गिरिधारी, बहुत कुछ किया, बहुत कुछ कहा परन्तु तूने मेरी प्रार्थना न सुनी। क्या तुझे किसी की दया-माया और स्नेह की तनिक भी पर्वाह नहीं है? ...बोल दयामय, एक बार तो बोल! तू मुझसे बोलेगा या नहीं? बोल, नहीं तो मै तुझसे बुलवाँऊगी। मै तुझसे बुलाये बिना नही रहूँगी। जवाब दे, तूने उसे मेरे पास क्यों भेजा? कौन है वह, यहाँ क्यों आया था? क्या तू मेरे और अपने बीच मे जानबूझकर उसे भेजना चाहता है गिरिधारी!... क्या यही तेरी इच्छा है? मेरे गिरिधारी, मैं भी अबला हूँ मानवी हूँ—कब तक इस तरह सहन करती रहूँगी?...मेरे प्रभु उसे दूर रख—मुझसे दूर रहने दे उसे मेरे प्रभु, उसे मुझसे दूर ही रहने दे!"

कहते कहते मीराबाई ने अपने लाल-लाल ओठ अपने गिरिधारी के चरणो मे लगा दिए। किंतु वह निठुर गिरिधारी अपनी स्थिर हँसी लेकर उसी तरह हँसता रहा।

हृदय-मंथन

"माँ, यह सब व्यर्थ की बातें हैं—कुँवरजी बिलकुल नहीं मानते !"

"क्या कह रही है ऊदा ? भोज नहीं मानता ?"

'नहीं माँ, न बूँदी, न मालवा, न अंबर, न सांभर—कहीं भी नहीं !"

"इनमें से हर जगह की राजकुमारी सिसोदिया वंश की शोभा बन सकती है।" राजमाता ने आश्चर्य चकित हो कर कहा—"फिर भी भोज को इनमें से एक भी पसंद नहीं आती !"

"माँ जब कोई यही समझ बैठे कि संसार में केवल मेड़ता ही है तो फिर उसे यही समझने देना चाहिए कि..."

"क्या समझने देना चाहिए ?" राजमाता कारमेतीजी ने उसी आश्चर्य के साथ पूछा।

"....कि संसार में केवल मेडता गाँव ही है और सब जगह उजाड, वीरान है !" ऊदा ने मुँह चढ़ा कर इस व्यंग को बढ़ा-चढ़ा कर कहा। राजमाता भी अति गंभीर होकर यह सब सुनती रहीं। फिर अचानक उन्होंने पूछा—"तूने उस कुमारी का नाम क्या बताया था ?"

"मीराबाई !—मेड़ता के राव दूदाजी की पौत्री, उस पर राठौर वंश की—फिर कहना ही क्या ?"

"कुछ नहीं !" राजमाता ने सिर हिलाते हुए कहा।

"राठौरों ने चित्तौड़ के लिए कभी कुछ किया थोड़े ही है—" 'पहले

की शत्रुता को ताज़ा करने के लिए ऊदा ने उसी व्यंग भाव से कहा। राजमाता पहले तो चकित-सी हुई फिर धीरे-धीरे बोलीं—"राठौरों ने अपनी कुँवरियाँ सिसोदियाओं को देकर उनकी राजगद्दी हड़पने का कम प्रयत्न नहीं किया है! ..."

किन्तु बाप्पा रावल और खुमान के वंशजों को श्री एकलिंग भगवान का आसरा है नहीं तो—"

"किन्तु माँ, ये दूदाजी तो परम वैष्णव हैं और दादाजी + भी परम वैष्णव थे..." भोजराज के दूर के रिश्ते की विधवा भाभी रूपा ने बचाव करते हुए कहा।

"भाभी, भगत भगत में भी फ़र्क़ होता है। भगवान् का ध्यान करके एक पैर ठंडे जल मे रखकर खड़ा रहने वाला बगुला भी भगत ही कहलाता है!"

"तुम भूल रही हो ऊदाजी" सत्यप्रिय भोली भाली भाभी से न रहा गया। वह समझी कि ऊदा, दूदाजी को कायर भगत समझ बैठी है इसलिए उसने अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हुए कहा—"तुम भूल रही हो ऊदा जी, यहाँ भी दूदाजी के बारे में कहा जाता है कि जब उनके हाथ मे माला नहीं होती तब एक ही वस्तु होती है..."

"क्या?" ऊदा ने ठोड़ी पर उँगली रखकर व्यंग से पूछा।

"तलवार!" भोली भाभी ऊदा को गंभीरतापूर्वक समझाती हुई बोली—"माँ, मेड़ता को मेड़ता बनाने वाले दूदाजी ऐसे वैसे भगत नहीं, सच्चे भगत हैं। वे वृन्दावन वाले कृष्ण को मानते हैं और कुरुक्षेत्र वाले कृष्ण को भी अच्छी तरह जानते हैं। अधर्म की बात वे देखें तो सगे भाई को मार डालते हुए भी वे नहीं हिचकिचाएँगे!"

"तो मीराँबाई भी ऐसी ही होनी चाहिए—किसीको साफ़ करते तनिक भी देर न लगे!" ऊदा ने अपने स्वाभाविक व्यंग से इस तरह कहा। मानो

+ राणा कुंभा—राणा सांगा का दादा।

दूदाजी की संतान ख़ूनी होती हों !

''वही लहू है !'' भोली भाली रूपा भाभी ये शब्द कहने के बाद यकायक समझकर चुप हो गई। वह समझ गई थी कि उसके सरल शब्दों का यहाँ उलटा अर्थ निकाला जा रहा है।

"सही बात है—राठौरी लहू है !" ऊदा ने फिर अपने ढंग से कहा। "बहन, सिसोदिया राजवंश को राठौर राजपूतनियो के लहू से कई बार सींचा गया है और बहाया भी गया है !" भोली भाली भाभी पुनः राठौरी गौरव का अनुभव करती हुई आवेश में बोली।

"तो मना कौन करता है भाभी, सिर झुकाकर मानना ही पड़ेगा इस बात को।"

मारवाड के राजा रिडमल्ल की कन्या मेवाड के राणा को ब्याही थी। जब वह युवती थी तब ही विधवा हो गई, उसका एक बालक था इसलिए राजा रिडमल्ल अपने नाती को लेने मेवाड आये तो उनकी नीयत बदल गई। उन्होंने मेवाड़ के भावी बालराणा को समाप्त करके मेवाड़ की गद्दी हड़पना चाही तब सिसोदिया वीरचन्द्र ने उनको मार डाला।

इसी घटना को लक्ष्य करके ऊदा ने यह व्यंग कहा था। वीर दूदाजी इसी राजा रिडमल्ल का पौत्र था ! भोली भाभी इस व्यंग से ज़रा भी पीछे न हटी। उसी आवेश में उसने राजमाता से कहा—"माँ, घर घर लकड़ियाँ जलती हैं, उन्हीं मे चंदन भी होता है। परख लेना चाहिए।"

"ओ...हो ! तो भाई साहब लकड़ियों में चन्दन ढुँढ़ने चले हैं !"

"ढूँढ निकाला है माँ !" भाभी जरा और गुस्से से बोली। राजमाता ने वादविवाद को वहीं रोक दिया।

"दुर्गे ! दुर्गे !" कहती राजमाता खड़ी हुई और सन्ध्या का समय नज़दीक आता था इससे कुलदेवी के मन्दिर की तरफ़ चलीं। माँ को बेटी का दोष नहीं दीखता। राजमाता को भी ऊदा के बारे में कुछ आपत्तिजनक न

जान पड़ा; परन्तु विधवा बहू के शब्द भी उनको सच्चे लगे। भोज का विवाह हो यह सबसे अधिक महत्व की बात थी। युवराज होकर भी अभी भोज कोई रानी नहीं लाया था, जो मेवाड़ की भावी महारानी बने। राणा साँगा के तीनों पुत्र भोज, कर्ण और रत्नसिंह की माता इस समय की राजमाता थी परन्तु मारवाड़पति राव जोधाजी की पौत्री धनबाई थीं। इससे राजमाता करमैती भोज की सौतेली माँ होते हुए भी अपनी सौत की मृत्यु के बाद विक्रम वगैरह अपने पुत्रों में और भोज के बीच मे भेदभाव नहीं रखती थीं। कुलदेवी दुर्गा पर उनकी अत्यन्त आस्था थी, इसलिए भोजराज की इच्छा शीघ्र पूरी हो इस शुभभावना से राजमाता कुलदेवी को रिझाने के लिए सीधी मन्दिर की ओर जाने लगी; परन्तु शरारती ऊदा माँ के साथ न जाकर भोजराज के आवास में आ पहुँची।

आवास में पैर रखते ही वाचाला बोल उठीः

"भाई साहब, मीराँ आई है?"

"हैं?" विचारों में खोया हुआ भोज इतना कहकर एकदम खड़ा हो गया; परन्तु बहिन की शरारती आँखें देखकर निःश्वास फेंकता हुआ बैठ गया।

"ओ..... हो! बात यहाँ तक बढ़ गई है?" भोज के पास आती हुई ऊदा व्यंग मे कहने लगी। "होगा ही भाई!—वैष्णवी है। मेड़ता को मेड़ता बनानेवाले राव दूदाजी 'कोरे भगत' नहीं सच्चे भक्त हैं। उनकी पौत्री कोई ऐसी वैसी है?"

भोज बहिन की तरफ दुर्लक्ष करके चुप रहा।

"वृन्दावन के कृष्ण और कुरुक्षेत्र के कृष्ण को माननेवाले सच्चे भक्त हैं ये।"

भाई को छेड़ने के लिए ऊदा ज़रा ऊँची आवाज़ में बोली। किन्तु भोज मौन रहा।

"कितनी सुन्दर! सच्ची वैष्णवी ही ऐसी मोहिनी..."

"बहिन ! मेरा सिर दर्द करता है।" ऊदा को चुप कराने के लिए भोज चिढकर बोला।

"बस ! अकेला सिर ही ! आश्चर्य है ज्वर तक नहीं चढा ! ज्वर आना ही चाहिए। महाश्वेता कादम्बरी मे "

"बहिन तू यहां से जा।" एकदम झुंझलाकर भोज बोला।

"बिना कहे। अब बहिन की थोड़े कोई क़ीमत है ? घर में पराई आयगी तो घर-की तो पराई होगी ही ! अब से मेरा कहना तेरा सिर दर्द ही करावेगा !"

"ऊदा जान पड़ता है, आज तू लड़ने आई है—लड़। ले, यह सुनने को बैठा हूँ। बोल क्या कहती है ?—मीराँ ? हाँ। मीरॉ। ब्याहूँगा तो इसीको—नहीं तो किसी को नहीं। बस ?"

"बस।"

"और कुछ पूछना है ?" भोज क्रोध से खड़ा हो ऊदा का हाथ पकड़ते हुए उसकी तरफ़ देखते हुए बोला—"हाँ, हाँ, हाँ। इसका विचार करता था। इसीका विचार करता हूँ। इसीका विचार करूँगा।"

जैसे भोज की वाक्यपूर्ति करती हो इस तरह मुस्कराती हुई ऊदा साथ ही बोली "और ब्याहूँगा तो भी, ब्याह के पहले और ब्याह के बाद—इसीका, मात्र मीराँ का ही विचार करूँगा !"

"हाँ।" भोज ने गर्जना करके उसका हाथ छोड़ते हुए कहा।

"चन्दन लेप लाऊँ ? ज्वर आ रहा है।" ऊदा ने भोज के ललाट पर हाथ रख झूठा प्रदर्शन करते हुए इस तरह पूछा मानो कोई गंभीर बात हो। भोज होंठ भींचे बहिन को देखता रहा। अपना सिर दबाने वाली ऊदा के हाथ की तरफ भी उसकी नज़र नहीं गई।

ऊदा हमेशा भाईयों को चिढ़ाती। उसकी यह आदत थी। ऊदा हमेशा लट्ठ तोड़ बोलती यह उसकी प्रकृति थी। बाकी, हमेशा यह हँसमुख और

चंचल दीखती। भोज का मुँह अपनी तरफ फेरते हुए वह बोली: "चार चार दिन से तुम दुर्गा की आरती के समय नहीं आते। राजमाता कितनी नाराज़ होती हैं? तुम तो जानते हो, आरती मे न जाना हम कितना अपशकुन मानते है! चलो।" इतना कहकर भोज का हाथ खीचती हुई ऊदा चलने लगी। भोज जवाब दिये बिना चलने लगा। ऊदा थोडी देर उसके मुँह की तरफ देखकर चलती चलती कहने लगी: "भाई, सच कहना। क्या मीराँ भी तुमको इतना याद करती होगी?"

भोज ठिठककर खडा हो गया, परन्तु जवाब न दे सका। वह अपनी बात जानता था, मीराँ की नही।

जहाँ एक तरफ बहिन भाई को यों पूछ रही थी, वहाँ...दूसरी तरफ भाई बहिन को पूछ रहा था।

जयमल, मीराँ को।

और मीराँ बोले बिना बैठी थी।

मीराँ को ढाँढ़स देने के लिए रतन काँपते हुए हाथ से उसका झूमर ठीक करती हुई भूमि पर बैठी थी और जयमल, बुद्धिबल से जितना संभव है, बहिन के अगाध हृदय का निराकरण करने का प्रयास करता था।

मीराँ को कोई पहिचान न सका था। माँ, पिता, चाचा रतन या काशी कोई नहीं। तब युद्ध शास्त्र में ही मस्त रहनेवाला जवान जयमल तो समझ ही क्या सकता है?

मीराँ शान्त थी—शान्त पड़े हुए अगाध समुद्र की तरह। इतनी शान्त कि सतह की झीनीझीनी लहरें तक अदृश्य थीं।

बात एक ही कुंडाले में फिर रही थी।

भाई पूछता था:—कुमार पसन्द है?

बहिन विचारती थी: किस लिए पसन्द आना चाहिए?

रतन समझ रही थी: किस लिए पसन्द न आना चाहिए?

दस दिन बाद मीराँ इसी स्थान पर इसी तरह बैठी थी। फर्क इतना ही था कि इस समय शीश झुका हुआ था। पास ही राव दूदाजी बैठे थे और दीख न पड़े तो भी, बातें सुन सके, इस तरह थोड़ी ही दूर रतन बैठी थी।

वृद्ध दादाजी कह रहे थे।

"बेटा! अपने बड़े भाग्य! वर्षों बाद वापस राठौड़—सिसोदिया राजवंश अधिक निकट आयेंगे। राणा साँगा की अभी नाजुक स्थिति है। युवराज भोज ने विवाह का हठ किया है। गोविन्द न करे पर राणाजी रण-क्षेत्र में शान्त हो जायँ तो भोजराज के कुँवारे रहने से मेवाड़ की गद्दी पर भारी विडम्बना खड़ी हो जाय, धर्म-संकट है बेटा, एक स्त्री के लिए महान् राज्य की भी परवाह न करनेवाला राजकुमार ऐसा वैसा नहीं होता है। बेटा-गोविन्द ने अपना प्रेम बराबर दिखलाया है। मेरी बेटी राजरानी बनने को है! गोविन्द की आज्ञा है, राजरानी बनो।"

मीराँ खड़ी न हुई। बोली भी नहीं।

"तो बेटा, आई हुई माँग अस्वीकार नहीं होती। तुम तैयार हो. "

दादा ने आगे झुकते हुए बहुत प्रेमपूर्ण आवाज़ मे पूछा। जिसमें आधा वियोग का कम्पन जान पड़ता था।

मीराँ ने सिर ऊँचा नहीं किया, परन्तु विचारमन्थन में पड़ी हुई मीराँ स्वस्थ हुई और शान्तिपूर्वक अविचल भाव से बोली—

"दादाजी! मुझे विवाह करना ही चाहिए?"

"बेटा!" वृद्ध मीठी आवाज़ मे आश्चर्य से कहने लगा, "हर एक कन्या विवाह करती है!"

"मुझ से विवाह नहीं होगा" पूर्ववत् स्थिति मे, सिर ऊँचा किए बिना मीराँ बोली।

"बेटा ! यह क्या कहा ? हरएक कन्या का धर्म है" वृद्ध दूदाजी सहज ही काँपते हुए आश्चर्य में बोले ।

"परन्तु मै कुँवारी नहीं ।"

"क्या कहा बेटा ! क्या कहती है ?"

वृद्ध आँखें खींचकर, घबराते हुए बोल उठा ।

"हाँ दादा ! मैं कुँवारी नहीं । विवाहिता हूँ ।

"कहाँ ?— कब ?—किससे ?"

वृद्ध दूदाजी, वृद्ध रतन और दूर चुपचाप आकर बैठा हुआ जयमल उच्चारण किये बिना आश्चर्य से पूछ बैठे । आखिर वृद्ध ने काँपते होठों से पूछा—"किसे मीरी ? कहाँ ?

"सामने के मन्दिर मे—बारह बरस पहले । गिरिधारी को ।"

वृद्ध क्षणभर ठहर गया । मीराँ पागल तो नहीं हुई ? फिर रुककर, प्यार से मीराँ का हाथ अपने हाथ में थमाया और पुचकारते पुचकारते बोले "बेटी, इस साँवलिये का दास कौन नहीं होना चाहता ? हिये मे बसा हुआ यह, हरएक का नाथ है, प्राण है, पति है । परन्तु यह संसार है । संसार की गाड़ी धर्म और कर्तव्य रूपी पहियों से चलती है । विवाह करना कन्या का कर्त्तव्य है । विवाह करके गृहस्थाश्रम बनाना विवाहितो का कर्त्तव्य है और गृहस्थाश्रम द्वारा संसार को सुखी करना स्त्री का धर्म है । धर्म और कर्त्तव्य के बिना संसार नहीं चलता । मानवता मर जाती है । गोविन्द ने संसार मे संसारी बनाये है, मनुष्यता को सफल करने के लिये—मिटा देने को नहीं । ना बेटी, विवाह भगवान् का आदेश है : पुरुष को और स्त्री को, तुझे विवाह करना चाहिए । एक राज्य को छिन्न-भिन्न होने से बचाने को—मृत माता और पिता की आत्मा को पूरी मुक्ति दिलाने के लिये तुझे विवाह करना ही चाहिए—हाँ । कहो बेटा..."

"दादा ! परन्तु मैं किसी को सुखी न कर पाई तो ?"

"हरि, हरि, बेटा ! गोविन्द की लाडली दूसरों को सुखी न कर सके ? तब तो फिर नदी का पानी उलटा बहेगा। मेरू हिमालय चलने लगे—समुद्र मर्यादा छोड दे—नहीं मानता। जरा भी नहीं मानता।...तो फिर तैयार हो बेटी ?"

"आपको जो उचित लगे वही करो।"

सिर ऊँचा किये बिना, दादा की मीरी, पूर्ववत् बैठी बैठी बोली। मीराँ की पीठ सहलाता हुआ दादाजी का वृद्ध, काँपता हुआ हाथ बढा और मीराँ को दादाजी ने छाती से लगा लिया।

देखने वाले देखते तो पता चलता कि राव दूदाजी की ही आँखों मे आँसू न थे—राजभक्त रतन भी गुप्त रूप से रो रही थी। केवल जयमल ही आनन्द मे नाचता हुआ बाहर चला गया—बधाई देने......

हो गये श्याम दूज के चंदा ॥
मधुवन जाय रहे मधुबनिया,
हम पर डारो प्रेम को फंदा ॥
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर,
अब तो नेह परो कछु मंदा ॥

उस रात शयन-आरती के बाद मीराँ अपने गिरिधारी के पास बैठो गुनगुना रही थी।

परन्तु दूज के चाँद बने हुए गिरिधारी जैसे रोज हँसते थे उसी तरह हँसते रहे। बारह बारह बरस से रात और दिन गोविन्द के चरण में सिर रक्खे मीराँ ने एक बार भी दर्शन देने के लिये असंख्य बार प्रार्थना की थी, परन्तु मीराँ गर्म आँसुओं में अपने चरण पखारने वाला गोपाल गिरिधारी उसी तरह हँसे जा रहा था जैसे बारह-बारह बरस से रोज हँसे जा रहा था।

मीराँ ने आज भी गोविन्दजी के चरण आँसुओ से धोये और गीली पलके उठाये आर्द्र स्वर मे कहने लगी,

"तेरी इच्छा है तो मैं विवाह करूँगी....परन्तु गिरधारी इतना तो समझा, किस लिए? धर्म क्या? कर्त्तव्य क्या? एक ही बार, एक ही क्षण, मेरे सामने आकर बोल—फिर जिन्दगी भर जैसा तू कहेगा वही करूँगी। केवल एक बार तेरे मधुर शब्द सुनने दे! एक बार बोल सखे! एक बार! एक ही बार!"

परन्तु गिरिधारी न बोला।

पत्थर की मूर्ति हृदयंगम हास्य, जैसे पहले बिखेर रही थी वैसे ही बिखेरती रही और पगली मीराँ गिरिधारी के चरणों को आँसुओ से भिगोती रही। कदाचित् यह नरम हो—मान जाय, बोले, परन्तु...परन्तु....

कुलदेवी

दस दिन तो गये, दूसरे दस दिन बीतने मे भी देर न लगी और मेवाड़ की बारात मेड़ता की राजकुँवरी को लेकर गाजों बाजों से राजमहल में पहुँची तो लोगो को मालूम हुआ, कुँवर भोज मेड़तिया मीराँबाई को ले आये।

राणा साँगा की धाक गुजरात से पँजाब और सिन्ध से बँगाल तक सुनी जाती थी। उनकी शक्ति के आगे परदेशी ठंडे पड़ गए थे। उनकी वीरता के आगे अच्छों-अच्छों का पानी उतर गया था। राजस्थान का एक-एक राजपूत उन पर न्यौछावर होता, परन्तु मुगलो के नये आक्रमण और पठानों के पुराने झुँड राजस्थान की सीमा पर हुँकारते हुए उछल रहे थे। राज कुटुम्ब के भीतर भयँकर अनबन घुस गई थी और राणा की धाक के मारे सब शान्त रहते थे तो भी उनका स्वास्थ्य और अन्य बातें ध्यान मे रखते हुए मेवाड़ की स्थिति नाजुक थी। सरहद पर युद्ध चालू थे। राणा साँगा पुत्र के विवाह के लिए चित्तौड़ में ही था; परन्तु उसका जी सरहद पर भटकता था।

राणा की नाजुक स्थिति पर खास ध्यान रखते हुए भी युवराज का विवाह महोत्सव छिपा न रहा। भाटों, चारणों और कवियों, शहनाइयों और राजवालों को कोलाहल न करने की विशेष आज्ञा होते हुए भी शोरगुल हुआ। प्रजाजनों मे आनन्दोत्सव की सीमा रखते हुए भी न रही। ऊँची-नीची आड़ी टेढ़ी फटती हुई ऊदा भाभी को देखने के लिए आकुल व्याकुल हो रही थी।

वयोवृद्ध राजमाता के चरणों में झुकी हुई मीराँ जब खड़ी होने लगी उस समय ऊदा ने भाभी को जी भरकर देख लिया। राठोड़ों के विषय में

हलकापन देखने वाली उसकी आँखें हलकी दृष्टि से हो मीराँ को देखने लगी; परन्तु जब मीराँ उससे मिली तो उसका भाव अदृष्य हो गया। आश्चर्य हुआ मीराँ जादूगरनी थी ? मीराँ की आँखों में और उसके मुख पर अद्‌भुत चमक थी। राज परिवार मे जिनका स्वभाव अन्तःपुर में नई आनेवाली के प्रति दुश्मन हो जाने का ही पड़ चुका है ऐसी नई पुरानी और छोटो-मोटी सभी स्त्रियाँ मीराँ के रूप और विनय में कुँठित हो गईं। मोराँ राजपुतानी तो थी परन्तु अहंकार नहीं दीख पड़ा। क्षात्रतेज था; परन्तु उन्माद नहीं। यह कैसी राजकुमारी रे !

अपनी अपेक्षा और सबों मे कुछ कमी और ओछापन देखने की आदत वाली राजमाता भी क्षण भर चुप रही; परन्तु भोज जिसके पीछे उमँग से गया था वह लड़की सोने-हीरो की होनी चाहिए ऐसी उनकी कल्पना को कुछ आघात जरूर पहुँचा। मीराँ में क्या था ? राजमाता विचार करने लगी। अपनी जवानी मे स्वयँ मीराँ से जरा भी कम नहीं थी। मीराँ से हैरान हुई राजमाता ने इस तरह अपने मन को जलाया। तो भी उनको मीराँ पसन्द आई। अलबत्त, सब से अधिक खुश हुई थी एक कोने में छिप कर खड़ी हुई विधवा भाभी रूपा।

साँझ होने को आई थी। दुर्गा आरती का समय हो आया था। राजकुटुम्ब से मिल चुकने के पर मीराँ को उनके रंगमहल में ले जाया गया। जहाँ पन्ना और काशी गिरिधारी का पहरा देती हुई एक महल मे राह देख ही थी।

क्यो नहीं ! गिरिधारी बिना, अपने गिरधारी के बिना, मीराँ ससुराल आती ? ना ..मीराँ से विवाह करने वाले हँसते गिरधारी को भी ससुराल आना पड़ा था।

नियमानुसार मीराँ पूजा तैयार करने के लिए प्रस्तुत हुई और वहीं खड़ी-खड़ी पन्ना-काशी साथ हो मदद करने लगी। उनके मनमें घबराहट थी कि कदाचित् युवराज अचानक आ जायँगे तो उनकी मीराँबाई को भजन करते

देख क्या समझेंगे ?—ससुराल की पहली रात मे ?

राजमाता के महल मे कुलदेवी दुर्गा की स्थापना थी। उनकी नियमित पूजा होती थी और कुलदेवता एकलिंगजी महादेव के साथ-साथ शुभ कार्य मे कुलदेवी दुर्गा की पूजा और आशीर्वाद भी लेते।

संध्या दर्शन की तैयारी हुई। राजकुल का नियम था कि नववधू पहले कुलदेवी को प्रणाम कर संसार का प्रारंभ करे। समय होने-होने पर विविध शृंगारों मे सजी हुई राजकुल की समस्त स्त्रियाँ मन्दिर की तरफ आने लगी। राजमाता और मटबोली ऊदा भी आ पहुँचीं। दीख न पड़ी केवल मीराँ।

"जाओ मेडतीजी * को कुलदेवी के आशीर्वाद के लिए बुला लाओ।"

राजमाता ने ऊदा को देखकर आज्ञा दी। ऊदा दो तीन भाभियों को लेकर ठुमक-ठुमक चलती हुई मीराँ की नई हवेली में पहुँची।

समय हो गया था इसलिए मीराँ गिरिधारीलालजी की सेवा में मशगूल थी। ऊदा आ पहुँची थी परन्तु उसका ध्यान इन पर न गया। ऊदा ने झीनी आँखों से देखा और फिर मीराँ का ध्यान खींचने के लिए जरा जोर से पैर पछाड़ती हुई डग भर कर आगे आ पहुँची। परन्तु मीराँ का ध्यान पूजा में ही रहा। ऊदा जरा और पैर पछाड़ती हुई मीराँ के बिलकुल समीप आ खड़ी हुई। मीराँ अब भी न हिली। आदत के मुताबिक ऊदा का मन डोला: परन्तु संयम रख कर धीमी आवाज मे बोली: "भाभी सा! राजमाता बुलाती हैं।"

"मुझे ?—कहाँ ?" आश्चर्य से चौंककर मीराँ ने ऊदा की तरफ देखते हुए पूछा और फिर शान्ति से बोली: "पधारो।"

"आपको किसी ने कहा नहीं ?" बनावटी आश्चर्य दिखाते हुए मार्मिक

---

* मीराँ

भाव से ऊदा बोली, "ठीक है ! आपको कौन समझावे ! कुछ नहीं । राजमाता आपको कुलदेवी का आशीर्वाद लेने के लिए बुलाती है—पधारो ।"

"बहिनजी मैं गिरधारीलालजी की पूजा करने बैठी हूँ ।" जरा संकोच में परन्तु विनयपूर्ण मृदु वाणी मे मीराँ बोलीं ।

"इसलिए...आप नहीं आ सकतीं...नहीं ?" हँसने का ढोंग करती हुई ऊदा बोली ।

"मैंने अभी-अभी पूजा शुरू की है । पूरी पूजा किए बिना मैंने कभी आसन नहीं छोड़ा ।"

"मतलब कि आप नहीं आयेंगी । कोई बात नही ।" बनावटी हास्य को होंठ पर नचाती हुई ऊदा इतना बोली और फिर अपनी भाभी कमलाकुँवर की तरफ मुँह फिराकर कहा, "कुलदेवी से गिरिधारीलालजी की मूर्ति अधिक सुन्दर हैं—नहीं ?"

कमला घबरा गई और अपने को संभालती हुई बोली, "बहिन वह तुम्हें पसन्द हो तो जगत् को पसन्द हो !"

"आपको मेरे गिरधारीलाल पसन्द है ?" भोले भाव से, प्रोत्साहित होकर मीराँ ने ऊदा से पूछा ।

"क्यों नहीं ?" ऊदा ने चट, परन्तु मार्मिक जवाब दिया, "आपको पसन्द है इसलिए मुझे भी पसन्द है ।"

"ऐसा भी कहीं कहते हैं ऊदाबाई !" दूसरी भाभी ने टोका ।

"क्यों नहीं ?" व्यंगभर बनावटी आश्चर्य से ऊदा बोली "मेड़तीजी को गिरिधारी पसन्द है । मेरे भाई को मेड़तीजी पसन्द है और मुझे मेरा भाई पसन्द है । इसलिए मुझे गिरिधारी हों कि नहीं ? चलो तब भाभी सा, जय गिरिधारीलाल, हमारे दर्शन का समय हो आया है ।" इतना कह हाथ को जरा और लम्बा करके प्रणाम कर ऊदा, भाभियों को ले तेजी से माँ के पास चली गई ।

अकेली कैसे ? मेडती जी कहाँ है ?"

आश्चर्य करती हुई राजमाता ने जरा सत्तावाहक लहजे मे ऊदा से पूछा।

स्त्री मण्डल चौंककर राजमाता को तरफ देखने लगा। ऊदा ने चिन-गारी भडकाने के लिए ठंडी आवाज मे कहा:

"माँ, मेडतीजी नहीं आतीं।"

"नहीं आती ?" राजमाता ने ऊँचे स्वर से कहा। स्त्रियों ने भी साँस खींची।

"हाँ माँ, वे गिरधारीलालजी की पूजा करने बैठी हैं। कहती हैं कि नहीं आ सकती।"

"कहती है कि नहीं आ सकती ?" राजमाता चिल्ला उठीं।

"हाँ माँ, वे नहीं आवेंगी। गिरिधारीलाल की मूर्ति हमारी कुलदेवी से ज्यादा सुन्दर है—क्यों भाभीसा ?" ऊदा ने कमला को पूछा। कमला ठिठक कर चुप रही। ऊदा कहने लगी, "माँ, गिरिधारीलाल को छोडकर कुलदेवी को झुकने कौन आवे ?"

"चुप रह लडकी।" राजमाता गरजी।

चिनगारी का भडाका हो चुका।

दाँत मींचकर राजमाता कहने लगी, "सीसोदियों की कुलदेवी आगे मेड़तीजी नहीं झुकेंगी यह ? सीसोदियों की कुलवधू बनकर इस राजगृह में पाँव रखने वाली किसी भी राजकुमारी ने आज तक कुलदेवी के पैर पडने से इन्कार नहीं किया और ये, आज की आई हुई दूर से ही इन्कार किये देती हैं ? महाराज !" देवी की पूजा करते हुए वृद्ध पुजारी के पास आकर राजमाता ने अतिशय क्रोध में कहा, "आरती शुरू कर दो और ऊदा, बुला राजकुमार भोज को इसीदम......।"

"परन्तु माताजी.... ." ऊदा बीच ही में बोलने लगी—जैसे निर्दोष

होकर मीराँ का बचाव करती हो! परन्तु, राजमाता का क्रोध प्रज्वलित हो उठा था। राजमाता का गुमान! राणा साँगा की पत्नी होने का अभिमान! और समस्त स्त्री-मंडल में अत्यन्त सम्मान! उनकी अवज्ञा करनेवाली यह कल की लौंडिया कौन? राजमाता का अपना आत्माभिमान, सत्ता टूटते हुए दीखे कुलदेवी को प्रणाम करने न आने की बजाय अपनी आज्ञा न मानने के लिए राजमाता को मीराँ पर अधिक क्रोध आया। क्रोध ने चेतना भुला दी, भान भुला दिया। उन्होंने जोर से चिल्लाते हुए निश्चित आवाज में कहा, "चुप रह छोकरी! सीसोदियों की कुलदेवी को न नमनेवाली स्त्री मेरे राजमहल में नहीं चाहिए।"

सब सहम गये।

ऊदा भी।

"देखते क्या हो? आरती शुरू करो।" राजमाता पुनः गरजीं और पुजारी घबराते घबराते मंत्र बोलता हुआ आरती करने लगा।

★

अन्तःपुर में

सब का नशा उतर गया।

कुलदेवी की बात को राजमहल मे और राजमहल की बात राजदरबार मे फैलते देर न लगी। विवाहोत्सव में रंग चढे हुए भाट, चारण और गवैये एकदम चुप हो गए। कसूमल रंग मे झूलते हुए सामन्त सन्न होकर सीधे बैठ गए।

राणा साँगा शान्त हो गए। बात एकाएक कैसे बाहर आ गई? दास दासियो की जीभें वश मे रहते हुए भी बात इतने वेग से कैसे फैली? तो फिर दिया तले अँधेरा कैसे कहा है? राणा ने शान्त वृत्ति से घर की फजीती को मन मे ही दबा कर रखने का प्रयत्न किया। जिस घर में एकता न हो, दो स्त्रियाँ या दो पुरुष एक ही छप्पर के नीचे एक नहीं रह सके उस घर की हस्ती कब तक? राणा को नववधू की अपेक्षा जूने-पुरानो के लिए अधिक दुख हुआ, परन्तु अपनी बात उन्हों ने छिपा ली। हृदय में उठता हुआ क्रोध और क्लेश एकदम दबा दिया वे शान्त बैठे रहे।

उनका मँझला बेटा रत्न भी शान्त रहा; परन्तु उनका तीसरा पुत्र विक्रम शान्त बैठ रहने वाला नहीं था। भरे दरबार मे राणाजी को चुप होना पडे यह नीचा देखने के बराबर है और पुत्रों के बैठे एकलिंगजी के दीवान× राणा

× चित्तौड के कुलदेवता एकलिंगजी। चित्तौड़ के राणा अपने आपको श्रीएकलिंगजी का दीवान मानते हैं।

"पहले ही प्रवेश के दिन महाराणा का मुँह नीचा कर देने वाली यह कुलवधू क्या-क्या नहीं करेगी ? आज कुलदेवी के आगे झुकने से इनकार करती है, कल कुलदेवता के आगे झुकने से इनकार करेगी ।"

"जो जिसकी भक्ति, भाई !" ऊदा ने ऐसे भाव से कहा मानो मीराँ का बचाव कर रही हो । रे ननद !

"कुलदेवता एकलिंग जी का अपमान करने वाले को मैं खुद काट.. "

"हैं...है...हें ! भाई भाभी के झगड़े में अपने से सिर नहीं लगाया जाता । जाओ, दीवान जी के पास जाओ ।"

इतना कह भाई भाभी के झगडे में सिर न मारने को कहनेवाली बहिन, विक्रम को दरबार की तरफ भेजकर भाभी के झगड़े में गहरा सिर मारने के लिए कुलदेवी के स्थान पर आ पहुँची ।

राजमाता क्रोध से काँप रही थीं और माँ की सम्पूर्ण आज्ञा का पालन करनेवाला पुत्र भोज नीचा सिर किये सुन रहा था । ऊदा दूर ही खड़ी रहकर चुपचाप सुनने लगी । राजमाता ने अन्तिम आज्ञा दी

"या तो यह नहीं, या मैं नहीं । बना दे इस राठौड़ पुत्री को दूसरा महल—इसके और इसके गिरिधारी के लिए । और तू बून्दी कहला भेज कि चौहानी हमें मंजूर है । मुझे यह भगत की भगतानी बेटी नहीं चाहिए ।"

इतना कहकर क्रोध ही क्रोध में राजमाता पुजारी की तरफ फिरीं और चिढ़ पड़ीं "क्यों महाराज ? आज उपवास किया है क्या ? आरती कैसे मन्द मन्द हो रही है ?"

घबराया हुआ पुजारी आरती यथारीति कर रहा था, तो भी राजमाता के कम्पन से ज्यादा अभिनय दिखाने लगा । दासी, ढोलनियाँ शंखध्वनि और आरती के वाद्य अधिक जोर से बजाने लगीं और कोलाहल में देवी को नमस्कार कर आघात अनुभव करता हुआ युवराज भोज अपने महल की तरफ़ चलने लगा ।

ऊदा ने भोज को देखने के लिए बाजू में फिर देखा तो विक्रम दरबार में जाने के बदले उसी के पीछे आ खडा हुआ था। ऊदा बिना कुछ कहे वहाँ से खिसकी और उतावली में जाते हुए भोजराज के पीछे पीछे बिना उसको मालूम कराये कुछ अन्तर रखती हुई उसके व्यक्तिगत महल में आ पहुँची और उसे कोई न देखे इस तरह एक कोने मे छिपकर भाई भाभी की हारजीत देखने के लिए खड़ी रही।

युवराज भोज जब गानतान के रंग चढ़े दरबार मे बैठा था, तब प्रत्येक क्षण उसे नागवार गुजर रहा था। उसका हृदय मीराँ के पास जाने को शरीर मे से उछल उछल कर बाहर निकल रहा था। मीराँ के पीछे युवराज दीवाना हो गया था, इसमें जरा भी शंका नहीं। उसका दिमाग़ आसमान मे था। उसके पैर स्थिर नहीं थे। उसके हाथ किसी वस्तु से मिलने के लिए अधीर बनकर तडफ रहे थे। परन्तु जब देवी वाली बात उसने सुनी तो पिता के आगे लज्जित हो कुलदेवी के मन्दिर मे राजमाता के आगे सिर ऊँचा नहीं कर सका। भोज वीर था परन्तु प्रेम में बेसुध था अन्धापन और कमजोरी उसके हृदय मे थी। पत्नी से मिलने के लिए उसका हृदय बहुत तड़फता था किन्तु अभी एक दूसरे ही कारण से, रात होने से पूर्व, वह पत्नी से मिलने जा रहा था।

उसके पैर तेज़ी से उठते थे। उसके मुख पर आहत हृदय का क्रोध था। युवराज ने क्रोधावस्था में अपने शयन मन्दिर में प्रवेश किया परन्तु...

अटक गया।

अन्ध प्रेम की सहानुभूति उसके हृदय मे उमड आई। कुछ एक क्षण तो वैसे ही खडा रहा। फिर, निश्चय करके तलवार की मूठ पर हाथ रक्खे जिस जगह मीराँ पूजा करती थी उसमें घुस गया।

★

प्रभु की मीरा

एकाएक भोज के पैर रुक गए। अँधेरे में चुपचाप देखने वाली ऊदा चौंक उठी। भोज दरवाजे में आँखें खींचे खड़ा था। पन्ना और काशी तलवार और गर्दन झुकाए खड़ी रही।

दोनों हाथों में आरती लिए मीराँ गिरिधारीलाल जी आरती उतार रही थी। मीराँ के मुँह पर खेलता हुआ आरती का प्रतिबिम्ब एक अद्भुत प्रभाव डाले जा रहा था। मीराँ अधखुली आँखों से डोल रही थी और भगवान गिरिधारी उसे हँसते-हँसते देख रहे थे।

भोज आँखें खींचे देखता रहा—खास करके उस गिरिधारी को; न जाने क्यों, उसे गिरिधारी का हँसना न भाया!

ईर्ष्या?

दोनों दासियाँ मंद-मंद आवाज़ में घंटा और शंख बजा रही थीं, सुगन्धित द्रव्यों वाला धूप, दीप और पुष्पहार सुवास फैला रहे थे। एक धुन—नशा चढानेवाला वातावरण बन रहा था। भोज ने कुलदेवी की निनादमय आरती देखी थी और मानो उससे वहाँ देवी उसको अतृप्त हुई-सी, क्रोध में लाल जान पडी थी। जब कि यहाँ मस्त बनी, भान भूली मीराँ की तरफ उसके हँसते हुए गिरिधारी कोई दूसरा ही असर उपजा रहे थे।

प्रेमी दीवाना होता ही है। भोज को आरतीमय बनी हुई मीराँ सुन्दर, अति सुन्दर जान पडी। मीराँ की तन्मयता और आरती की आभा में चमकने वाला उसका मुख भोज को आते ही रोक सका।

युवराज का क्रोध कुछ नरम पड़ा। आरती चल रही थी, आरती पूरी हुई। मीराँ ने शान्ति से आरती को एक ओर रख दिया और हँसते हुए नटखट गिरिधारी के चरणों आगे शीश नवाने को झुक पड़ी।

थोड़ी देर मीराँ इसी तरह पड़ी रही। फिर, आँखें खोलकर जैसे ही आरती पर दृष्टि डाली तो आरती के समीप ही किसी के दो पैर देखे।

चौंककर मीराँ ने ऊपर देखा, कमर पर हाथ रक्खे युवराज भोज उससे सटकर खड़ा था। तुरन्त मुँह पर ओढ़नी खींचकर मीराँ खड़ी हो गईं और दोनों हाथ जोड़कर नतमस्तक हो स्वामी के प्रश्न की राह देखने लगी।

कठोरता और क्रोध भोज के मुँह से सरकते जान पड़े। थोड़ी देर भोज मीराँ को देखता रहा। जिस तरह भोज का हृदय दरबार में उछालें मार रहा था उसी तरह फिर उछलने लगा। मीराँ ने दृष्टि ऊपर उठाई और ठिठकी। जैसे मेड़ता के कृष्ण मन्दिर में युवराज उसके और उसके गिरिधारी के बीच में खड़ा था वैसे ही यहाँ भी खड़ा था। भोज ने धीरे से उसके दोनों हाथ पकड़ लिए। दासियाँ सब बाहर चली गईं। छिपी हुई ऊदा भी पंजों के बल उचककर अँधेरे में पड़नेवाली एक खिड़की की राह धड़कते हृदय से देखने लगी।

भोज धीमे से, परन्तु, दृढ़ आवाज़ में मीराँ से पूछने लगा,

"वैष्णव हो, भगवान के आगे खड़ी हो। सच कहना, कुलदेवी के आगे झुकने से आपने इन्कार किया था ?"

मीराँ मर्माहत होकर भोज की तरफ़ देखती रही। उसे पति के चेहरे पर सहानुभूति और एक प्रकार की प्रेमलता दिखाई दी। धीमे से बोली :

"जी नहीं। परन्तु..."

"परन्तु क्या ?"

"पूजा में बैठने के बाद उसे पूर्ण किए बिना मैं नहीं उठा करती नियम है।"

"मेरे लिए भी नहीं ?"

"आपकी आज्ञा हो तो अधूरी पूजा मे उठ जाना मेरा धर्म है—परन्तु जो मुझे बुलाने आई थी वह आपकी आज्ञा नही थी !"

"भेजे हुए कहते तो नहीं ? ख़ैर, कुलाचार को मानना भी धर्म ही है।"

"मैंने दर्शनों के लिए आने से इन्कार नहीं किया। पूजा पूरी करके आना चाहती थी। अगर आज्ञा हो तो आपके साथ अभी..."

"नहीं। अब कुलदेवी के दर्शन को जाने का कोई अर्थ नहीं।"

"क्यों ? अर्थ तो दर्शन करने मे है।"

"नहीं। अब तो सारे नगर में बात फैल गई होगी कि आप कुलदेवी को नमस्कार करने से इन्कार करती हैं ! दर्शन करने के लिए जाओगी तो भी निरर्थक है। फैली हुई बात झूठ नहीं ठहरती।"

"तो फिर आप जो आज्ञा दें..."

मीराँ ने असहाय होकर शर्म से सिर नीचा कर लिया। युवराज ने एकाएक जोर से मीराँ का हाथ दबाया। मीराँ ने दृष्टि नीचे कर ली—उसका गिरिधारी हँसते हुए यह खेल देख रहा था। मीराँ ने अचानक मूर्ति की तरफ देखा और शरम मे मुँह फेर लिया।

युवराज उसे शयन मन्दिर की तरफ खींच ले गया।

"वाहरे ? मेड़तीजी, विद्याधरियाँ भी मेरे आगे झख मारती हैं। मेरे भाई को देखते देखते बकरी बना दिया।"

ऊदा मानो अपने ही आपको सुनाती हुई बड़बड़ाई और किसी चोरमार्ग से भाई-भाभी की खींचातानी देखने के लिए तड़फने लगी, परन्तु शयन मंदिर में सिर डालने के लिए उसे कोई चोर खिड़की नहीं मिली। आखिर थककर शयन मंदिर के मुख्य द्वार के सामने बैठ गई। बैठी रही।

जिस समय दरबार की घंटी बजी तो ऊदा को बैठे-बैठे आधा पहर बीत गया था परन्तु ऊदा ने भाई की चौकीदारी नहीं छोड़ी थी।

राजमहल में बड़े नाजुक ढंग की धाँधल मच गई थी। महाराणा दुःखी थे। विक्रम गर्मागर्म हो गया था। राजमाता ने मात्र अग्नि में कूद पड़ना बाकी रखा था। नववधू-वर की अभी अन्तिम पूजन-क्रिया न होने पर भी वर या वधू दोनों में से एक भी शयनमन्दिर से बाहर नहीं निकल रहे थे। कैसी नकटाई !

राजमाता से अधिक न सहा गया। वे क्रोध विवश लाल लाल आँखें दिखाती हुई आखिर शयनमन्दिर के आगे आ खड़ी हुई। ऊदा खड़ी होकर आग भड़काने के लिए ठंडे पेट कहने लगी।

"चलो माँ—अब कुछ भी कहना मिथ्या है।"

"परन्तु राजकुल के आचार अभी बाकी हैं।" राजमाता ने इस तरह गरजते हुए कहा ताकि भीतर बैठे हुए वरवधू सुन सकें।

किसी ने सुना नहीं। ऊदा ने यह देख कर माँ को और उकसाने के लिए कहा—

"कुलदेवी के आचार जब पूरे नहीं किए तो फिर कुल के आचार का कैसा मोह ? माँ चलो चलो यहाँ से। भाभी ने भाई को जीत लिया। एक पहर से यहाँ चौकी पर बैठी हूँ परन्तु दोनो में से एक भी बाहर आने की इच्छा नहीं करता। शरम और लाज की भी सीमा आ गई !"

"परन्तु अभी भोजन..."

"प्रेम के पागलों को भोजन फिर कैसा ? एक जनी भाव के भूखे की दासी है, दूसरा प्रेम-पिपासा का गुलाम है, इनको फिर भोजन की भी ज़रूरत पड़े ? चलो, हमें तो आदमियों की तरह काया को भाड़ा देना है ?"

"बहिन एक बात तो अभी ही.." विक्रम गर्जना करते हुए बोलने

लगा। वह राजमाता के पीछे ही आ खड़ा हुआ था। ऊदा उसे रोकने के लिए बीच ही में बोल उठी—

"ही श् श् श् श्! उतावला बोलने में कुछ फायदा नहीं। इन्हें कुछ सुनाई नहीं देगा। नहीं तो इनकी बातें बैठी-बैठी मैंने न सुनी होतीं!"

राजमाता को चले जाना ही ठीक लगा, कुल की खातिर नहीं, स्वाभिमान की खातिर। राजमाता चलने लगीं।

क्रोध से पैर पटक कर विक्रम वहीं खड़ा रहा। ऊदा ने धीरे से उसका हाथ पकड़ा और उसे माँ के पीछे खींचने लगी।

✱

सुहाग रात

कुँवर भोजराज अवश्य ही बहू के पीछे भान भूल गया था। परन्तु मेड़तीजी, वर के पीछे भान नहीं भूलीं थीं। आधे पहर से युवराज भोज मीराँ को भान भुलाने का प्रयत्न करता था परन्तु सब बेकार हुआ।

मीराँ की आँखों में और होठों पर अद्भुत आकर्षण था—मात्र दूर से देखने के लिए। उनके मुखारविंद पर अद्भुत तेज था—मात्र दूर से अंजित होने के लिए।

रूपमुग्ध, यौवन मुग्ध भोजराज मीराँ के पास ही बैठा था तो भी अपने को अलग देख रहा था। वधू के पास जाने के लिए उसे कोई रोकता था, और इसी लिए उसकी इच्छा अधिकाधिक बढ़ती गई।

उसने मीराँ का हाथ पकड़ा, शरीर झंझोड़ा, बोला, हँसा, तो भी भोजराज को मीराँ अपने जीते जागते शरीर में से कहीं दूर भागी हुई दीखी। दिखाई देते हुए भी, अनुभव होते हुए भी मीराँ ऐसी जान पड़ती थी जैसे पकड़ में न आयगी।

आधे पहर मे भोजराज सचमुच बदल गया था। मीराँ के शब्दों में सरलता थी। निर्ममता थी। आधे पहर बाद भोजराज को मीराँ निर्दोष और दूसरे सब दोषी जान पड़े। मीराँ सच्ची और दूसरे झूठे। मीराँ ऊँची दूसरे सब नीचे।

पागल, सचमुच पागल!

उसकी यौवन के नशे में रत हुई आँखें मीराँ की तरफ उत्कंठा से

मँडरा रही थीं, परन्तु उसके शरीर का चैतन्य और उत्कंठा पत्थर पर निरर्थक पछाड़ खाते हुए पानी की तरह टकराकर वापस लौट आता था। मीराँ, भोज को देख रही थी, परन्तु जिस तरह वह देखता था उस तरह नहीं। मीराँ का हाथ पकड़ते समय वे हाथ को खींच नहीं लेती थी। मीराँ को स्पर्श करते समय वे नववधू का स्वाभाविक संकोच जरूर दिखातीं थीं परन्तु दूर जाकर नहीं खड़ी होती थीं इतना ही नहीं, पूछे हुए हर एक प्रश्न का उत्तर बहुत ही मीठी आवाज़ मे धीरे-धीरे देती।

भोज को इन सब मे नवयौवना के उन्माद की अपेक्षा पत्नी का धर्म अधिक दीखता था। यौवन की उच्छृंखलता नहीं थी, नवप्रस्फुरित अज्ञात यौवना की प्रेम ऊष्मा नहीं थी।

भोजन का समय हो गया। शयनमन्दिर मे ही भोजन आया। मीराँ ने अपने हाथों कुँवर को भोजन परोसा—नववधू पंखा लेकर बैठी। कुँवर ने हाथ पकड़ कर नववधू को अपने पास खींच लिया। खाया, खिलाया।

तो भी,

भोज को इन सब मे नवयौवन की उमंगों की अपेक्षा पत्नी-धर्म अधिक दीखता था। उसका वहम झूठा नही था। "मीराँ बाई अपना धर्म पूरा कर रही थीं। पति को राज़ी रखना अपना धर्म है यह सोच कर वे उन्हें राज़ी रखती थीं। बोलती थीं। चुप रह जाती थीं।

भोजन समाप्त हुआ।

रात काफी बीत चुकी थी। कदापि नीरस न होने वाली सुहाग की यह पहली अमूल्य रात, बीत चुकी थी। कुँवरभोज का हृदय थनग थनग थनगन कर रहा था। प्रथम तो राजपुत्र। दूसरे, भरी जवानी। तीसरे, रूप-सुन्दरी के साथ एकान्त, चौथे, पहली रात। इसलिए भोज ने मीराँ की कुछ और ही कल्पना की थी। मीराँ के शब्द और उसका संकोच उसे सामान्य संसारी जैसे कल्पित हुए थे...परन्तु, सब, सब कुछ व्यर्थ, निरर्थक! मीरां ने झूठे हावभावों से कुमार की रसवृत्ति तीव्र न की। रजवाड़ी शब्द विवेक से

स्वामी को आसमान में न उड़ने दिया। भोजन से पहले कुमार के चरणस्पर्श कर मीराँ ने कुमार की जूतियाँ खोल कर रक्खी, परन्तु यह स्त्री धर्म है इसी हिसाब से। भोजन के बाद मेंहदी रंगे हाथों से मीराँ ने कुमार को ताम्बूल दिया परन्तु यह पत्नी-धर्म है इसी रूप में।

मीराँ के मोहक रूप में सर्वस्व भूला हुआ युवराज आखिर अपने क्षणिक नशे से सजग हुआ। उसे अपना पुरुषत्व और राजपूती खुमारी घायल जान पडी। तो भी अंधे प्रेम ने बुद्धि को एकदम पास न आने दिया। जिस तरह मृगराज के पीछे दौड़ने वाला यात्री गिरता है, उठता है, परन्तु लोभ से वशीभूत होकर पुन: दौड़ने लगता है वैसे ही कुमार ने मीराँ को उसकी गुप्त सुषुप्ति में से जाग्रत करने के लिए, थक कर एक प्रयत्न और कर देखा।

"मेवाड अच्छा नहीं लगता ?" उसने प्यार से पूछा।

"राजस्थान के हृदय की कोई अभागा ही निन्दा करेगा। मीराँ ने इतना ही मीठा प्रत्युत्तर दिया।"

"मतलब ?"

"मारवाड़ भुजाएँ हैं तो मेवाड़ राजस्थान का हृदय है।"

"पीहर की निन्दा करती हैं ? या सुसराल की झूठी तारीफ करती हैं ?"

"जो घर-घर कहा जाता है वही कहती हूँ।"

"कहती ही हैं—मानती नहीं।" राजकुमार ने मीराँ को झकझोरने के लिए कहा।

"आपने यह क्या कहा ? मेरे हृदय तक..."

मीराँ आगे बोलती हुई अटक गई।

"मैं पहुँच न पाया यों न ?" कुमार प्रोत्साहित हो कर कहने लगा, "परन्तु आप पहुँचने कहाँ देती हैं ?"

मीराँ चुप रही। शान्त कुमार को अपने शब्द अस्पर्श्य बन कर उड़ते दीखे। वह थका। मूढ़ बन कर विचार करने लगा। "इतनी सुन्दर, इतनी

जवान क्षत्राणी हो कर भी इतनी शान्त कैसे ? इतनी निर्लेप क्यों कर ?"

"तो फिर मै नहीं...अच्छा लगता !" कुमार ने निराश होते हुए कहा।

"सूर्यवंशी सिसोदिया राजकुमार को कोई अति भाग्यवती..."

"बस, बस, बस-बस। 'जो कहा जाता है वही' कहती हो—मानती नहीं। और यह जानने के लिए मुझे आपके हृदय तक पहुँचने की ज़रूरत भी नहीं।" कुमार बीच मे ही बोल उठा।

"मैं आपको दुःख देती हूँ ?" मीराँ ने पहली बार कुमार से नज़र मिलाते हुए पूछा। कुमार ने शीघ्र ऊपर देखा तो मीराँ की आँखोंमें निर्विकार सरलता थी। सच्ची विज्ञप्ति थी।

"बिलकुल नहीं।" कुमार झट नज़दीक सरककर आशापूर्वक बोला।

"कहा जाता है कि मेवाड़िया मीठी मस्करी करने मे मशहूर हैं इसलिए मैं..." मीराँ ने शरमाकर माथा झुका लिया। कुमार अब अधिक सहने में असमर्थ था। उसने शीघ्रता से मीराँ को लेकर छाती से लगा लिया।

मीराँ ने विरोध नहीं किया।

परन्तु एक पल में ही युवराज भोज का क्रोध नरम हो गया।

मीराँ के स्पर्श में उसे जान पड़ा ; मीराँ पत्नी-धर्म पूरा कर रही थी। यौवन की चंचलता और मीठी बेचैनी—न थीं, नहीं ही थी। उसे अब विश्वास हुआ कि उसके और मीराँ के बीच में कोई खड़ा था। मीराँ में यह उत्तेजन नहीं था, यह रंग नही था।

कुमार शान्तिपूर्वक मीराँ को अपनी बाहु से मुक्त कर पुष्पाच्छादित, रत्नजड़ित सुनहरे पलंग में धीमा निश्वास डालकर जा पड़ा। मीराँ झट पंखा लेकर हवा करने लगीं।

भोज को और विश्वास हो गया ; मीराँ पत्नी-धर्म निभा रही थी। 'जो कहा जाता है' वह कहती थी। 'जो समझाया' वह करती थी।

कुमार ने थोड़ी देर में सो जाने का ढोंग किया। मीराँ पति के खटकते

हुए पैर पलंग पर रखकर खडी हुई और गिरिधारीलाल के निवास में चली गईं ।

शीघ्र ही कुमार खडा हो गया। कौन था वह, जो मीराँ को उससे दूर रखता था ? कुमार बहम मे था । प्रेम का यह भयंकर स्वरूप जाग्रत हुआ । रे रे ! प्रेम की आँखें और जवानी के बुद्धि होती तो ? .

भोजराज ने थोडी देर पलंग के पास इधर उधर चक्कर लगाये । त्रियाचरित्र की कितनी ही पुरानी कथाएँ एकाएक उसके दिमाग़ में उभराने लगीं ।

झट से सिरहाने रक्खी हुई एक छोटी कटार उठाकर भोजराज ने बगल में दबाई और दबे पैरों शयनमन्दिर की तरफ़ चला तो...

मीराँ गिरिधारीलाल के चरणों मे माथा रक्खे निद्रावश हो गई थीं । घी के दो दीपक उजाला कर रहे थे । कुमार ने खीझ कर सारे कमरे में नज़र डाली और फिर मीराँ के गिरिधारीलाल की तरफ देखा ।

देखा, और एक कदम पीछे हट गया ।

नटखट गिरिधारी उसकी तरफ देखकर हँस रहा था । कुमार ने एक ही क्षण मे देख लिया कि उसका प्रतिद्वंदी कौन था ।

कुमार ने एक दीर्घ निश्वास डाली, थोड़ी देर वह निद्राधीन मीराँ के मुख को देखता रहा और फिर मन्दगति से अपने पलंग के पास आकर हृदय में उमडते हुए क्रोध को न जाने किस कारण से दबाकर बैठ रहा ।

ना । सोया नहीं ।

★

स्वप्न-सत्य

"छोड़ो, छोड़ो। मुझे छोड़ दो!" छाती के बीच एकदम दबी हुई मीराँ ने आकुलता से कहा।

"सुन्दरी को कोई पकड़ता है तो छोड़ देने के लिए नहीं।" वह बोला।

"निर्दय!" मीराँ बोली।

"आज मालूम हुआ?" वह बोला।

"कोई देख लेगा।" मीराँ घबराई।

"देखने दे!" वह हँसा, "देखनेवाले इसके सिवाय और कुछ कर नहीं सकते।"

"निर्लज्ज!" मीराँ व्याकुल होकर बोली।

"अब मालूम हुआ" उसने छेड़ते हुए कहा, "छोड़ देखूँ मेरे हाथ मे से..."

"यह? निष्ठुर मै किसी दिन तेरा..."

इतने में उसने हाथ की पकड़ छोड़कर मीराँ को हलका धक्का मारा। मीराँ हाँफती हुई जमीन पर गिर पड़ी। वह मुँह फिराकर बैठ गया। मीराँ धीरे से खड़ी होकर उसके पास आई, बैठी, और उसके कंधों पर मीठे रोष से हाथ रक्खे। उसने गुस्से से उसके हाथ को दूर करने के लिये झटका मारा; परन्तु मीराँ ने उसे और जोर से पकड़ लिया। उसने फिर मुँह फिरा

लिया। मीराँ उसके सामने झुकी और बोली

"पुरुष इतने गुस्सैल और क्रोधी किस लिए हैं?"

"तेरे जैसी सुन्दरी से इस तरह कन्धे पर हाथ रखाने के लिए।"

मीराँ बिजली की तरह उसके पास से खडी हो गई। उसकी तरफ देखे बिना और बोले बिना।

गिरिधारी भी खड़ा हो गया,

थोड़ी देर के लिए गिरिधारी मीराँ के पास खडा रहकर देखने लगा। मीराँ ने उसकी तरफ नहीं देखा। गिरिधारी मुस्कराया। शान्ति से फिर नीचे बैठ गया। फिर उसने बाँसुरी निकाली और मुँह से लगाई।

बैरन बाँसुरी।

तीनों लोको को भी चक्कर चढ़ानेवाली, ऋषि-मुनियों के व्रत तोडने-वाली और पागल गोपिकाओं को सुध-बुध भुलाकर कृष्ण के पास खींच लाने-वाली मुरली धीरे धीरे बजने लगी। संगीत के मीठे सुर से ताल लगने लगी। आसपास, पशु, पंछी, फूल, फल ताल देने लगे। प्रत्येक चलित वस्तुओं का हलन-चलन तालबद्ध होने लगा। रिसाकर खडी हुई मीराँ इससे छूट न सकीं। धीरे धीरे मुरली की टेर मे वह भी बहने लगी। डोलने लगी। स्वत्व गया, क्रोध गया. क्रोध में छिपा हुआ प्रेम प्रकट हुआ। उसके हृदय की एक एक रक्तवाहिनी, एक एक ऊर्मि उसके कंठसे आने लगी—कंठ खुला। आँखें बन्दकर डोलती हुई मीराँ गाने लगी, खड़ी खड़ी नहीं। डोलती-डोलती, नाचती नाचती :

तो सों लाग्यो नेह रे प्यारे नागर नन्द-कुमार।
मुरली तेरी मन हर्यो बिसर्यो घर ब्यौहार॥ तो सो.
जब तें श्रवननि धुनि परी, घर आँगण न सुहाय।
पारधि ज्यूँ चूकै नहीं, मृगी बेधि दइ आय॥ १॥
पानी पीर न जानई ज्यों, मीन तड़फ मरि जाय!
रसिक मधुप के मरम को नहीं, समझत कमल सुभाय॥२॥

दीपक को जो दया नही, उडि उडि मरत पतंग ।
मीराँ प्रभु गिरिधर मिले ज्यो पाणी मिलि गयो रंग ।।३।।

गिरिधारी मात हुआ। मुरली बंदकर गाती हुई मीराँ को उसने उमंगित होकर पकड लिया ।

"सखि, कितना मीठा तू गाती है ?"

"तेरी मुरली के कारण—सखे !" मीराँ मस्त होकर बोली ।

"मुरली के कारण तू मीठा गाती है या मुरली तेरे कारण मीठी बजती है ?"

"मुझे न पूछ ।"

"क्यों ?

"तेरे पास आने के बाद मैं सब कुछ भूल जाती हूँ..."

"एक बात नहीं भूलती !"

"कौनसी ? मिलने की ?"

"नहीं, लड़ने की ।"

"यह तो स्त्री का स्वभाव है । स्त्री लडे नहीं तो पुरुष सुधरे कैसे ?"

"तो यह सब कुछ मुझे सुधारने ने लिए है ?" कन्हैया ने मीराँ को चुटकी भरते हुए कहा ।

"हाँ और हजार बार हाँ ।" मीराँ ने कुछ खिसकते हुए कहा ।

"मतलब कि पुरुष टेढ़े हैं ।"

"तू तो है ही । बोलने मे टेढ़ा । चलने में टेढ़ा । समझने मे टेढ़ा । समझाने में टेढ़ा । कन्हैया, तुझे समझाने मे कितनी सखियों ने अपना जीवन व्यतीत किया ? परन्तु तू—टेढ़ा का टेढ़ा ।"

"इसी से अब तू सुधारने आई है, हैं न ?"

"बचपन से तो मथ रही हूँ तो भी अभी तू.. अरे कन्हैया! सचमुच तू कितना बड़ा हो गया है।"

"और तू? जानती है कितनी बडी हो गई है?"

"हाँ रे! बहुत बड़ी हो गई हूँ, नहीं? मुझे नहीं सुहाता..."

"क्यों भला?"

"मुझे लगता है कि तू मुझसे दूर दूर होता जाता है।"

"ससुराल आई हुई हो न? लगेगा ही।"

"तो मैं ही थोड़े कोई पहली बार ससुराल आई हूँ? राधा नहीं थी? अन्य सखियाँ ससुराल न थी? उनसे तो तू दूर नहीं रहा।"

"मै किसी से भी दूर नहीं रहता।"

"आ हा हा!" मीराँ कटाक्ष मे बोल उठी।

"सखी! मन से मुझे दूर मानने वाले के हृदय से मैं अधिक नज़दीक होता हूँ।"

"अरे रे! तू नहीं ही सुधरा! तेरा बोलना मैं कब समझूँगी? छोटा था तब भी जो कहता था उसे मैं नहीं समझती थी। अब बडा हुआ.."

"कह दे कि जवान हुआ हूँ।"

"जवान हुआ है तो भी जो कहता है वह समझती। गिरिधारी! तू क्या है?"

"यह मेरी मुरली देखी?—वह हूँ। इस तरह का हूँ बजाओ तो संगीत का स्वर, न बजाओ तो छेदवाली लकडी।

"पर मैं तो तेरी मुरली सुन सकती हूँ।"

"इसीलिए तू मुझे देख सकती है।" कन्हैया उसका प्यार से हाथ पकड़ कर बोला।

"जब तू मुरली नहीं सुन सकेगी तब मैं दिखाई भी नहीं दूँगा।"

"ना, ना, सखे! ऐसा न कह। मुझे न छोडना कन्हैया! हम तो बालपन के साथी, बचपन से साथ ही पले..."

कन्हैया हँस पडा, एकदम ज़ोर से। और एकाएक उसने मुरली होठों पर रक्खी। सुरों के हवा मे गूँजते ही मीराँ के शरीर मे विद्युत् संचार हुआ। हृदय को बीधने वाली मुरली उसकी आँखों मे आँसू ले आई और कदम्ब वृक्ष के नीचे बैठे हुए कन्हैया के पैरों मे बैठ गई...

साँवरा म्हांरी प्रीत निभाज्यो जी ॥
थे छो म्हांरा गुण रा सागर
ओगण म्हांरो मत जाज्यो जी।
लोक न धीजै (म्हांरो) मन न पतीजै
मुखडा रा सबद सुणाज्यो जी ॥१॥
मैं तो दासी जनम जनम की
म्हांरे आंगण रमता आज्यो जी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर
बेडो पार लगाज्यो जी ॥२॥

कन्हैया प्रेम से गाती हुई मीराँ के पास बैठ गया और बोला :

"मीरी तुझे ऐसा गाना कैसे आता है?"

"गोपाल तुझे ऐसा बजाना कैसे आता है?"

"तू है इस लिए।"

"मैं भी तेरे निकट होती हूँ तभी गा सकती हूँ। पता नहीं कैसे गाती हूँ—गा ही दिया जाता है। मुझे जब चेतना होती है तब गीत पूरा हो जाता है। लुच्चा! तू ही गवाता है और तू ही पूछता है।"

"ससुराल में गाती रहना।"

"तुझे मेरे ससुराल की इतनी चिंता क्यों होती है ?"

"देख, फिर नाराज़ हो गई ?"

"तुझे तो हाथ जोड़े ।"

"खाली बातें ! जोड़ती तो है नहीं ।"

"ले !" मीराँ ने झट से हाथ जोड़े । कन्हैया ने उछल कर उसे चूम लिया । मीराँ झट हट गई, और आँखों के कोनों से गंभीर हो कर देखती रही। कन्हैया पास आया । मीराँ ने मुँह फेर लिया ।

गावेगी न सखी ?"

मीराँ ने उसकी तरफ देखे बिना 'ना' में सिर हिलाया ।

"क्यों ?" आवाज़ निकाले बिना चुपचाप मीराँ की तरफ ढलता हुआ कन्हैया बोला ।

"जहाँ तू नहीं वहाँ आवाज़ ही नहीं निकलती ।" कन्हैया की तरफ देखे बिना, आवाज़ निकाले बिना मीराँ बोली ।

"पर अभी तो पास में हूँ—आवाज़ क्यों नहीं निकलती ?" कन्हैया ने चुपचाप पूछा ।

मीराँ हँस पड़ी, फिर गम्भीर हो कर बोली "गिरिधारी ! क्या करूँ ?"

"किसका ?" आवाज़ बदल कर कन्हैया ने कहा ।

"कोई किसी के पीछे पागल हो जाय तो क्या करना ?" अभी भी सामने देखे बिना मीराँ बोली ।

"मै क्या करता हूँ अभी ? वही तू कर ।"

"मुझे मत चिढ़ा ।" झुँझला कर मीराँ बोली ।

"मै नहीं चिढ़ाता ।"

"तो फिर ?" मीराँ ने आँखें फिरा कर उसकी तरफ देखा ।

"किसी के प्रेम के बीच में आना पाप है ।"

कन्हैया मीराँ का हाथ पकड़ कर चलने लगा और बोला ।

"प्रेम यानी ?" मीराँ ने साथ चलते-चलते नटखट गिरिधारी को पूछा।

"प्रेम यानी मीराँ। प्रेम यानी भोज।"

"मैने पाप किया है कन्हैया—मैने इनसे विवाह किया है।"

"तूने एक प्रेमी की ज़िन्दगी बचाई है—अब इसे सँभाल।"

"परन्तु कैसे सॅभालूँ ?"

"जैसे मुझे सॅभालती है।"

"मैने तुझसे विवाह किया है।"

"और तूने इससे विवाह किया है।"

"विवाह कराया है मैने पाप किया है।"

"तूने पुण्य किया है।"

"ये अच्छे हैं। कुलीन है। वीर हैं परन्तु इनकी कामना क्या है यह मुझे समझ नहीं पड़ता"

"पड़ेगा।"

"मैं उन्हें दुःखी तो नहीं करती ?"

प्रेमी को प्रियतमा का दुःख ही सुख है।" एक छोटी सी ठंडी टेकरी पर खड़ा कन्हैया बोला और गुलाब का एक तोडा हुआ फूल उसके केशपाश में रख कर दूसरा फूल लेने नीचे चला। मीराँ उसके दोनों कन्धों को पकड़ कर अपनी ओर फिराते हुए कहने लगी :

"तेरे पैरों पड़ती हूँ। मुझे समझा—मैं क्या करूँ ?"

कन्हैया फूल तोड़ने मे ही लगा रहा। मीराँ खीझ कर बोली :

"सुनता है ? निर्दय—मै दुःखी हूँ, थकी हूँ।"

"बस ? तू थक गई ?" इतना कह शरारती गिरिधारी एक फूल तोड़ कर मीराँ के मुँह पर धीरे से मारते हुए चलने लगा।

"नहीं, नहीं। नहीं थकी।" मीराँ उसके पीछे दौड़ती हुई उसे पकड़ने को झूरती हुई कहने लगी—"सुनता जा, खड़ा रह—सखा—प्रीतम ! नाथ ! कन्हैया ! गिरिधारी ! गिरिधारी।"

मीराँ ज्यों ज्यो घबरा कर चिल्लाती हुई दौड़ने लगी त्यों त्यो गिरिधारी आगे ही आगे दौडता गया। अन्त मे कदम्ब के वृक्ष के नीचे वह खड़ा हो गया। मीराँ, दौडती, हाँफती रोती बोलती बोलती उसके पैर पकड कर बैठ गई ..और आँखे मूँद ली।

थोडी देर साँस खा कर, मीराँ ने आँखें खोलीं। गिरिधारी हँसता हुआ, हमेशा की तरह खडा था।

मीराँ ने चौंक कर उसकी तरफ देखा तो...जैसे आरती के समय दीख पड़े थे उसी तरह भोज के पैर दिखाई दिए। उसने शीघ्र दृष्टि उठाई। अश्रु-पूरित नयनों से उसे कुछ कुछ भोज की आकृति जान पडी।

थकी हुई मीराँ ने अधिक बोले बिना पति के चरणों मे शीश नॅवा दिया।

नींद मे सखा, प्रीतम, नाथ वगैरह शब्द सुन कर क्रोध और वहम से आकुल-व्याकुल हो उठ खडा हुआ भोज मीराँ के अन्तिम शब्द कन्हैया, गिरिधारी से शान्त हो गया था। मीराँ के चरण स्पर्श ने पागल प्रेमी को विह्वल बना दिया। उसने धीमे हाथों मीराँ को खडा किया। नतमस्तक खडी मीराँ का मुँह भोज ने ऊपर उठाया।

मीराँ बोली नहीं।

भोज भी न बोला। उसने चुपचाप अपने साफे के पल्ले से मीराँ की आँसू भरी आँखें पोंछी और चलने लगा।

मीराँ स्तंभित हुई उसे देखती रही। क्या वह रो रही थी ?

तो नहीं ?

गिरिधारी जाते हुए भोज और खडी हुई मीराँ की पीठ के पीछे हँसता हुआ खड़ा था।

वही, नटखट हास्य।

आश्चर्य

"हाथ जोड़े भाई, इस जोगमाया को ! दो महीने हुए परन्तु मेरी बन्दी इधर से उधर नहीं होती।" ऊदा ने नई नई आई हुई अपनी सबसे छोटी भाभी, विक्रम की बहू को दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा।

"पिछले जनम की कोई भूली भटकी गोपिका है।" मीरॉ को व्यंग मारते हुए मरोड़ से छोटी भाभी बोली। "युवराज को तो उन्होंने अंधा कर ही दिया हैं,— परन्तु आज युवराज है तो कल राजकुटुम्ब और परसों समस्त मेवाड़ी वीरों के हथियार नीचे रखवा देंगी—ऐसी महामाया हैं।"

"भाभी ! जरा धीरे बोलो।" ऊदा ने धीमी वाणी मे छोटी भाभी को कहा।

"यह मैं कहाँ कहती हूँ ?—आपके भाई कहते हैं।"

"ठीक, और क्या कहते हैं ?" ऊदा ने छोटी भाभी को मीरॉ और भोज के बारे में इस तरह पूछा जैसे उसे फुसलाकर बात निकलवा रही हो।

"आपके भाई कहते हैं कि मेवाड़ी राजपूतों के हाथो में युवराज्ञी, थोड़े ही दिनो मे एक एक तुलसी की माला दे देगी और फिर गिरिधारी गोविन्दा के भजन युवराज की आड़ मे गायेगी "

"और नाचेगी..." ऊदा बीच ही मे बोल ऊठी, "जैसे अभी कभी-कभी गिरिधर गोपाल की पूजा करती मेड़तीजी नाचती है वैसे, हैं न ?"

"वह तो आप जानें और आपके भाई" छोटी भाभी ने अपने दोनों

कानों पर हाथ रखकर निर्दोषिता दिखाते हुए कहा, "परन्तु—कदाचित् ऐसा ही होगा तो..."

"तो ?" झीनी आँखों से ऊदा ने पूछा।

"तो परदेशी और तुरक हरिगुण की धुन सुन रणक्षेत्र छोड़कर प्राण लेकर भाग जायँगे और दीवानजी को इकहत्तर पीढ़ियाँ मीराँ बाई तारेंगी।"

"ओह ! विक्रम भैया यों कहते थे ?" छोटी भाभी से खिलवाड़ करते हुए आवाज़ ज़रा धीमी करते हुए शैतान ऊदा बोली।

"नहीं ये शब्द तो माँ ने कहे थे।"

"भई, मेड़ती को कुछ कहा नहीं जा सकता ! गिरिधर गोपाल जिसके सब कुछ हों उसे क्या कहा जाय ? प्यारी भाभी। कल से तू भी गिरिधर गोपाल को पूजने लग। तू भी इकहत्तर पीढ़ियाँ तारेगी।"

"तो बहिन बाई, आप अपने ससुराल की इकहत्तर पीढ़ियाँ तारने की इच्छा नहीं करतीं ? आपके लिए भी एक माला अपने साथ ही लेती आऊँगी" इस प्रकार अज्ञानता का अभिनय करती हुई छोटी भाभी बोली।

"ओ भाभी ! यह मीराँ नहीं है हो ! यह ऊदा है। बिगड़कर बिगड़ी तो छेद बन्द कर देगी।" दाँत कटकटाकर ऊदा बोली।

"ना रे ननद बाई, मैं कहाँ कहती हूँ ? मै तो आपके ही कहे हुए शब्द कह रही हूँ। परन्तु ." छोटी भाभी ऐसे बोली मानो डर गई हो।

"परन्तु क्या ?" छोटी भाभी को सहज धमकाते हुए ऊदा बोली।

"परन्तु आपको जो कहना ही है तो क्या आपके भाई नहीं ? अरे, युवराज को ही कहो न ?"

"क्या कहूँ ?" आँखें निकालती हुई ऊदा बोली।

"क्या कहूँ ? ..आप नहीं जानतीं ?" ऊदा से भी ज्यादा आँखें निकालती हुई छोटी भाभी बोली, "अरे कहनेलायक तो आपको ही है। राजदरबार

हिल उठा है, राजमहल तलमला उठा है और आपको कुछ पता ही नहीं ?"

"पर है क्या, मुझे कहो तो सही ?"

"युवराज ने भाभी के लिए राजमहल के बीचोंबीच गिरिधारीलाल के लिए एक छोटा-सा मन्दिर बनाने की आज्ञा की है।"

"क्या कह रही हो ?" क्रोध से बन्द हुई आवाज़ से ऊदा बोल उठी, "क्या सुन रही हूँ यह ? मै सचमुच सुन रही हूँ ? भाभी झटपट बता, राजमाता को पता है ? वे कुछ नहीं बोलीं ?"

"ननद बाई, राजमाता को बोलते सुनकर तो मै आपके पास आई हूँ।"

"माँ बोली ? केवल बोली ?"

"बहुत बोली, बहिनजी, दीवानजी के आगे राजमाता ने बहुत कहा—रोई और कहा कि कुलदेवता क आगे न नमने वाली नववधू के लिए मन्दिर बनाने की आज्ञा का आप विरोध क्यो नहीं करते ? परन्तु दीवानजी हँस कर राजमाता को कहने लगे कि गोपालजी भले ही अपने महल के बीचोबीच छोटे-से मन्दिर मे बिराजे रहे। जहाँ कृष्ण वहाँ विजय है !"

"क्या कहती है भाभी ! तू कहती क्या है ? दीवानजी ने ऐसा कहा ? और मैं, उनकी पुत्री कुछ जानती भी नहीं ? खैर, विक्रम भाई ने क्या कहा ?"

"वे तो अभी भी कह रहे है कि युवराज यदि मुहुर्त के समय हाजिर न होते तो खुद अपने हाथ से नींव का पाया तोड़ डालते।"

"ठहर भाभी। या तो तेरी बुद्धि ठिकाने नहीं या मेरी नहीं। मैं यह क्या सुन रही हूँ ? मेरे पिता के महल मे मन्दिर की नींव पडे और मुझे खबर भी नहीं ? क्यों भाभी, सचमुच नींव पड़ गई ?"

"तभी तो कहती हूँ ! हम लोग कुछ कहते नहीं, तभी युवराज ने पहले से तैयारियाँ कर रक्खी थीं और शुभ मुहुर्त आते ही दीवानजी के हाथ से शीघ्र मन्दिर का पाया डलवा दिया।"

"और मेरा विक्रम भाई ?"

"वे पीछे आये—परन्तु ठीक समय पर आ पहुँचे थे। समय पर नहीं पहुँचीं केवल राजमाता। तभी तो कहती हूँ राजमाता ने अपने को पता लगे बिना नींव पडने का बहुत दुःख माना; परन्तु दीवानजी हँसकर कहते गये कि कि धर्म के काम में ढील शोभा नहीं देती। शुभ मुहुर्त को नहीं बीतने देना चाहिए।"

"आ हा हा हा! ना, मुझे कुछ हो गया है—या, राजमहल को कुछ हो गया है? मेरे पिताजी और मेरे भाई मन्दिर बनवावें और मुझे, ऊदा को इन सबकी लाडली को, कुछ पता भी न चले? ना रे भाभी! ना, ना। सब को कुछ जरूर हो गया है...अरी भाभी? भला यह तो बता कि युवराज भाभी पर ऐसे प्रसन्न किस तरह हो गये?"

"ये प्रसन्न हुए होते तो फिर बात ही क्या थी? ये तो युवराज्ञी को प्रसन्न करने के लिए तडफ रहे हैं।" ऊदा सिर पर हाथ रखकर बैठ गई। उसे अनभिज्ञ रखने के अपमान से उसकी आँखों में आँसू आऊँ आऊँ हो रहे थे। आखिर वह थकी हुई आवाज़ में बोली:

"भगवान् जानें मेरे बडे भाई ऐसे कैसे हो गये?"

"यह तो आपके हृदय मे सुलगा नहीं तब क्या समझो?"

तुरन्त पीछे से किसी का जवाब आया। ऊदा चौंककर खडी हो गई और पीठ पीछे देखा तो उसकी दूसरी भाभी, रत्नसिंह की बहू चुप्पी साधे खडी थी। उसके होठों के कोनों मे अभी भी मलक मलक हास्य छाया हुआ था।

"क्या नहीं सुलगा बडी भाभी?" भृकुटी चढाकर ऊदा बोली।

"प्रेम, ननद् बाई प्रेम। जिसके हृदय में प्रेम नहीं सुलगा उसे क्या समझ मे आये? मैं तो आपके भाई को रोज कहती हूँ कि सच्चा प्रेम तो बडे भाई का है कि विवाह को आज छः महीने बीते और एक दिन भी सामने न देखने पर भी युवराज मेडतीजी के पीछे पागल के पागल? आज मन्दिर बना दिया। कल नवलखा हार..."

"ठहरिये बडी भाभी ! मुझे बैठने दें । मुझे तसल्ली से समझ लेने दो कल मेरे सबसे बडे भाई ने मेरी सबसे बडी भाभी को वह नवलखा हार जो कि खास मेरे लिए बनाया जा रहा था, वह भाभीश्री के गले मे डाला ?'

"हाँ, जी । हाँ । आपके और मेरे लिए फिर से बनायेगे ।" छोटी भाभी ने कहा ।

"ऐसा विक्रम भाई कहते थे ?" ऊदा ने छोटी भाभी को दाँत मींच कर पूछा ।

"नहीं ऐसा आपके बडे भाई कहते थे ।" ऊदा से बडे अपने पति रत्नसिंह को उद्देश करके बडी भाभी बोली ।

ऊदा का अभी भी अपनी दोनों भाभियो के शब्दों मे विश्वास नहीं आ रहा था । वह इधर से उधर फिरने लगी और आधा अपने आप को और आधा अपनी भाभियों को उद्देश कर युवराज और युवराज्ञी के विषय में कहने लगी ।

"...परन्तु बड़े भाई मेरे लिए बनाए गये हार को यों देनेवाले नहीं । पन्द्रह दिन से तो युवराज मेडतीजी से अनबोले रहे थे । उनकी पहरेदार भगतिन पद्मा ने करारी सौगन्ध पर मुझे कहा था कि, कल तक तो भाई अपने शयन मन्दिर मे और भाभीश्री गिरिधारी के चरणों मे मृगछाला पर सोये थे... तो सिर यह...यह नवलखा हार भेंट किया किस तरह ?"

"ननद बाई इसी को कहते हैं प्रेम..." बड़ी भाभी मरोड़ में बोली ।

'धुँवेदार ?" ऊदाने दात पीसते हुए कहा ।

"हाँ ।" बडी भाभी ने जवाब दिया । "धुँवेदार प्रेम भड़कता नहीं, धुँआ फेंकता है और अन्त में प्रकट होता है ।"

"बड़ी भाभी भी महाचालाक हैं !" छोटी भाभी प्रशंसा करती हुई बोली, "युवराज अनबोले रहे, परन्तु वे नहीं रहीं । वे तो जैसे रोज बोलतीं थीं वैसे ही बोलती रहीं । भोजन के समय पंखा लिए हाजिर, सोते समय पंखा लिए हाजिर, स्नान-विधि के बाद केसरिया दूध लिए हाजिर, और फिर

ताम्बूल लिए हाजिर। परन्तु, ढंग एक ही। जलकमलवत्' पानी मे ही जीना पर पानी से अलग।''

''कैसी नकटाई !'' ऊदा भींचे हुए दाँतों से बोली।

''और तो भी लोग 'नकटे' कमल को शंकर के शीश पर चढ़ाते है।'' बडी भाभी ने जलती ऊदा को और जलाने के लिए कहा।

''सबको नकटी वस्तु ही अधिक पसन्द आती है।'' छोटी ने घी डाला। ''ऐसा न हो तो खुद ही अनबोले रह कर खुद ही नवलखा हार देते कैसे जाय ?'' बडी ने धुँआँ फैलाया।

परन्तु ऊदा भडके बिना, घुमडते हुए क्रोध मे बोली

''भाभी नवलखा हार गया तो भले जाने दो, मेरे लिए तो दूसरा बन रहा होगा, परन्तु बडे भाई ने मन्दिर का कैसे, किस प्रकार मान लिया ? बोल ?''

''और मानने पर भी क्या ? मेरु हिल जाय पर मीराँ बाई नहीं हिलतीं।'' छोटी बोली।

''मीराँ भाभी ने क्या किया ?'' ऊदा ने एकदम पैनी आँखों से पूछा।

''मीराँ भाभी ने नवलखा हार तो स्वीकार कर लिया; परन्तु स्वीकार कर, हार को गिरिधारी के गले मे डाल दिया।''

''फिर युवराज ने क्या किया ?'' ऊदा ने उत्सुकता से पूछा।

''युवराज अतिशय क्रोध से जाने लगे।''

''फिर''

''उस्ताद मेडतीजीने झट युवराज के पैर पकड़ लिए। पत्नी पति के पैर पकडे यह तो सुन्दर बात है, परन्तु जिस तरह उन्होंने पकडे, क्या कहूँ ननदबाई ''

''फिर, भाभी फिर ?''

"फिर वे क्या बोले और उन्होने क्या कहा यह मैं सुन नहीं सकी।"

"कैसे ?"

"मै क्या पास थी ? बहुत दूर से देखती थी।"

"तो लुक-छिपकर भाई-भाभी की बातें तुम सुना करती हो ?"

"ऊदाबाई, जिस पूरब की बारी के पास हमेशा खडी होकर आप सुनती है उसी बारी के पास मै खडी थी। मुझे क्या सुन पडे ?"

"खैर, ठीक। देखा तो था न ! फिर क्या हुआ ?" ऊदा ने होठ दबाकर जहरीली आँखो से छोटी भाभी को पूछा।

"फिर ? युवराज बैठ गए। फिर आपके भाई के कथनानुसार प्रेम मे पूरे अँधे हुए युवराज ने युवराज्ञी का हाथ पकड लिया. .अभिनयकारी इस पागल मेड़तीजी के वे आँसू पोंछते दिखाई दिये...और आज मालूम हुआ है कि मेड़तीजी के लिए मन्दिर बना देने को राजमहल में सभी को ताक़ पर रख दिया।"

"मीराँ भयंकर हैं।" ऊदा भड़कती हुई बोल उठी।

"कब नही थीं ?" बड़ी ने कहा।

"अरे कुलांगार हैं, कुलांगार, गिरिधारी के पीछे सारे राज्कुल को बरबाद न कर दे तो मुझे कहना।" छोटी बोल पड़ी।

"मेरे भाई ऐसा कहते थे—न ?"

"भइ हाँ, हाँ। कोई मुझसे थोडे कहा जाता है ? परन्तु देखना। मीराँबाई को भोली, पागल, नासमझ भगतिन न समझना। यह जड़ बहुत गहरी है।"

"बडे भाई दुःखी है निराश हैं। वे जो कुछ करते हैं उसका परिणाम भयंकर है। मेड़तीजी समझती क्या हैं ?"

इतना कहते कहते बैठी हुई ऊदा खड़ी हो गई और मीरां की मेड़ी की तरफ रिसाकर चलने लगी।

"सँभालना ननदल ! कहीं तुमको गिरिधारी-गोपाल की चेलकी न बना दे ।' बड़ी ने कहा ।

ऊदा एकदम खडी रही फिर धीरे से बडी भाभी की तरफ प्यासी आँखें फेरकर बोली "भाभी सा मैं मारवाडी नहीं मेवाड़ी हूँ ।" राठौडी खून जिसके शरीर में बहता है उस बडी भाभी को इतना कटाक्ष मारकर ऊदा चलने लगी ।

भाई के शयन गृह के पास पहुँची हुई ऊदा लपक कर एक ओर हो गई । कुँवर भोजराज तेजी से भीतर से बाहर निकले और राजदरबार की तरफ़ चलने लगे । जितने जोर से उनके पैर जमीन पर गिर रहे थे, जिस क्रोध से उनके होठ भीतर की ओर हुए थे, जिस क्रोध से उन्होंने घोड़े पर सवार होते समय सईस को तमाचा मारा, और जिस वेग से उन्होने घोडा भगाया ये सब, डर डरकर लुक-छिपकर देखनेवाली ऊदा को भयंकर प्रतीत हुआ । भाभी की मीठी मादक कोयल की कुहू के बदले इसने उल्टी ही बात देखी । उसका हृदय एक प्रकार के भय, आनन्द और सन्तोष से भर गया । उसे जान पड़ा कि भाई अभी खारे रूप मे पराईजाई के हाथों मे न था ।

ऊदा बिलकुल स्वस्थ हुई और मीराँ बाई के आवास में घुसी ।

घुसी और स्तंभित होकर देखती रही ।

मीरां बाई फूल का छोटा-सा चँदोवा गूँथ रही थीं । गूँथ रही थी और गा रही थीं । ऊदा फीका, झूठा, बनावटी हास्य करती हुई धीरे धीरे मीरां के पास जाकर बैठ गई ।

म्हारी सुध ज्यूँ जाणो ज्यूँ लीज्यो ।

पल पल ऊभी पंथ निहारूँ, दरसण म्हाँने दीज्यो ॥
मै तो हूँ बहु औगणगारी, औगण सब हर लीज्यो ॥
मैं तो दासी थाँरे चरण कँवल की, मिल बिछुड़न मत कीज्यो ॥
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरि चरणाँ चित दीज्यो ॥

"कितना मीठा गाती है भाभीसा ! 'म्हाँरी सुध ज्यूँ जाणो ज्यूँ लीज्यो' मेरे भाई के पास भी ऐसे ही गाती है क्या ?" झूठमूठ हँसते हुए ऊदा बोली।

"उनको यह भजन बहुत ही पसन्द है" मीराँ शरमाती हुई परन्तु उत्साहभरी वाणी मे बोली, "अभी अभी सुनकर गये—मुझे खास तौर से सुनाने के लिए कहा था।"

"इस पर इतना क्रोध चढा था।" फूल की चद्दर को ऊँगली से खिलवाड़ करते ऊदा बोली। शब्दो मे सांप जैसा दूर से आनेवाला फुंकार था। मीराँ बाई चौंक उठी।

"क्रोध चढ़ा था ? उनको ? यहाँ से तो हँसते हँसते गए..."

"आपने किसी दिन, एक भी बार उनकी आँखो मे ध्यान से देखा है ? उनके हँसते होठ पर एक बार भी नजर डाली है ? उनके हृदय पर एकबार भी हाथ रखकर धड़कन सुनी है ? भाभी, मै आपकी तरह संसार से विरक्त नहीं। परन्तु दोनो हाथ जोड़कर कहती हूँ—सुनेंगी ? अभी अभी युवराज क्रोध मे भरे हुए शयन-मन्दिर से जाते समय मुझे सामने मिले। जो युवक, शयनमन्दिर मे से हँसता हँसता बाहर आये, परन्तु देहरी से बाहर पहला कदम रखते ही अतिशय क्रोध से चलने लगे उसके हृदय मे कितना क्रोध होना चाहिए ?"

"आप क्या कह रही हैं ऊदाबाई ? हँसते हँसते आपके भाई मुझे फूल दे रहे थे और मैं गा..."

"भाभी" ऊदा बीच में ही बोलने लगी "जिस युवक के हाथ में हमेशा तलवार ही खेलती हो, उसके हाथ में फूल खेलने लगें, घोड़े की पीठ पर ही बैठा रहने वाला वीर कोमल गद्दी पर बैठ कर एक टक पत्नी को देख उसे फूल देता रहे, क्रोध को हास्य में और हास्य को क्रोध में एक ही डग में जो युवक फेर दे तो उसे क्या समझना ? जितना प्रेम मेरे भैया आप पर रखते हैं उतना प्रेम उन्होंने पत्थर पर रक्खा होता तो वह भी मुँह खोलने

लगता। उनके हृदय को शांति और मनको चैन नहीं। वे दुःखी है, बहुत, बहुत दु.खी हैं। एक राजपूत पुरुष की सच्ची शक्ति है उसका धर्म और उसकी स्त्री। मेरे भाई दोनो से वंचित रहे हैं और इसका कारण आप है आप। भाभी, जो स्त्री अपने पति को सुखी नही कर सकती उसका जीवन धूल है, परन्तु जो राजपूतनी मेवाड की कुलवधू बनकर अपने पति को दुःख ही देती रहती है उसे तो केवल जहर खाना ही बाकी है। बेचारा पति घुट घुट कर मरनेसे तो बचे!"

इतना कहकर क्रोध मे काँपती हुई ऊदाबाई मुँह फेर कर चलने लगी। मीराँ बाई पहले आश्चर्य, फिर सहानुभुति, फिर ग्लानि और दुःख अनुभव करती हुई तिलमिला उठी। क्रोध को भी वे दुःख देना नही चाहती थी। अपने हाथसे कोई भी दुःखी हो यह विचार मात्र करके भी यह प्रेमवत्सला, प्रेमसखी, तिलमिला जाती। फिर यह तो उसका पति था जिसको सुखी करना वह अपना धर्म समझती थी। इस पल तक वह मानती थी कि उसका पति सुखी है, परन्तु यह ऊदा क्या कह गई वह दौडी और तेजी से जाती हुई ऊदा को दोनो हाथों पकडती हुई बोली:

"ऊदा बाई, जाओ मत, मेरी भूल हुई है। भारी भूल हुई है। मेरे कारण उनको बहुत दुःख है ऐसा तो उन्होंने जरा भी नहीं कहा और नही किसी दिन ऐसा व्यवहार दिखाया। मुझे जो रुचता है वही करने को वे हमेशा तैयार रहते हैं और..." मीराँ रुककर ऊदा की तरफ देखने लगी। ऊदा ने एक शब्द भी न कहा। मात्र जैसे देख रही थी वैसे ही क्रोध मे देखती रही। मीरां ने ऊदा की क्रोधी आँखों में से उसका हृदय टटोलते हुए पूछा:

"वे सचमुच बहुत क्रोध मे चले जा रहे थे?—तो निश्चय ही दुःखी होंगे, बहिन बाई, कहो उन्हे ऐसा क्या दुःख है जो मैं जान नही सकती? क्या करूँ जो इनका वह दुःख मिटे? मैं इनको जरूर दुःखी नहीं होने दूँ!"

"भाभी मेरे आगे इतनी गद् गद् होने के बदले मेरे भाई के आगे इतनी गद् गद् होती हों तो दस पांच बरस इनके जीवन का तो हमे विश्वास हो।"

"मै क्या करूँ बहिना ? जल्दी बताओ।"

"आप बच्ची नही है भाभी सा। मूर्ति के साथ आठोंपहर खेलने मे भले ही आप न दान जैसी दीखें, परन्तु मनुष्य हो तो ऐसा करो जिससे आपके पति के मन को और हृदय को शान्ति मिले। स्त्री का पति ही उसका सच्चा परमेश्वर है और उसकी तन मन से भक्ति ही उसका धर्म है। प्रेम की इतनी महिमा आप गाती हैं परन्तु आपके भजनों मे क्या ऐसा कहीं भी नही आता कि जो अत्यन्त प्रेम मे क्रूरता हो उसे दुःख न देना ?" कहकर ऊदा झट चली गई। मीरों चुपचाप खड़ी हो रही—थोड़ी देर, और फिर फूल की चद्दर समेट कर एक किनारे रख दी।

भोजनादि के बाद शयन मन्दिर में दूज के चन्द्रमा को देखते हुए पलंग पर लेट युवराज भोज एकदम खड़े हो गये। और किसी दिन नही लेकिन आज इस समय मीराँ आहिस्ता से उनके पलंग के पास आई और झुक कर खड़ी रहीं।

कुँवर का हृदय आनन्द से उछलता हुआ गले में आ ठहरा। मीराँबाई ने आहिस्ता से उनकी जूतियाँ दूर कीं और पंखा लेकर उनके पैर के पास बैठी। कुँवर ऐसा अवाक् हो गया कि अतीव आनन्द की कम्पित मस्ती अनुभव करता हुआ पलंग पर ही पड़ा रहा। खड़ा न हुआ।

"आप बहुत दुःखी है ?" मीराँ ने बहुत ही धीरे से कहा। उसकी आवाज़ मे दुःख स्पष्ट था।

"मै ? किसने कहा ?"

"मै आपको दुःख देती हूँ। मै क्या करूँ जो आप सुखी हो ?"

कुँवर पलंग पर उठ बैठा और आश्चर्य से मीराँ को देखने लगा। क्या कहना ? जो स्त्री के पीछे खुद दीवाना हुआ है, जो स्त्री उसकी पत्नी बन चुकी

है, वह पूछती है कि मैं क्या करूँ जो सुखी होओ ? कुँवर बुद्धिमान् था परन्तु उत्तर न सूझा। एक ही वाक्य में असली दुःख न कह सका ! उसने धीरे से मीराँ का हाथ पकड़ते हुए कहा.

"मैं दुःखी नहीं !"

"आप हैं !" मीरां ने दृढता से कहा।

"किसने कहा ?"

"ऊदा बाई कहती है, भाभियाँ कहती है, माँ कहती हैं !"

"आप सबको पूछ आईं ?"

"नहीं, मैंने सुना !"

"आप सत्य मानती हैं ?"

"आप आज्ञा दें। मैं क्या करूँ जो आप सुखी हों ? आपको सुखी करना मेरा धर्म है।"

भोज को अन्तिम वाक्य न रुचा, परन्तु मीराँ के कंठ में सच्ची उत्सुकता दुःख थे। कुँवर हँस पड़ा। धीरे से मीराँ का हाथ पकड़ा और अपने सिर पर रखकर कहा: "यहाँ दुःख है : दबाओ, निकल जायगा।"

पत्नी पति का सिर दबाने लगी। युवराज को एक के बाद एक तरंगें उपजने लगी। मन में दबे हुए तूफान मानो प्रचंड वेग से उमड़ने लगे। थोड़े समय तक चुप्पी रही। युवराज की बेचैनी बढ़ती गई। मीराँबाई के हलके हाथ से उसका पागलपन न शान्त हुआ।

पति ने अचानक खड़े होकर पत्नी का कन्धा पकड़ा और उसे छाती से लगाया। मीराँ ने आँखे नीची कर ली।

भोजने आवेश से मीराँ का मुँह ऊपर उठाया.. उसका आवेश गल गया। उसे जान पड़ा कि अतिवेग से दौड़कर पहाड़ पर चढ़ता हुआ वह वापस गिरा। उसे महसूस हुआ कि मरुभूमि में दीख पड़नेवाले स्वर्ग के पीछे पीछे दौड़ते हुए ठोकर खाकर गिरा और जब आँख खुली तो होंठ धूल में

मालूम हुये। उसे ऐसा लगा कि भगवान् की मूर्ति मे छिपे हुए भगवान् को प्राप्त करने के लिए कोई मूर्ति से मिले तो उसे भगवान् मिल नही सकते उसी तरह मीराँ का स्पर्श करने पर मीराँ न मिली।

पत्थर नही, पत्नी छाती पर थी। वही अखंड सौंदर्य था। उसके हृदय की आग पत्नी के शीतल शरीर से अधिक उग्र बनने लगी। मीराँ की मोहक आँखो मे निरामयता, निर्लेप, सौम्यता इस प्रकार की थी कि जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिए वह तरसता था वह अदृश्य थी। जिसे वह ढूँढता था उसके सामने होने पर भी वह ले नही सकता था।

हाय रे विधाता!

मीराँ की आँखो मे और उसके ओठो मे अपने सुख को खोजने के लिए भोज व्यर्थ...मारने लगा।

वह एकाएक चौंका।

मीरा की दो पुतलियो मे उसे उस गिरिधारी की हँसती मूर्तियाँ दीखी। उसके ओठो मे उसे गिरिधारी के शब्दों का गुंजार भरा हुआ जान पड़ा। एक पल मे उसने मीराँ को अलग किया और चलने लगा।

महल के बाहर बगीचे मे जवान पटावत बैठे थे—भोज वहाँ आकर बैठा। पटावतो की आँखे चमकी। भोज की आँखे चमकी—कसुंबा तैयार होने लगा और जिन्होंने किसी दिन भी इतना कसूंबा नही पिया था आज सबकी मनाही करने पर भी भोजने इतना पिया—इतनी देर लगी कि अन्त मे नशे की अतिशयता मे युवराज भोज जहाँ थे वहीं पड़ गये—सो गये।

★

इसका नाम प्रेम ?

"युवराज ने दूसरी बार विवाह किया।"

अन्तःपुर के एक पश्चिमी झरोखे में पूरब की ओर मुँह किए हुए अतिशय हाँफती हुई छोटी भाभी ऊदा को सम्बोधन करके बोली।

"क्या कहती हो भाभी! तुम्हारा माथा तो खराब नहीं ?" ऊदा आश्चर्य और गुस्से से बोली।

"युवराज का ही मालूम देता है नही तो पवनवेगी बनकर विद्युत्वेग से हस्तमिलाप कैसे कर लेते ? युवराज ने विवाह कर डाला, बाई!"

"ठहर मुझे जरूर कुछ हो गया है। भाभी! मैं ऊदा—मुझ ऊदा को पता भी नहीं कि मेरे भाई का विवाह हो रहा है— और तुझ पराई जाई को कहाँ से खबर..."

"पराई जाई को ठौंसा मत मारो ननदलजी! राजपूतों को राजपूत बनानेवाली पराई जाइयाँ ही हैं—माँ बहिन तो बाद मे।"

"सबने मेरे साथ कोई दाँव रचा है—ज़रूर रचा है। मुझे माँ ने नहीं कहा, पिता ने नहीं कहा, केवल तू ही मुझे जलाने के लिए कहती है।"

नीचे बैठती हुई ऊदा इतना कहकर रो पडी। इसे पता भी नही और युवराज का विवाह हो!—वह अकेली बड़ा पद लेने को युवराज का दूसरा विवाह कराने के लिये छिपे छिपे सिरफोड़ी करे और कोई दूसरा ही व्यक्ति युवराज का विवाह करा दे यह उसकी आत्मीयता पर नही अस्मिता पर

घाव था। उसके झूठे आत्मगौरव पर ठेस लगी। इसलिए उसकी आँखों मे आँसू आ गये। ससुराल से वह जो जल्द चली आई थी तो क्या रोने ?

छोटी भाभी को कुछ क्षोभ हुआ उसने हँसते हँसते ऊदा का हाथ पकड़ा और खीचकर बोलीः

"उठो ! राजमाता और दीवानजी को तो अभी कहना है।"

"हे ?" ऊदा आँखें फाड़कर खड़ी हो गई, "उनको पता नहीं ?"

"नही जरा भी नही।"

"तो तुझे कैसे मालूम ?"

"पराईजाथी हूँ इसलिए !"

"सीधा जवाब देती है कि नही ?"

"कल रात को आपके भाई और युवराज झालावाड की तरफ गये और मन्दारकुँवर कन्या को ले जायँ उससे पहले वही का वहीं विवाह करने के लिए राजपुरोहित को भी साथ ले गये।"

'तुझे पता कैसे चला ?"

"मैने दोनो को चुपके से बात करते हुए सुना—और जाते देखा। जाते जाते आपके भाई ने मुझे सावधान किया कि जब तक झालावाड से मेरे आदमी आ न जायँ तब तक किसी को कहना नही।"

"परन्तु इतनी धाँधली करने का कारण क्या ?"

"बहिन बाई ! दूध का जला छाछ फूँककर पीता है, पेट का जला गाँव जलाता है, परन्तु दिलका जला कुटुम्ब डुबावे !"

"तू बकती है भाभी—बकती है।

"जी हाँ। बहिन बाई, छ महीनो से युवराज मेड़तीजी से बिलकुल निराश हो गये थे इसलिए उन्होंने कन्या का हरण कर इतनी शीघ्रता से चुपचाप विवाह कर डाला। यह, आने पर मालूम होगा।"

"उत्तम ! अत्युत्तम ! परन्तु भाभी कुटुम्ब डुबाने का प्रश्न कहाँ आया ? दु:खी कन्या का हरण करना तो राजपूत का धर्म है ।"

"प्रभा कुँवरी का प्रेम मन्दारराजकुँवर पर है परन्तु उसके अभिभावुकों को यह पसन्द नहीं था और मन्दार कुँवर को वे इन्कार भी नहीं कर सकते थे । इसलिए आपके भाई ने युवराज को समझाकर युक्ति निकाली—विवाह होने से पहले ही कुँवरी के साथ विवाह कर डालने के लिए उन्हे प्रेरित किया ।"

"मेरा विक्रम—मेरा भाई !"

"परन्तु कुँवरी की इच्छा के विरुद्ध विवाह कर युवराज उसे यहाँ ला रहे है इतनी ठेस तो रह ही गई ।"

"ऐसा कौन मेरे भाई कहते थे ?"

"अरे ? यह तो मैं कहती हूँ ।"

"बहुत ठीक भाभीसा । अब फिर किसीके मुँह कुल डुबोने की बात न करना । यह तो कुल को जिलाने की बात हुई है । इस भगतानी से सीसोदिया राजवंश जिन्दा रहता यह तो आकाश को बाथ मे लेने जैसी बात थी । बडा अच्छा हुआ । जब जब मैं कहती थी तभी भाई श्री दूसरी राजकुमारी से विवाह करने के लिए दाँत कटकटाकर इन्कार करते थे । आखिर तो उनको इस ऊदा का कहना मानना पडा न ! शरम के कारण मुझे नही कह सके होंगे । अब मंगल-बधाई सारे राजमहल मे फैला देती हूँ ।"

इतना कहकर शोर करती हुई ऊदा अन्दर दौडी और राजमाता के निवास की तरफ डग भरने लगी ।

ऊदा ने अक्षरशः विद्युत्वेग से राजमहल मे मंगल-बधाई फैला दी । प्रभाकुमारी के नाम पर बहुतों को संतोष हुआ । कइयो को दुःख हुआ । सिसोदिया का वंशज एक पर दूसरी करे वह कोई अशोभनीय न था, परन्तु एक पत्नी के कारण अतिशय दुःख पाकर वह दूसरी को बलात्कार से और

फिर चोरी छिपे विवाह करे यह निःसन्देह विचारणीय था।

तो भी राजमाता को ठंडक पहुँची। वे शीघ्र ही राजकर्मचारियों को बुलाकर नववधू का स्वागत करने के लिए तडीमार तैयारियां करने लगी।

सारे राजमहल को कहने के बाद ऊदा जिससे मिलने के लिए उड़ने को तड़फती थी वह उस मीराँ के पास आ पहुँची। बकरी को काटने से कसाई को आनन्द होता है, मनुष्य को सताने से शैतान को आनन्द होता है, वैसा ही आनन्द ऊदा के हृदय में उमड रहा था।

भगतानी मीराँ को मंगल-बधाई सुना कर ऊदा को देखना था कि मीराँ के मुँह पर दुःख की कैसी परछाईं उतरती है—कैसी लाचार, कितनी दीन वह दीखती है! उसने मीराँ को अपने पैर पकडकर रोती हुई, राजमाता के पैर पकडकर क्षमा माँगती हुई और युवराज की चरणरज लेकर प्रेम भिक्षा माँगती हुई कल्पना की थी। सिवाय अपने मीराँबाई को खबर न पहुँचाने के के लिए उसने हरेक को ताकीद की थी और मीराँ की नज़र के साथ नज़र मिलाकर कहने की और किसीमे सिवाय ऊदा के हिम्मत ही न थी।

मीराँबाई गिरिधारी की मूर्ति से थोडी ही दूर भागवत बाँचने में लीन थीं। ऊदा को आई देख पद्मा और काशी बाहर खडी रहीं। ऊदा के पैरों की झाँझरों ने मीराँ का ध्यान भंग किया। उन्होने पोथी मे से ऊपर देखकर स्मित करते हुए कहा :

"आओ ऊदाबाई।

"भाभी, आपकी भक्ति सफल हुई।" क्रोध दबाकर हँसती हुई ऊदा बोली।

"कैसे बहिनजी!"

"अब आपको मेरे भाई की जिम्मेदारी की चिन्ता नही करनी पडेगी। आज से आपको उनके भोजन करते समय पंखा नहीं झुलाना पडेगा। और उनके शयन के समय झूठमूठ खड़ा नहीं रहना पडेगा। धन्य है आपके भग-

दिखाई दिया। वही आघात करने के लिए वह मर्माहत भाव से कहने लगी "कन्या का हरण करके विवाह करने को युवराज गये हैं। अब तक तो विवाह करके लौटते होंगे।"

मीराँ ऊदा को देखती रही। ऊदा बेधक दृष्टि से मीराँ को देख रही थी। मीराँ ने हाथ में रहे हुए भागवत के पन्ने को पोथी मे रख दिया। उनको निरुत्तर देखकर ऊदा ने उत्सुकता से पूछा, "क्यो भाभी ?"

मीराँ ने पोथी समेटते हुए कहा, "भागवान् उनको सुखी रक्खें!" "है ?" ऊदा आँखें निकाले मीरा के निर्दोष स्मित की तरफ देखती रही। मीराँ इतना कहा कर अधिक बोले बिना पोथी उठाकर गिरधारी लाल की मूर्ति के पास गई और उनके पास ही रखी हुई काठ की घोडी पर रख दी। ऊदा को मीराँ के स्वल्प शब्दो से तृप्ति नहीं मिली। दबा हुआ क्रोध बाहर उछल आया। यह भी कैसे ढंग की औरत है ? जो पति इसके पीछे दीवाना है वह दूसरी ब्याह लाता है और इसे कुछ होता ही नहीं ?—न तो क्रोध, न आँसू ? ऊदा क्रोध में मीराँ के पीछे दिवसको और झटके से अपने पास खींच कर बोली "क्यों भाभी! फिर गया जान पड़ता है क्या ?"

"क्या बहिन जी ?" मीराँ ने और स्मित करते हुए कहा।

"आपको क्या मजाक़ लगता है ? मैं सच कहती हूँ।"

"आपके शब्दों को मै हमेशा सच ही मानती हूँ।"

"भाभी, सुनने जैसा तो मैंने अभी कहा ही नही। राजमाता ने निश्चय किया है आनेवाली राजकुँवरी को युवराज्ञी बनाने का—समझीं, मेवाड की भावी महारानी।"

"भगवान् उसे सुखी रक्खे—खूब सुखी रक्खे।"

ऊदा चौंककर एक कदम पीछे हट गई। या तो मीराँ पागल हो गई है या वह खुद ही पागल हो गई है। मीराँ एक तरह की धुन में रहती थी इसे ऊदा जानती थी। इसमें से उसे विचलित करने के लिए शब्दों को स्पष्ट

करके वह कहने लगी : "भाभीसा, इसका मतलब समझीं ? आपके स्थान पर यह नई राजकुँवरी आवेगी । केवल आने और कुलदेवी को नमन करने मात्र की ही देर है !"

"भले ही आवे !" मीराँ ने अधिक स्मित दिखाते हुए कहा ।

"भले ही आवे ?" ऊदा ने आँखें फाड़ते हुए ऊँची आवाज में पूछा । "अरे वाह ! धन्य है भाभी राठौड़ों की छाती को । हाथ जोड़े भाभीसा—दो हाथ और तीसरा सिर ।"

"भगवान् आपको सुखी रक्खें !"

हे ! ऊदा चौंककर एक कदम और पीछे हट गई । वह खुद जिसका सर्वनाश चाहती थी उसे मीराँ सच्चा आशीर्वाद दे रही थी ?

ऊदा मे परिवर्तन हुआ । उसका क्रोध वहाँ का वही रह गया । उसका व्यंग जागते जागते सो गया । मन की मन मे ही रह गई । मीराँ को क्या हो गया ? उसके शब्दो मे माधुर्य था, उसकी आवाज में निर्दोष प्रेम का अनुभव होता था । मीराँ को क्योंकर कुछ होता नहीं ?—क्यों नहीं होता ? ऊदा के हृदय मे अविरल उठनेवाले इस प्रश्न ने उसे बौखला दिया । उसका मस्तिष्क सचमुच फिरने लगा । कुछ भी बोले बिना उसने सचमुच दोनो हाथ और तीसरा सिर मीराँ के आगे नमाया और निश्वास डालकर बोली, "भगवान आपको सुखी रक्खें !

मीराँ ने प्यार से उसके जुडे हुए हाथ पकड लिए । ऊदा ने चौंक कर उसकी तरफ देखा, परन्तु मीराँ की आँखों में ज़हर के बदले अमृत बरसता देखकर, दुःख, राग और द्वेष के बदले मस्ती और शान्ति देखकर ऊदा अपने को काबू मे न रख सकी । उसके निर्मल हास्य बहाते हुए ओठ देखकर उसने एक हलकी चीख निकाली और हाथ खींचकर कमरे से बाहर भागी ।

मीराँ ने वही हास्य भगवान् गिरिधारी की तरफ फिराया । वे भी हँसते थे । मीराँ धीरे से उनके सामने बैठ गई । उसके एक गाल पर एक

आँसू ढलक गया, मात्र गिरिधारी ही सुने इस तरह उसने गद्गद् कंठ से कहा, "धन्य हो प्रभु ! मेरे हृदय का एक बड़ा बोझ तूने दूर किया । मैं उनको जरा भी सुखी नहीं कर सकती थी । इतना करना दीनानाथ, आनेवाली राजकुमारी उनको हमेशा आनन्द में रक्खे । उन्हें आनन्द में देखकर मुझे आनन्द होगा ।"

शरम और ग्लानि मे सिर नीचा किये दरवाजे के बाहर खड़ी पद्मा और काशी मीराँबाई के शब्दों को अच्छी तरह सुन रही थी । उन्होंने विह्वलता से मीराँबाई की तरफ देखा ।

भोजराज विवाह करके आये । नववधू को लेकर ।

नववधू का धूमधाम से स्वागत हुआ । कुलदेवी को नमस्कार हुआ । राजमाता ने नववधू की बड़े प्यार से आवभगत की । मीराँ के नाम मात्र से उन्हें तिरस्कार और क्रोध उमड़ता था, उसे शान्त करने के लिए उन्होंने नववधू को अधिक आवेश के साथ प्रेमपूर्वक अभिषिक्त किया । राजकुटुम्ब अवाक् होकर इस बहू-सास के जोड़े को देखता रहा । सबको दिखाने के लिए वे हरेक बात में अधिक आनन्द और अधिक उमंग दिखाने लगीं । उन्होंने सारे राजकुटुम्बियों को आग्रहपूर्वक बुलाया था, केवल मीराँ को छोड़कर । हरेक के हृदय में मीराँ के प्रति एक गुप्त सहानुभूति जाग्रत होने लगी ।

इतने में सबको आश्चर्य में मूढ बनाती हुई मीराँ बिना बुलाये ही वरवधू का स्वागत करने आ पहुँची । उसने कुलदेवी को नमस्कार किया । मुँह फिराकर खड़ी हुई राजमाता और मुँह फाड़े खड़ी हुई बड़ी बूढ़ी स्त्रियों को प्रणाम कर वह नववधू के पास आई ।

भोज और विक्रम मुँह पर सख्त शान्ति धारण किए खड़े रहे ।

परन्तु जिस स्नेह भाव से मीराँ ने नववधू को गले लगाया और आदर किया उसे देखते ही युवराज भोज मनही मन सुलग उठा । हृदय का गुप्त

रोष घटने के बदले और प्रज्वलित होने लगा। परन्तु ओठ नहीं खुले। पैर न हिले। जैसे खडे थे उसी तरह युवराज खडे रहे।

मीराँ आग्रहपूर्वक नववधू को अपने साथ लेकर अपने मन्दिर मे आई। आग्रहपूर्वक उसे भोजन कराया और आग्रहपूर्वक स्वयं ही उसे पतिमन्दिर मे छोड़ आई। नववधू पहली ही दृष्टि में मीराँ के आज्ञाधीन बन गई थी। मीराँ के प्रेमभरे शब्दों से वह सबको छोडकर मीराँ से लिपट गई।

शयन मन्दिर मे नववधू को भेज चुकने के बाद मीराँ आनन्दमग्न अपने स्थान की तरफ जा रही थीं, इतनेने मे ही उन्हे किसी की जोर से चीख सुनाई पड़ी :

"ठहर!"

मीराँ ने चौंककर शयन मन्दिर के बन्द द्वार की तरफ देखा। अन्दर से शीघ्र आवाज़ सुनाई दी।

"तलवार खींच!"

"नादान! मौत के मुँह मे आया है?" दूसरी आवाज आई।

"नहीं! नहीं!" एक स्त्री की चीख सुनाई दी! मीराँ भाग कर दूसरे दरवाजे से भीतर गई। उन्होंने देखा की नववधू एक जवान राजपूत का जोर से हाथ पकडे उसे लड़ते हुए रोक रही थी और उसके सामने भोजराज आश्चर्य और क्रोध मे तलवार खीचे खडा था।

"बहिन जी! बचावो!" चीख कर नववधू मीराँसे लिपट गई!

पता नही लेकीन, भोजराज मीराँ को देखकर क्षोभ में पडा।

"कौन हो तुम?" मीराँ ने उस नौजवान से पूछा।

"मै हूँ—मन्दारकुमार। मेरी भावी पत्नी को यहाँ बलपूर्वक उठा लाने वाले दुरात्मा को अन्त करने के लिए यहाँ आया हूँ।"

"नाथ!" मीराँ ने भोज की तरफ मुँह फिरा कर पूछा।

"बहिनजी !" नववधू प्रभा बीच मे रो पडी ।

"क्या है ?" भोज ने नववधू को कठोरता से पूछा ।

नववधू काँपते हाथो मीराँ से लिपट गई और मन्दार कुमार को उद्देश्य कर के एक ही श्वास में कहने लगी, "यह सच है कि हम दोनो का विवाह निश्चय ही हो जाता परन्तु अब निरर्थक ।" इतना कहकर वे क्रुद्ध हुए मन्दार की तरफ आँखें उठाकर कहने लगी, "राजपुत्र ! मैं क्षत्राणी हू । जिससे विवाह हुआ वही पति । मनसा, वाचा और कर्मणा पत्नी बनी रहने के लिए मै प्राण त्यागूँगी । परन्तु अब मुझे मत बुलाओ । जाओ मन्दर राज । शर्म है आपको कि एक स्त्री के तुच्छ प्रेम के लिए अपना कर्त्तव्य भूल कर आये हो । मुझे विधवा करने से तुम फिर से विवाह कर सकोगे ?"

"नहीं । लेकिन मेरा वैर लूँगा ।" दृढ़ निश्चय से मन्दार राज बोला, "मैं यहाँ से ऐसा का ऐसा नहीं जाऊँगा । जिसने मेरी जिन्दगी को धूल जैसे कर दिया है, उसे मैं मारने के लिए आया हूँ, मार कर मैं वापस जाऊगा ।"

"मुझे धर्म का ध्यान था—बुलाया और गया ।" भोज ने गहरी आवाज़ में कहा ।

"मुझे प्रेम का ध्यान था" ऐसी ही आवाज़ मे मन्दार कुमार बोला और फिर एक कदम आगे आकर कहा प्रेम को मार डालनेवाले बेवकूफो से प्रेम जीता या काटा नही जाता । भोजराज मै कुँवरी प्रभा को चाहता हूं ।"

"होशियार ! मेरी स्त्री क चाहनेवाले को मैं काट डालूँगा ।" भोज गरजा ।

"मेरी प्रेमिका से विवाह करने वाले के मै टुकडे टुकड़े करने ही आया हूँ ।"

"शान्त, कुमार ! जरा सबूर ! जरा धीरज !"

आगे बढ़ते हुए मन्दारराज को रोककर मीराँ बोली । फिर वह भोजराज

की तरफ फिरी और मृदु वाणी से बोली, "नाथ ! प्रेमी पागल होते हैं । न हों तो प्रेमी कहलावें कैसे ? मन्दारराज के शब्दों पर मत देखो । इनको माफ करो । घर में जो आया वह अतिथि । अतिथि मन्दारकुँवर को आप मानपूर्वक बाहर पहुंचा आवें ।"

इतना कहकर मीराँ आश्चर्य में पड़े हुए मन्दार कुमार की तरफ मुड़ी और बोली—

"कुमार प्रेम की पराकाष्ठा खून से तर तलवार मे नहीं होती । किसी की पत्नी पर हाथ उठाना अधर्म है ।"

"और किसी की प्रेमिका को उठा ले जाना धर्म है ?" मन्दार कुँवर गंभीर आवाज में कहने लगा, "रानी, धर्म यानी क्या ? राजपूत का धर्म है उसकी इज़्ज़त और उसका प्रेम । दोनों गये तो फिर इस नश्वर देह को तलवार के आधीन कर देना ही धर्म है ।"

इतना कहकर मन्दारराज क्रोधपूर्वक भोजराज की तरफ घूमा और लापरवाही से बोला, "पत्नी की ओट लेनेवाले युवराज ! हो तैयार ।"

"बातों में मुझे विश्वास नहीं । मर्द है तो तलवार उठा ।" दाँत भींच कर भोज बोला । भोज की निश्चयात्मक आवाज़ से दोनों स्त्रियों के हृदय में भय उठा । भोज दो कदम आगे बढ़ चुका था । मन्दारराज का हाथ हवा में ऊँचा हो चुका था । दोनों की तलवारें बिजली की तरह, बिजली के वेग से हवा में चमकी और एक करुणाजनक चीख सुन पड़ी ।

"भगवान् ! क्षमा !"

मीराँ स्तब्ध होकर दौड़ी । परन्तु मीराँ राजकुँवरी प्रभा को पकड़ती इससे पहले तो प्रभा आगे बढ गई थी और दोनों कुमारों के झटके अपनी कोमल देह पर झेलकर नववधू तत्क्षण यह देह छोड़कर चली गई ।

भोजराज काँप उठा । मन्दारराज हृदयद्रावक रुदन कर नववधू के पास बैठ गया । बोखलाहट में हाँफता हुआ भोजराज तुरन्त कुमार के पास आया

और उसे खींचकर खड़ा करते हुए गहरी आवाज़में बोला, "यहाँ से शीघ्र चला जा। तेरे लिए नहीं, मेरे लिए नहीं—इस स्त्री की इज्जत के लिए।"

मन्दार राजकुमार ने राजकुमारी के मृतदेह की तरफ आँसू ढालते हुए देखा और भोज की तरफ एक तिरस्कार भरी दृष्टि डाल, जिस रास्ते आया था उसी रास्ते चला गया।

मीराँ ने जाते जाते राजकुमार को देख लिया। उसकी आँखों में काफी घबराहट दीखती थी। मीराँ विचार में पड़ी इसका नाम प्रेम !

मीराँ ने अपनी गोद में सोई हुई निष्प्राण राजकुमारी की ओर दृष्टि डाली। उसके मुख पर धन्य जीवन का आनन्द स्पष्ट भासित हो रहा था—इसका नाम प्रेम !

मीराँ ने अकस्मात् दृष्टि ऊपर उठाई। राजकुमारी का खून पीकर सलज्ज उबलती तलवार लिए भोजराज क्रोध में थरथर काँपता हुआ नत-मस्तक खड़ा था—इसका नाम प्रेम !

मीराँ देखती रही, विचारती रही।

घड़ीभर उसका गिरिधारी भुलाया।

★

दीपक बुझ गया

काँपते हाथ से ऊदा ने युवराज को तिलक किया। युवराज युद्ध को गए थे। दिल्ली पर मुग़ल टूट पडे थे और दिल्ली का पतन हुआ था। वहाँ के अफगान पठानो ने मारवाड की तरफ पंख फैलाने का प्रयत्न किया था। गुजरात और मालवा के सुलतान महाराणा के आगे घुटने टिका कर अपने राज्य वापस ले सके थे, तो भी यवनो के हमले धीरे धीरे वापस होने लगे थे। एक बडे आक्रमण के सामने लड़ने के लिए, सबको रोक कर स्वयं युवराज आप ही युद्ध को गये थे।

ऊदा का हाथ किसी दिन नही काँपा और आज काँपता था—भाई युद्ध मे जा रहा था इस विचार से नही, परन्तु भाई की मुखमुद्रा देखकर। इस मुद्रा पर उसने असीम शोक, क्रोध, झुँझलाहट, बेचैनी देखी और काँप उठी। अलबत्ता, एक वस्तु उसने इस समय नही देखी—उस मन्दार के राजकुमार मे दिखाई देने वाला उन्माद।

युद्धमे जाते हुए पति को हर्षाश्रु और प्रेम से विदा देना राजपूत स्त्री का परम धर्म है। पत्नी के हाथ से पहराई हुई फूलमाला और अक्षत कुंकुम से युद्ध मे चढ़े हुए वीर को अमोघ शक्ति और प्रेरणा मिलती है। उसके हृदय और मन मे विजयका नशा यहीं से शुरू होता है। वह समरभूमि मे जाकर लडता है और विजय ही पाता है।

कुलाचार के नियमानुसार मीराँबाई भी अक्षत कुंकुम और फूल माला से भरा पूजाथाल लिये आती दीखीं; परन्तु दिल का जला हुआ युवराज

उनको देखने पर ठहरा नहीं। बहिन के हाथसे विजयवैजयन्ती माला पहन कर, राजमाता के चरणों को छू कर, युवराज आस पास देखे बिना चलने लगा—चला गया। विजय के शुभ चिह्न लेकर आई हुई मीराँ जाते हुए पति को विस्मय से देखती रही। पति की तरफ से ऐसे अनादर की उसने स्वप्न मे भी कल्पना नहीं की थी। राजमाता और ऊदा, भाभियाँ और काकियाँ मुँह फेर कर चलने लगी। विशालगृहखंड मे मीराँ अकेली खड़ी रही। वह अदृश्य होते हुए पति की पीठ तब तक देखती रही जब तक कि वह उसे दीखा। फिर चुपचाप अपने मन्दिर मे आई और वही पूजा श्री जी के चरणों मे अधिक उत्साह से चढाई—नम गई। वह क्या प्रार्थना करने लगी उसे छिप कर सुनती हुई ऊदा या विक्रम की बहू न सुन सकीं। खुद मीराँ भी नहीं सुन सकी।

अहनिशि गिरिधर गोपाल मे ही निमग्न रहनेवाली मीराँ आज पति के लिए इतनी उदासी मे कैसे पड़ी थी? मीराँ का हृदय सन्नाटे भर रहा था—न चाहते हुए भी उसे लगा कि अनजान से वह अपने पति को दुखी कर रही थी।

अपने कारण कोई क्यों दुःखी हो? दादा को सुखी करने के लिए उसने विवाह किया था। पति को सुखी करने के लिए वह जो चाहता वही करने को तैयार थी। पति को प्रसन्न करने के लिए जैसा दूसरी करती हैं वैसा करती थी, तो भी पति को उसकी तरफ से दुःख था—किसलिए?

मीराँ ने गिरिधर गोपाल के पास बैठकर यही पूछा—किसलिए?

परन्तु गिरिधारी का तो एक ही जवाब रहता—हँसना। मूर्ति हंसती रही।

"अरे निर्दय! न हँस। यह प्रसंग भयंकर है। भावी महाराणा के हृदय मे दुःख है और इसका कारण, किसी को दुःखी न करने वाली और न देखने वाली तेरी भक्त मीराँ है। बता! रास्ता बता! दुःख विमोचन, कोई रास्ता... कोई रास्ता..."

मीराँ का हृदय इस तरह बार बार धड़ककर मानो बोलने लगा। कोई गूढ़ भय उसके हृदय को क्लेश दे रहा था। दीवानी मीराँ प्रेमार्त बनो हँसते गिरिधारी की आँखों की तरफ देखती रही। थोड़ी देर इसी तरह रही और फिर एकाएक, गिरिधारी को देखते देखते खड़ी होकर दो कदम पीछे हट गई।

यही—यही ! हँसता गिरिधारी, यही है उसके पति के दुःख का कारण। गिरिधारी इसके और इसके पति के बीच में आता था—या, पति इसके और इसके गिरिधारी के बीच में आता था ?

मीराँ विचार करती करती पीछे डग भरने लगी। उसे पति की उन्मत्त अवस्था के प्रसंग एक के बाद एक याद आने लगे। उसे जान पड़ा कि वह अथवा उसका गिरिधारी पति के दुःख का कारण है। तो फिर, दोनों मे से एक को दूर करना ही चाहिए ! किसको ? अपने आपको या गिरिधारी को !

गिरिधारी ? नही, नहीं। वह तो हँसता था अपने हमेशा के निर्बन्ध परन्तु गहरे संवेदन जगाता हुआ, प्रेमल परन्तु गर्भित, निर्दोष परन्तु सूचक हास्य के साथ—मस्त बनाता हुआ और प्रेरणा देता हुआ।

तो फिर दुःख का कारण स्वयं थी ? हाँ, स्वयं, स्वयं और हज़ार बार स्वयं।

किस लिए ?

वह तो विनयशील थी ! आज्ञाकारिणी थी ! सेवा सुश्रूषा में रात दिन रहती ! किसी की हाँ की ना और ना की हाँ भी नहीं करती ! मीठे मधुर संभाषण करके पति को रिझाने का प्रयत्न करती। 'जिसमे पति सुखी उसी में खुद सुखी रहने के लिए खुश रहती तो भी भोजराज दुःखी था।

मीराँ जानती थी—खूब जानती थी कि जितना उसका प्रेम गिरिधारी की तरफ बहता था उतना ही युवराज का प्रेम उसकी तरह बहता था। पिता माता, स्नेही, स्वजन हरेक के सामने उसके पक्ष मे खड़ा होने वाला उसका

पति ही था—तो भी वह उनको सुखी नहीं कर रही थी।

पुन. यही प्रश्न—किसलिए ?

मीराँ बेचैन होने लगी। गिरिधारी के ठीक सामने दरवाजे की सीढ़ियो पर मीराँ कितनी ही देर तक बैठी रही। उसके मुँह पर एक ही भाव स्थिर होकर जम गया था। विचारों की गहराई मे मीराँ डूब गई थी। यहाँ तक कि उसका हँसता गिरिधारी भी उसकी दृष्टि के सामने से दूर हो गया था। पद्मा और काशी घबराती हुई मीराँबाई पर दृष्टि रक्खे रही।

अन्त मे ये दोनो ही हारीं। ये ही नहीं सूरज भी थका और ढलने लगा। मीराँ एक गहरा साँस लेकर खड़ी हुई। धीरे धीरे पति के शस्त्रागार में गई—पति की प्रिय बैठकों मे घूम आई—बगीचे मे विहार करने के पति के प्रिय स्थान देख आई। भोजनगृह और शयन मन्दिर कोई बाकी न छोड़ा। ध्यानपूर्वक स्मरण करके उसने पति के दु ख को मापने का प्रयत्न किया। तलवारसी पैनी ऊदा, और ज़हरी जख़्म करनेवाली राजमाता करमैती के पास जाने से भी मीराँ चूकी नहीं। भाभियो के चरणो में बैठी और काकियो के पैर दबाये तो भी उसके 'किसलिए' का कारण उसे नही मिला।

मीराँ थक गई। रात-दिन और दिन-रात तीन दिन व्यतीत हो गए।

चौथे दिन राजमहल मे ही नहीं सारे चित्तौड मे हाहाकार मच गया। हरेक प्रजाजन के हृदय मे आघात और भविष्य की घोर आशंकाएँ अंकित हो गईं।

बात यह हुई थी . छाती पर छः भालो और पीठ पर सात तलवारो के घाव लेकर, दुश्मनो को रणक्षेत्र मे रौंद कर युवराज भोज राजमहल में पधारे थे। विजय-वैजयन्ती-माला अभी तक उनके गले मे लटकती थी। सिर पर लगाई हुई बापा रावल की दी हुई छँगी * अपनी सदियों पुरानी इज़्ज़त

* चमडे में सोने से मँढ़ा हुआ विजय चिह्न जो रणक्षेत्र में संचरण करने वाला सिसोदिया सेनापति पगड़ी पर धारण करता था।

ज्यों की त्यों बचा कर आई थी। अचानक चढ़ आने वाले दुश्मनों के सम्मुख असीम वीरता दिखा कर भोजराज जूझे थे। दुश्मन का बल जितना सोचा उससे दुगुना था। जितना माना था उससे अपने साथी बहुत कम थे; परन्तु शिकार को देख कर जिस तरह सिंह दहाड़ता और टूटता है। उसी तरह भोजराज दहाड़े और टूट पड़े।

जैसे हज़ारों लड़ाकुओं को अपने ही हाथ से मारेंगे ऐसे क्रोध और जोश से वे सबके आगे जाकर दुश्मनों पर टूट पड़े। दुश्मन शीघ्र ही पीछे हटने लगे; परन्तु कुमार ने एक एक को काट डालने का निश्चय किया और आज्ञा दी। साथियों—परिचारकों को पीछे छोड़ युवराज भोज दुश्मनों के यूथ में घुसे और भागते हुए दुश्मनों को पकड़ पकड़ कर निर्जीव करने लगे। मानो मारने और मरने का निश्चय किया हो! मानों क्षीण जान पड़ने वाली राजपूत शक्ति को इस एक ही प्रसंग पर समस्त भारतवर्ष में चमका देना हो—ऐसे शौर्य और ऐसे ही जोश से वे लड़े। दुश्मन मरे—जितने सामने आये उतने सब मरे। परन्तु स्वयं जीवित रहे—सख़्त घायल हो कर। सभी को सबसे अधिक आश्चर्य तो यह होता था कि वे रणक्षेत्र से राजमहल आने तक जीवित कैसे रह सके! उनको जो ज़ख़्म लगे थे वे ऐसे थे कि एक पहर में ही ज़िन्दगी का अन्त ला दें बल्कि उससे भी अधिक थे। तो भी युवराज जीवित रहे।

कटी हुई अंतड़ियों को अपने पेट में खोंसकर उन पर कमरबन्द को स्वयं ही कस कर बाँधा; छाती के भाले भी स्वयं ही एक पर एक खींचे और जब तक पालकी में पड़ते हुए बेहोश हुए तब तक पैदल चले। भोज के विचित्र बर्ताव से सबकी बुद्धि कुंठित हो गई।

समस्त राजमहल तड़प उठा! युवराज का घायल होना शुभशकुन नहीं था। लोदियों और सुलतानों को भारी शिकस्त देने में अस्सी अस्सी घाव सहन करने वाले राणा साँगा को युवराज के घायल होने का घाव सबसे अधिक विषम था। रणछोड़जी के नये मन्दिर के समक्ष पालखी में युवराज

सोये पड़े थे। पैर की तरफ विक्रम, रतन और सिर की तरफ राणा साँगा स्थिर नेत्रों से देख रहे थे।

प्राण टूटने की तैयारियाँ होती थीं। कि राणा और राजमाता को दोनों हाथ जोड़कर युवराज ने अपने शयनमन्दिर में शीघ्र ले जाने का विक्रम को सकेत किया और बेसुध हो गये......

जब जाग्रत हुए तो उनके मुख पर आनन्द छा रहा था। जिस वस्तु के लिए वे तरसते थे वह उन्हें प्राप्त हुई। उन्होंने देखा कि वे मीराँ की गोद मे सिर रख कर सोए थे...उन्होंने देखा कि मीराँ की आँखों मे वही अमी थी—मुख पर वही हास्य था। ऊँचे चढते हुए श्वास से युवराज मीराँ को देखते रहे। दूर खडी हुई ऊदा और उससे भी काफी दूर खडी राजमाता और विक्रम की बहू को भूलकर मीराँ पति के शब्द सुनने के लिये उत्सुक हुई। पति के चन्द्रवदन को निहारती रही। बुझते दीपक की अन्तिम चमक उसकी आँखो मे स्पष्ट थी। मीराँ को भोज अत्यंत मनोहर प्रतीत हुआ। भोज को भी मीरां आज ऐसी अतिसुन्दर जान पड़ी जैसी पहले किसी दिन नहीं। थोडी देर वे टुकुर टुकुर मीराँ को देखते रहे। अनेक भव की पिपासा तृषातुर नेत्रों से, दिव्य सौन्दर्य को पी पी कर सन्तोष करने लगे। युवराज की आँखो पर से अंधप्रेम का पर्दा दूर हुआ। मीराँ को देखते देखते उनको ख़्याल आया कि प्रेम—निराशा मे अपने आपको मारकर उसने अपनी निर्दोष प्रियतमा का सत्यानाश किया है।

युवराज की आँखें गीली हुई। काँपते हुए हाथ से युवराज ने मीराँ का हाथ जोर से पकड़ा। मीराँ शरीर का एक भी रूँआँ फड़काए बिना अपने हाथ को युवराज के मस्तक पर फेरने लगी।

युवराज के ओंठ खुले; परन्तु आवाज न आई। मीराँ ने शीघ्र उसके सूखते हुए कंठ में गंगाजल डाला।

हजारों वर्षों का ताप मानो अखंड हिमालय में अदृश्य हो गया। मीराँ के हाथ मे से अमृत की शतशः धाराएँ फूटकर युवराज के मस्तक-मार्ग से

आकर सिर धुनती हुई बैठ गईं, परन्तु कुछ क्षण पूर्व बोलनेवाला और अब अनबोल हुए पति को मीराँ देखती रही। शान्तिपूर्वक वह खडी हुई और पलंग के पास आकर पति के चरणों मे उसने अपना मस्तक रख दिया। स्त्रियों का रोना-धोना तीव्र हो उठा। मीराँ ठिठककर महल से बाहर दौडी और गिरिधारी के पास आकर सिर धुनती हुई निश्चेष्ट होकर धम्म से गिर पडी।

थोडी देर बाद उसे भान होते ही उसने गिरिधारी के चरण जोर से पकड लिये और उन्हें हिलाती-डुलाती हुई आर्त्तनाद से रो पडी:

"बता निर्दय ! बता। एक बार बोल। जवाब दे, तू ने इनके हृदय मे इतना प्रेम कैसे पैदा किया—और दिया तो वह प्रेम मेरे लिए ही क्यों ? बोल निर्मम ! इन्हीं को प्रेम देना था तो मेरा प्रेम तूने क्यों अपने पास खींच लिया ? मेरा हृदय क्यों खाली कर दिया ? क्यों ? कैसे ? मनुष्य के हृदय में इतना प्रेम सींचकर तू इसे कैसे दुःखी करता है ?

बोल गोविंद ! एक बार बोल ! एक बार बोल...निष्ठुर...निष्ठुर।"

कहते कहते मीराँ पुनः बेसुध हो गई और गिरिधारी के चरणों में ढल गई।

तो भी गिरिधारी हँसता रहा : सदा की तरह।

जीवन दुःख नहीं....

"बस ?"

गिरीधारी खिलखिलाकर हँसता हुआ बोला।

"मुझे तेरी रीत पसन्द नहीं।"

आश्चर्य से देखती हुई मीराँ ने गुस्सा रोक कर कहा।

"कह दे न मैं ही पसन्द नहीं!" मुँह नीचा करके प्यासी आँखों से देखते हुए कन्हैया ने पूछा।

"कहा तो नहीं पर कहना पड़ेगा।" मीराँ झुँझलाते हुए बोली।

"तो कह दे—चला जाऊँ!"

"तुझे किसी ने नहीं कहा कह देखूँ ?—शर्म नहीं आती"

शर्म ? किसकी ?"

"किसी का हृदय छीन लेना और फिर उचित अनुचित पूछना। मनुष्य की निर्बलता उसका हृदय है। यह न हो तो संसार में दुःख ही न रहे।"

कालिन्दी के तीर पर, इन्दिरा और नलिनी कमलिनियों को पैर से दबा कर भ्रमरों के गुँजार और किलकिल बहते पानी में नन्हीं नन्हीं छलाँगें मारती हुई मछलियों के धमाके; रत्नमणिमंडित सुवर्ण-वलयों वाले कोमल हाथों को अपने कानों में जाते हुए रोककर, क्रोध और तापों से तप्त हुई प्रेम-विधुरा मीराँ, कमर पर हाथ रक्खे कदम्ब वृक्ष के नीचे प्यासी आँखों से और बाँकी अदा से खड़े हुए हँसते गिरधारी की तरफ से नज़र फिराकर बोली।

अनिमेष नेत्रों से देखनेवाला कन्हैया फिर मीराँ के पास आया और उसके रत्नकंकणयुक्त हाथों को कान पर से उठाकर अपने हाथों में दबा कर बोला—

"हृदय मनुष्य की निर्बलता है या उसकी शक्ति इसे मनुष्य में पाई जाने वाली मानवता दिखा देती है। सखी, किसी का भी हृदय किसी के ताबे मे रहता है ?—और रक्खा है तो कितनी बार ? कितने अनर्थों को भोगकर ?"

"मेरे हृदय पर से भार कैसे हट गया ?"

रत्नमय कंकणों से चमकते हुए हाथों को अधखुली छाती पर दबाते हुए आश्चर्य से कन्हैया को देखती हुई मीराँ धीरे से बोल पड़ी।

"झूठी !" कन्हैया खड़ा होते होते बोला।

"कैसे ?" मीराँ ने ऐसे ही आश्चर्य से पूछा।

"कहती थी न कि तेरा हृदय मैंने ले लिया है ? तो फिर भार हृदय पर ही कैसे आया और कैसे हट गया ? तेरा हृदय तो तेरे पास ही है।"

"बातूनी !" मीराँ व्यंग करती हुई उसके साथ चलते चलते बोली।

"पागल !"

मीराँ प्रत्युत्तर में जरा हँस दी और फिर गंभीर होकर कुछेक कदम चलकर एकाएक ठहर गई। कन्हैया को दोनों हाथों से पकड लिया और एक शिला पर बैठाकर फिर गंभीर होते हुए आर्जवपूर्ण कंठ से कहने लगी :—

"मैं क्या करूँ गोविन्द ? जीवन का अन्धकार मेरी आँखों के आगे पथराने लगा है। घृणा और तिरस्कार, क्रोध और वहम के चीत्कार इन अन्धकार के पर्दों को भेदते हुए सुन पड़ते हैं। दुःख और निराशा विकराल स्वरूप बनाये मुझ पर चढ़े आ रहे हैं। धर्मद्रोहियों और विधर्मियों की भीषण लीला के बीच प्रज्वलित अत्याचार और अनाचार चारों दिशाओं को घेरने लगे हैं। दुःख ! दुःख !! और दुःख !!! जीवन इतना दुःखी क्यों है गोविन्द ?"

"जीवन दु ख नहीं तपस्या है सखी ! तपस्वी को तो ठंड और तडका, भूख और प्यास, सब सहना होता है, क्रोध या ईर्षा, ताडन या छेदन, स्वीकार करने ही पड़ते हैं। जो इन दु·खों को दु ख नहीं गिनता. सहन ही किए जाता है वही है तपस्वी। तपस्या का अन्त इस आनन्द की पराकाष्ठा है। तब तुझे जीवन दुःख नहीं जान पडेगा। निराशा से घृणा या दु.ख का दमन ये कुछ भी नहीं रहते, दु.ख को दु·ख न समझ। जीवन को जीवन समझकर बिता।"

"किस तरह ?"

"बिना कारण 'हृदय' को खो बैठे हुओं के मनको निर्मल प्रेम से हरा भरा कर—सखी, जीवन को जीवित कर।"

"बिना कारण निर्दोष युवकों के हृदय विदारक मरण के बीच जीवन को जीवित बनाऊँ ?"

"मरण ? पागल हो ? ! किसका मरण ? तपस्या में से च्युत होना मरण नहीं—पुनर्जन्म है। तपस्या में से मुक्त होना ही परमानन्द है। पुनर्जीवन के लिए शोक कैसा ?"

कृष्ण ने इस प्रकार प्रवचन किया। मीराँ एकटक गिरीधारी को देखती रही। गिरिधर गोपाल अगर किसी दिन गंभीर हुआ हो तो वह आज ही। 'सयानो' बात किसी दिन की होगी तो वह आज पहली ही बार। मरण को यह पगला कन्हैया पुनर्जन्म कह रहा है ? बुझते हुए दीपक के अति भयंकर शोले उसने हंसा माँ की मृत्यु के आसपास उतरे हुए देखे थे। अनेक सुख दुःख का अन्तिम नाट्य करती हुई मृत्यु स्त्री को और पुरुष को उनके गुप्त रहे स्वरूप में प्रगट कर देती है। पति की पत्नी या पत्नी का पति इन दो अंगों में से एक अंग मृत्यु प्राप्त करते हुए दूसरे आधे अंग के रूप में अपने असली स्वरूप में आता है और उस समय सुख की अपेक्षा दुःख मे ही वह अधिक तड़पता है। जीवन का करुण अन्त ही दीखती हुई मृत्यु पुनर्जन्म है ? "मृत्यु यानी जीवन ? जीवन यानी मृत्यु ?"

मीराँ इतना कह कर कृष्ण के सामने देखती रही। मनमोहन के मन-मोहक मुख को देखते हुए मृत्यु का विचार करना निरर्थक था; परन्तु मीराँ विचार करती रही।

महान् समर्थ वीरो की जन्मभूमि मेवाड जहाँ क्षत्रियों के और सिंहों के बालक पराक्रम पीते ही पैदा होते, जहाँ स्वदेशप्रेम, स्वाभिमान और पराक्रम के लिए वीरोंने मृत्यु की कीमत बिल्कुल निर्जीव बना दी थी; जिसके रणक्षेत्रों मे स्वर्ग की अप्सरायें वीरों का स्वागत करने के लिए दिव्य सुमन माल लेकर और गीध, सियार दुश्मनों और देशद्रोहियों के कलेजे फाड़ खाने को संगी साथियों के साथ आठों पहर आतुरता पूर्वक खडे रहते; जिसकी प्रजा कलाबद्ध और शक्ति के उन्नत स्थान पर पहुँची थी; जिसके राजवंश की पराक्रम गाथाएँ भाट चारण और कवि पंडित गण दिग्दिगंतों मे प्रसारित करते थे, ऐसे मेवाड़ की वह युवराज्ञी थी भावी महारानी थी, तो भी पति की मृत्यु ने उसकी कैसी स्थिति कर दी थी ?

विवाह हुए आधा दशक भी नहीं बीता; परन्तु पति और ससुर जैसे दो चार अपवादों के सिवाय समस्त राजकुटुम्ब उससे अलग रहता है। कोई चाहता नहीं, कोई बोलता नहीं। अगर कोई बोलता भी है तो अपने हृदय में जमा हुआ ज़हर बाहर निकालने के लिए। माँ नहीं। बाप भाई हैं पर वे दूर, इतने दूर कि न होने के समान। थे एक दादा--किन्तु वे थे, अब नहीं। इस वर्ष मृत्यु ने पति को ग्रसा। पिछले वर्ष उसके अत्यन्त प्रिय दादा को।

मृत्यु ने यह किया और इससे भी अधिक किया। मीराँ मेवाड़ के भावी राणा को सुखी न कर सकी और मेवाड़ के भावि वारिस से वंचित रह कर मेवाड़ की प्रजा को सुखी न रख सकी।

मृत्यु ने मीराँ को एकाकी बना छोड़ा। ऐसी मृत्यु को वह पुनर्जन्म कह सके? तो भी यह कन्हैया उसे समझा रहा है कि पुनर्जन्म के लिए शोक कैसा ?

मीराँ, इसी लिए कन्हैया को देखती रही।

परन्तु मीराँ की आँखो को पढ़ता हुआ कन्हैया इतना कहकर रुका नहीं और कहने लगा.—

"सखी, जीवन और पुनर्जन्म है परमानन्द प्राप्ति की तपस्या। इसलिए, जा, सखी जा। जीवनको जी। जो मरते हैं वे परमानन्द के लिए ही या पुनर्जन्म के लिए ही। इसमे शोक कैसा? निराशा कैसी? कोई मरता नहीं। सब जीते हैं, परन्तु जीना नही आता। जीवन जीता जाता है हृदय से और हृदय जीता है केवल एक प्रेमसे। अनन्त, स्वच्छ, चिरंजीव और सर्वपाय विमोचन प्रेम से। सखी! जा। जड बने हुए हृदयों को जाग्रत कर... जी और जिला। उठ, जाग्रत हो,.... "

"खड़ा रह कन्हैया,"

इतना कहकर खड़े हुए कन्हैया को जोर से पकड़ा रखकर भरे साँस मीराँ बोलने लगी:—

"आज तूने जो कहा है वह पहले किसी दिन नहीं कहा। जिस तरह पेटको चीरकर भगवती वसुन्धरा तेज का अंबार बिखेरते हुए अकल्पनीय रत्न बाँटती है, उसी तरह ऊपर से कुछ और भीतर से कुछ और ही दीखनेवाले अकल्पनीय रत्न तू बिखेरता जाता है और मैं उनके तेज मे चौंधियाती हुई, अबोध की तरह धरती के पत्थर और पत्थरमे रहने वाले रत्नों का भेद नहीं पा सकती! न जा सखे! जरा ठहर। आज मुझे बहुत कुछ पूछना है, बहुत कुछ सुनना है। मेरे हृदय के तार किस स्पन्दन से झनझना रहे हैं— नहीं जान पड़ता। रक्तशिरायें क्यों कर धड़क रही है नहीं समझ पड़ता। मन चक्कर पर चढ़ा है। चक्षु समक्ष रंगबिरंगी दृश्यावलियाँ क्षितिज में से निकल कर अन्तरिक्ष में अदृश्य होती जा रही हैं। तेरे रहते भी नहीं देखतीं। मै हूँ तो भी नहीं जीती ...मुझे क्या हो गया है ओ मेरे गिरिधारी! मैं कौन हूँ? कैसी हूँ? बोल सखे! बोल!!"

सखा न बोला। उल्टा मीराँ का हाथ तेजीसे मरोड़ कर कन्हैया भागने लगा। भगते भगते मीराँ की तरफ मुँह फिराकर आँखोंकी एक मटकन और

अधरों की एक मीठी मुस्कान फेंककर वह और ज्यादा दौड़ने लगा। रत्न जटित कंकणों और सुवर्ण गुँथे हुए कीमती वस्त्रों की परवाह किये बिना मीराँ भरेसाँस कन्हैया के पीछे हुई—विनय करती हुई और चीखती हुई।

"न भाग, कन्हैया! अब तू बालक नहीं है और मैं बालक की तरह दौड़ने लायक नहीं हूँ। मेरी सारी शक्तियाँ क्षीण हो गई हैं। मेरा जी भारी है। असीम आकाश और अनन्त पृथ्वी मेरे समक्ष मूक भयप्रेरक, पथरा रहे हैं। पशु, पक्षी, लतावीरुध, पुष्प कोई कुछ कहते नहीं, मूक! मूक!! समस्त मूक!!! मत भाग सखे! अदृश्य मत हो। मैं सच कहती हूँ—मुझे तेरी जरूरत है—सखे! गोविंद! गिरिधारी! मैं क्या करूँ? मैं क्या करूँ!—कन्हैया! कन्हैया!! कन्हैया!!!"

आर्त्तनाद करती मीराँ कृष्ण के पीछे सुध बुध भूलकर, समस्त शक्तियाँ एकत्र कर गिरती, ठोकर खाती, हाँफती दौड़ने लगी—आखिर चक्राकार दौड़ती हुई मीराँ एकाएक उस विशाल कदम्ब की तरफ दौड़ी और एक करारी ठोकर लगते ही चीख कर गिर पड़ी।

"ओ माँ! ओ माँ! ओ माँ! चक्कर खाकर गिरी हुई मीराँ होश आने पर धीरे धीरे गुनगुनाने लगी। श्वास शान्त नहीं हुआ था। म्लान मुख पर दुःख और दुःखजन्य आँसू उभर आए थे। मीराँ ने धीरे से आँखें खोली तो उसकी सबसे पहली दृष्टि अपने हाथपर पड़ी। रत्नजड़ित सुवर्ण कंकण गायब थे। सोने के बाजूबन्द और हीराकंठी अदृश्य थे। केश थे, परन्तु सुगन्धित तैल पुष्प विहीनसूखे। पूरे शरीर पर एक सफेद साड़ी डरती डरती उसके शरीर को संभाल रही थी।

मीराँ को पूर्ण रूप से सुध आई। वह विधवा हुई थी और विधवा हुए आज महीना हुआ था।

उसके मस्तिष्क में अभी भनक गूँज रही थी....जीवन तपस्या है। जीवन जी। प्रेम से जिला।

प्रेम ?

मतलब ?

मीराँ ने इसी भाव से पीठ पीछे देखा। समस्त राजकुटुम्ब से दुतकारी हुई, माँ के समान एक दूर की विधवा भाभी उसकी पीठ पर बहुत प्रेमार्द्र हाथ फेरती हुई उसके पास बैठी हुई थी। विधवा के सहानुभूति भरे मुखको मीराँ कुछ देर देखती रही। हँसाबाई की झाँकी उसे इसके मुख में प्रतीत हुई। शान्ति से उसने पुनः गिरिधारीलाल की तरफ देखा।

गिरिधारी, वही, सदा की तरह, हँसता था। मीराँ उसे एकटक देखने लगी। धीरे धीरे वह हँसते गिरिधारी के मुँह की तरफ अधिक से अधिक नदीक आई। उसके श्वासोच्छ्वास की गति बढने लगी........उसकी आँखो से आँसू झरने लगे उसके ओंठ काँपने लगे......

माई म्हाँरी हरिजी न बूझी बात।
पिंड माँ सूँ प्राण पापी
निकस क्यूँ नहि जात॥

गिरिधारी जवाब से हँसता रहा।
मीराँ उसकी आँखों के और निकट आई और व्याकुल होकर कहने लगी:-

पट न खोल्या मुखाँ न बोल्या
साँझ भई परभात।
अबोलणाँ जुग बीतण लाग्यो
काहे कीं कुशलात॥

कन्हैया हँसता रहा।
'सावण आवण होय रह्यो रे
नहिं आवण की बात।
रैण अंधेरी बिजली चमके

तारा गिणत निशि जात ॥

नन्दकुमार न बोला, हँसता रहा ।

सुपनाँ माँ हरि दरस दीन्हो
मैं न जाण्यूँ हरि जात।
नैन म्हाँरा उघड आया
रही मन पछतात ॥

नटखट हँसता रहा ।

ले कटारी कंठ चीरूँ
करूँगी अपघात ।
मीराँ व्याकुल विरहणी रे
बाल ज्यूँ बिललात ॥

गोविंद हँसता रहा। धमकी न मानी । मीराँ थक गई । इसी तरह पुन कहते-कहते, गाते-गाते मीराँ भगवान् के चरणों में लेट गई—पड़ी रही ।

★

कुलघातिनी

गया, सर्वस्व गया।

शौर्य गया, जोश गया, उदारता और दिलावरी गई, वृद्ध गये, जवान भी गये। जिनकी शक्ति से डरकर मुग़ल सिंह बाबर सन्धि करने के लिए तैयार हुआ था वह, अस्सी अस्सी घावों से अपने शरीर को दीस करने वाला पराक्रमीसिंह राणा साँगा इहलोक छोड गया था। परम वैष्णव दूदाजी गये और साथही उनके पुत्र रत्नसिंह और धीरमसिंह भी गये थे। मेवाड का युवराज गया था और उसीके साथ छोटा भाई रत्नसिंह भी।

अन्तिम तीन वर्षों मे बहुत कुछ गया था। नही, जब से मीराँ का सौभाग्य गया था तब से मेवाड और मारवाड़ मे से बहुत कुछ चला गया था। बाबर के साथ रणक्षेत्र मे जूझने के बाद राणा साँगा वापस चित्तौड नहीं आया था। आऊँगा तो विजयी होकर आऊँगा, अन्यथा नहीं, ऐसा कठोर प्रण लेने वाले राणा साँगा ने चित्तौड़ के बाहर बनैले स्थान पर ही प्राण विसर्जन किया। साँगा के पराक्रम से पस्त मुग़ल चित्तौड पर नहीं चढे; परन्तु पराजित * गुजरात का सुलतान, चित्तौड को भस्मीभूत करने के लिए आँख गड़ाये

---

* इब्राहिम पूर्व दिशा नहि उलटे, पच्छिम मुदाफर न दे पयाण।
दखणी महमद शाह न दौड़े, सॉगा दामण महुँ सुरताण॥

पूरब मे इब्राहिम, पश्चिम में मुजफ्फर, दक्षिण में मुहम्मदशाह इन तीनों के पैर राणा सॉगा ने बॉध दिया था ताकि वे आगे न बढ़ सकें।

तैयार था। मालवा का सुलतान भी साँगा की दी हुई हार को भूला नहीं था। भोज गये थे। रत्न भी गया था। इसलिए सीसोदिया की गद्दी पर विक्रमसिंह जब श्री एकलिंगजी का दीवान बन कर आया तो उसे इन तैयार दुश्मनों का सामना करने के लिए सावधानी रखनी पड़ी।

परन्तु जानेवालों के साथ सभी कुछ जाने लगा था शौर्य, वीरता, उदारता, सभी...जो जो सद्‌गुण साँगाजी और युवराज भोज मे थे उनसे विपरीत दुर्गुण नये राणा विक्रम मे भरे हुए थे। दुर्गुण खुशामद को लाते है या खुशामद दुर्गुणो को लाती है यह कहना कठिन है, परन्तु विक्रम को दोनो ही प्रिय थे। राजमहल मे विक्रम के कार्य सबको उभाडते थे।

बड़े भाई रत्नसिंह के सामने अनेक प्रकार के छलकपट और अत्याचार करके गद्दी पर बैठा हुआ विक्रम अपने छोटे भाई, (साँगाजी का सबसे छोटा पुत्र) उदयसिंह पर भी अच्छी दृष्टि नहीं रखता था। जब कि उदयसिंह अभी दूध पीता बच्चा था, परन्तु वह बच्चा साँगा जैसे सिंह का था, यह बात विक्रम जानता था और इसीसे भविष्य मे अपने और राजगद्दी के बीच में वह आ पड़ेगा इसका उसे बहुत गुप्त भय रहता था।

राणा विक्रम में एक और भयंकर दोष था। राजपूत सैनिक अधिकाँश घुडसवार होते हैं पैदल सैनिकों का इतना मान नहीं। ऊँची श्रेणी के सरदार पैदल नहीं आते; परन्तु विक्रम ने मुसलमानों की देखादेखी हलके पाइकों ÷ को ऊँचा पद देकर अपने आसपास खुशामदियो की एक जमात खड़ी की। इससे विक्रम ने ऐसे चन्दावत और शक्तावत जैसे अन्य सामन्तो से गुप्त परन्तु सख्त तिरस्कार पैदा करा लिया। जिनके शौर्य पर मेवाड़ का राजसिंहासन अचल था।

राणाजी को तीसरी उपाधि थी अपनी समस्त पुत्रविहीना रानियों की। एक भी रानी ने उनका वंश उजागर करने के लिए पुत्र नहीं दिया था।

÷ पैदल सिपाही।

इस लिए,

महल और दरबार में स्थायी असन्तोष रहता था। स्वच्छन्द और स्वेच्छाचारी विक्रम धीरे धीरे जानवरों के द्वन्द्वयुद्ध और जानवरों जैसे पहलवानो के मल्लयुद्ध मे समय बिताने लगा। फलस्वरूप, सीसोदिया राजवंश जी तो रहा था, किन्तु निस्तेज बनकर। मेवाड की धरती पर सचमुच आफत आई थी। प्रजा की अरुचि और असन्तोष क्रमशः बढ़ते जाते थे और फैलते जाते थे। सच्चे सरदार राणा से दूर रहने लगे। निम्न कोटि के पाइके झूठे सरदार बनने लगे। इस लिए राणा पराक्रमी होकर भी कूपमण्डूक की तरह खुशामदियों की फैलाई हुई अपनी झूठी वीरता में मस्त होकर कुमार्ग पर बढता ही गया।

और, उसे इस कुमार्ग पर, अनजाने ही, परन्तु तेज गति से उसे खींच रही थी उसकी सगी बहिन ऊदा।

दो महीनो से ऊदा पीहर आई है। ससुराल पसन्द नहीं यह बात नहीं, परन्तु ससुराल में किसी के साथ पटती नहीं। उच्च खानदान की कुमारी के आगे ससुरालवाले विशेष बोलते भी नहीं। क्रोध और गुमान में जिन्दा रहने वाली ऊदा, रिसाकर पीहर आई है और राणा की चहेती बहिन होने के कारण जो चलाती है वही चलता है।

राजमहल में राणा की बेचैनी बढ़ने पर ऊदा उनके पास दौडी आती है। राजमहल के बाहर नया पुरोहित दयाराम पांडे उसके विभ्रमित मस्तक को उकसाने के लिए नीचा मस्तक किए खड़ा ही रहता है।

ससुराल न जानेवाली सयानी मूर्खों को सीख देती है न? सयानी ऊदा आज मूर्ख विक्रम को सीख देने के लिए प्रवृत्त हुई है।

"क्या हुआ है लोगों को? चन्दावत, शक्तावत, सांगावत आते नहीं? पूछता हूँ तो बोलते नहीं और नहीं पूछता हूँ तो भीतर ही भीतर बड़बड़ाते हैं।"

विक्रम ने अकुलाते हुए ऊदा को क्रोध मे पूछा।

"वे बोलें ही न!" मानो विक्रम को उकसाने का निश्चय किया हो इस तरह के भरे कटाक्ष से भाई के पास बैठी पान लगाती हुई ऊदा बोली।

"भाई, बोलनेवालों के पास कोई जीभ न हो यह बात नहीं है। ये मेवाड के सबसे बडे सामन्त है। उनके पास इज़्ज़त है। नमकहलाली है। राजगद्दी के लिए मर मिटने की तमन्ना है। तब आपके मुँह पर बुरा कौन कहे?"

"क्यो न कहें? मै कहता हूँ कहे। आज्ञा करता हूँ कि कहे—चाहे जैसा विषय होगा तो भी मैं सहन करूँगा। प्रजा और सामन्तो से मैं उज्वल हूँ। उनकी इज़्ज़त मेरी इज़्ज़त है। क्या दुःख है इनको? उन्हे तू बुला ऊदा!"

"उनको आपके पास बुलाने की क्या जरूरत है? मुझे आज्ञा करें मैं कहूँगी।"

"कह।" राणा आतुर होकर बोला। फिर तिरस्कार भरा हास्य मुँह पर लाकर सिर को तकिये पर ढालते हुए बोला, "सरदार यही कहते हैं न कि पाइके सभा मे क्यों भरने लगे हैं? परन्तु राणा के लिए प्राण देने को तत्पर रहनेवाले योद्धाओं का सीसोदिया राजवंश ने प्राण देकर भी सत्कार किया है।"

"यह बात नहीं।" ऊदा दाँत भींचकर दृढ़ता से बोली।

"तो फिर?" राणा फिर बैठते हुए बोला। उसकी कौतूहलवृत्ति बढ़ी थी। सामन्तों की ताकत वह जानता था और इस कारण उनसे सख़्त नफ़रत होते हुए भी भीतर भीतर वह उनसे भय खाता था। उनकी बेदिली का तो कोई और कारण था? वह आश्चर्य मे पान का बीड़ा देती हुई ऊदा को देखता रहा। ऊदा ने पान का बीडा लेते हुए भाई की तरफ दृष्टि उठाये देखा और कुछ आगे खिसकती हुई बोली :—

"लोग कहते हैं कि मेवाड़ पर कुदरत का कोप कैसे होने लगा है?

मेवाड के दुश्मनों का पासा कैसे पौबारह हो रहा है ? दाँतों तले तिनका लेने वाले सुलतान कैसे खूँखार बनकर खडे हो रहे हैं ?"

"कैसे खडे हो रहे हैं ?"

"विचारो। अच्छे अच्छे मान्धाताओं का मान उतारने वाले पिताजी कैसे राजगद्दी पर वापस न आये ? कैसे एकदम रणबंके सरदार उड गये ? मेवाड़ के राजवंशी पुरुष कैसे घटने लगे है ? कैसे मेवाड़ की राजरानियों की गोदें खाली हैं ? किसकी चरणरज राजमहल के राजवंश को निमूँल करने लगी हैं ?"

"किसकी चरणरज ?" मुँह में पान ज्यों का त्यो रक्खे एकदम विक्रम बोला।

"मीराँ की—मीराँ भाभी की। मीराँ भगतानी की। गोविन्द गिरिधारी की चरणरज से। नटिनी मीराँ की..."

कहती कहती वह विक्रम के आगे तक बढ़ आई, परन्तु अभी वह उस वाक्य को पूरा करती अथवा विक्रम ओंठ फडफड़ाता इससे पूर्व ही तम्बूरे के तार झनझना उठे और एकाएक असंख्य मंजीर, एक नहीं, दस नहीं, असंख्य, तालबद्ध काँप उठे।

ऊदा भी काँप उठी।

राणा खड़ा हो गया। क्या है ? क्या हो रहा है ?

ऊदा ने जोर से विक्रम का हाथ पकड़ा और दाँत भींचती हुई बोली—"कौन हैं ये ?"

"यही तो पूछता हूँ—कौन हैं ?" विक्रम ने आश्चर्य से पूछा।

"लफंगे लुटेरे, अलमस्त फकीर—गन्दे भिखारी जिनको कोई रोटी का टुकड़ा भी नहीं डालता उन्हीं को मीराँ एकत्र करती है। भक्तिन बाई बनी बैठी मीराँ भाभी के पास से धन लूटने में भी भगवाँ कपडे पहनने की जरूरत है भाई।" ऊदा क्रोध से बोली।

परन्तु उसके क्रोध के साथ साथ मंजीरों, तंबूरों और मृदंग की धुन बढने लगी। जैसे कि ऊदा के क्रोध को अपनी लय में कम कर के, डुबा देने के इच्छुक हों। परन्तु ऊदा विकराला थी। ईश्वर जाने किस हेतु से, किस विशेष कारण से ऊदा ने मीराँ के विरुद्ध जहरीली वृत्ति बनाई थी? जिस तरह कोई अगम्य शक्ति पुरुष को किसी कार्य की तरफ अविरत खींचती रहती है वैसे ही मीराँ के बिना अपराध बिना बोले ऊदा को कोई उसके विरुद्ध खींचता रहता था। मीराँ के लिए क्रोध, घृणा और तिरस्कार उसकी रग रग मे समाया था। उसे बहिर्गत करने के लिए आज अच्छा अवसर मिला। वह ऊँची आवाज में विक्रम का हाथ खींचते हुए कहने लगी।

"यह है आपकी भाभी मीराँ। न भाव, न मान। दिन-प्रतिदिन नए नए साधु आते जाते हैं। राजमहल महल न रहकर धूर्त ढोंगियो का अड्डा बनने लगा है और आज देश देश से मृतपति की संवत्सरी मनाने के लिए पति परायणा मीराँ ने साधु, बाबा और वैरागियों को निमंत्रण दिया है। क्या ठाठ है! क्या मस्ती है! चित्तौड के महाराणा को पता नहीं; परन्तु महाराणा के महल में अलमस्त जोगी बेखटके इकट्ठे होते हैं और उन सबकी अधिष्ठात्री बनी है, मेवाड का राजवंश उजागर करने को उत्पन्न हुई मेडतीजी मीराँबाई।"

"बोलो श्री गिरिधारीलालजी की जय।"

भजनीकों की राजमहल का कोना-कोना भर देने वाली आवाज आई। राणा काँप उठा।

ऊदा कहती कहती काँप उठी। राणा मुँह फाडे ऊदा को देखता रहा। अपने सामन्त केवल इतने के लिए ही उकसे हुए थे? स्वयं उनकी नजरों मे खराब नहीं था। स्वयं भला है यह बात? ऊदा को अवाक् खड़े विक्रम के वर्तन से संतोष न हुआ। क्रोध मे विक्रम को झरोखे की तरफ खींच लाई और नीचे चौगान की तरफ हाथ करके बोली—"आओ देखो। मेवाड़ का काल—मेवाड़ का पतन देखना है? तो देख लो। वह रही—पति को खाने वाली, कुल को खाने वाली, माता पिता को भखने वाली, गिरिधारी का नाम

ले कर उच्छृंखल बनने वाली कुलघातिनी मीराँ।" इसी समय मीराँ की मादक गंभीर ध्वनि सुनाई दी :—

बाला मैं बैरागण हूँगी।

"सुनते है, दीवानजी ? ऊदा अट्टहास करती हुई बोली।

मीराँ मधुर आवाज़ मे गाती रही :—

बाला मैं बैरागण हूँगी।
जिन भेषाँ म्हारो साहब रीझे,
सोई भेष धरूँगी॥

सील सन्तोष धरूँ घट भीतर, समता पकड रहूँगी।
जाको नाम निरंजन कहिए, ताको ध्यान धरूँगी॥

गुरु के ज्ञान रँगूँ तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूँगी।
प्रेम प्रीत स्यूँ हरि गुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी॥

या तन की मैं करूँ कींगरी, रसना नाम कहूँगी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, साधाँ संग रहूँगी॥

'साधाँ सँग रहूँगी ?'

राणा विक्रम दूसरी बार काँपा।

भजन और अधिक जोर पकड़ने लगा !

मंजीरे और पखावज को भेद कर मीराँ की आवाज़ राणा का हृदय बींधने लगी। वह अधिक देर न ठहर सका। पैर उठा कर राणा झरोखे से पीठ फिरा कर चलने लगा और सीधा चौगान में आ खड़ा हुआ।

आ खड़ा हुआ और पुन. काँप उठा। सामने मन्दिर के समक्ष भजन की बढ़ती हुई धुन में और साथ साथ एकतान मे उछलती ऊर्मियो के वश हो

कर मीरां खड़ी हुई और पैर के ठुमके तथा हाथ के लटके से गिरिधारी को देख कर नाचने लगी।

नाचने ? हाँ नाचने। हरि प्रेमी भक्त भजनीक भजन की धुन मे रँग चुके थे। प्रत्येक के हृदय में एक तान, एक शब्द, एक धुन झनझना रही थी। जिसके प्रभाव मे समस्त सत्संगी आसपास को भूल कर एक मन हुए और उनकी प्रतीक रूप सबके बीच मे, भगवान् कृष्ण के समक्ष मीराँ...

नाचने लगी।

मेवाड़ के महाराणा का इससे भीषण अपमान कोई हो सकता है ? बैठे हुए एक एक साधु उन्हे यवनों जैसे जान पड़े। गाते हुए एक एक भक्त उन्हे दुश्मन जैसे जान पड़े। दाँत पीसकर वे अपने हाथ से एक एक को पकड़ कर दूर फेंकने लगे और फिर सबको डरा देने जैसी गर्जना की।

"बन्द करो—बन्द कर दो—बन्द कर दो।"

थोड़ी ही देर में मंजीरे नीचे खनखना उठे। तंबूरो के तार अन्तिम झनझनाहट कर स्थिर हुए और समस्त साधु जमात हाथ जोड़ कर राणा की तरफ स्तब्ध हुई देखती रही।

राणा की आँखों मे से आग बरस रही थी। ठीक उनके सामने उनको देखती हुई मीराँ खड़ी थी।

मीराँ की आँखों में से अमृत झर रहा था।

मीराँ खड़ी थी—शान्त, स्वस्थ।

उकसाया हुआ राणा शिकार पर झपट्टा मारने को जाते हुए बाघ की तरह आँखें खींचे खड़ा था। मीराँ ने मृदुवाणी से कहा :

"पधारिये दीवानजी ! हमारे अहो भाग्य......"

"दीवानजी ?"

राणा गरजा, "महान् वीरों और दुर्गों को एक करने वाले दीवानजी के

राजमहल मे लुच्चे-लफंगे ताने आलापें और उनके सामने राजकुल की एक समय की लचमी परम पवित्र वैधव्य धर्म फेंक कर निर्लज्ज हो नाचने लगे और तो भी मैं दीवानजी ? मेरी आत्महत्या करानेका अच्छा रास्ता ढूँढ़ा है भाभी ! मेवाडी राजवंश के आत्म गौरव को नष्ट करनेका इससे बढिया मार्ग दूसरा एक भी नही—धन्य है भाभी !"

'आप क्या कहते हैं ?" इतना कह कर मीराँ दंग हो देखती रही। राजमहल मे छूट से भक्ति करने की आज्ञा तो उन्होंने ही दी थी। दान, पुण्य करने के लिए जो कुछ मँगाती उसमे राणा ने जरा भी विरोध नही दिखाया। राजमहल की सारी स्त्रियों ने मीराँ के विरुद्ध एक शब्द भी नही कहा था—तो फिर ?

"सीसोदिया को हाथ से छुए बिना ही मार डालना हो तो उसे हलके लोगों के सामने हलका बना देना।" दाँत कटकटाकर विक्रम कहने लगा: आपने मुझे एक दम हलका बना दिया भाभी, अब मुझे आत्महत्या करने को प्रेरित करती हो।"

क्रोध में उत्तेजित होता हुआ राणा कहने लगा।

"भाई—राणाजी ! ऐसा अशुभ मत बोलो !" मीराँ व्याकुल होकर दौडती हुई विक्रम के पास आई उसका मुँह बन्द करती हुई बोली। राणा एक कदम पीछे हट गया। यह देखे बिना मीराँ विनय करती हुई कहने लगी, "गोविन्द की भक्ति करना कोई हलका काम है—भाई ?"

"नहीं। तलवार पकडने वाली मेवाड़ की राजपूतनी हाथ में तम्बूरा पकडे और इज्जत प्राप्त करने के बदले मंजीरा लेकर धूर्त साधुओं के बीच नाचे यह राजकुल के गौरव को ऊँचा चढ़ाने वाला होगा ?"

मीराँ विक्रम के क्रोध को न समझी। प्रभु भक्ति में कुलगौरव को नीचे गिराना कैसा ?

विक्रम मीराँ को न समझा। राजपूतनी का साधुओं के सामने नाचना कैसा ?

मीराँ सरल हृदय से कहने लगी, "राणाजी ! हरिभक्ति मे ऊँचा ही चढ़ा जाता है।"

"परन्तु आपकी भक्ति से मै नीचे गिरता हूँ—मेरी आँखो मे, अपनी प्रजा की आँखों में, दुनिया की आँखो मे।"

भक्ति के जोश में चढ़ी हुई मीराँ अभी भी न समझी। विक्रम को समझाने के लिए बहुत मधुर शब्दो में जरा और नजदीक आकर कहने लगी: "दीवान जी, अधिक कारण मन है। प्रेम से सबको देखो। कोई पराया नहीं दीखेगा। भावसे भगवान् को भजो सारे मनुष्य भले ही जान पड़ेगे। कोई हलका नही। कोई धूर्त नहीं। सब एक हैं। सबका भगवान् एक है। आओ, यहाँ आओ और थोडी देर इन भगवान् के चरणो मे बैठो।"

"नहीं......" राणाने फिर गर्जना की और तितर-बितर हो कर कोने खचूने मे छिपते हुए निर्दोष भक्त एकदम रुकते हुए काँप उठे।

"मैं नहीं और कोई भी नहीं। आप भी नहीं भाभी, मेरी आज्ञा है कि आज से आप अथवा कोई......"

"ना ..ना। राणाजी ! आज्ञा न दें।" मीराँ एकदम आर्त्तनाद करती हुई उसे आगे बोलने से रोककर बोली।

मीराँ का आर्तनाद सुनकर विक्रम चौंक उठा। मन्दिर का दरवाज़ा बन्द करने को आगे बढ़ते हुए उसके पैरों के सामने से मीराँ ने दौडकर कुचलाते तम्बूरे को झट उठा लिया...बाजू मे पड़े हुए मंजीरे एकदम ले लिए और राजा की आज्ञा से काँपे हुई मीराँ कभी विक्रम को और कभी कृष्ण को देखती हुई गाने लगी.

राणाजी म्हैं तो गोविन्दका गुण गास्याँ।
चरणामृत को नेम हमारें, नितउठ दरसण जास्याँ।।

हरिमन्दिर मे निरत करास्याँ घूँघरिया घमकास्याँ।
रामनाम का झाँझ चलास्याँ, भवसागर तिर जास्याँ।।
यह संसार बाड़ का काँटा ज्या संगत नहि जास्याँ।
मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर निरख परख गुण गास्याँ।।

अन्तिम पंक्ति गाते गाते मीराँ हँसते प्रभु के मुख को गद्‌गद्‌ होकर देखती रही।

राणा का गुस्सा रुका; परन्तु मिटा नहीं। विक्रम नहीं समझा। उससे क्रोध और घृणा भगवान् के सामने भी नहीं त्यागी गई। वाणी और मुख पर कठोरता रखकर मेवाड़ का महाराणा दाँत कटकटा कर बोला—

"भाभी, मैं राजपूत हूँ। सीसोदिया हूँ। भगवान् एकलिंग जी का दीवान हूँ। मेरा धर्म है तलवार पकड कर प्रजा का रक्षण करना—तम्बूरा लेकर नाचने का नहीं। आज से इस राजमहल में मुझे पूछे बिना एक भी साधु नहीं आ सकता।"

राणा ने आज्ञा फरमा ही दी। अश्रुपूरित नेत्र और विनयपूर्ण वाणी से मीराँ विक्रम की ओर देख कर बोली, "राणाजी!"

"बस! यह मन्दिर इन हरएक 'भगतड़ों' के लिए बन्द!"

"ऐसी कठोर आज्ञा न करो राणाजी!" मीराँ खड़ी होते हुए विनय करने लगी, "साधु सन्तों से मन्दिर को वंचित न—करो। घोर अपराध होगा! पाप होगा!"

"और आपका नाचना पुण्य होगा? आप चाहे जैसे परन्तु राजपूतनी—शर्म है!"

"शर्म?" मीराँ आँसू पोंछे विना चकित आँखों से विक्रम को देखती रह कर बोली।

"लाखबार..." पीछे की ओर से आगे बढ कर आती हुई ऊदा बोली

और भाई का हाथ खींच कर अतिशय क्रोध में चलने लगी । परन्तु अभी तो पीठ फिराकर दोनों जने चार कदम ही चले होंगे कि इसी बीच तो आवाज़ आई ।

श्री गिरधर आगे नाचूँगी ।

दोनो ठहर गये और पीछे फिर कर देखने लगे । भागते हुए 'भगत' कोने खचूने से सिर निकालकर देखने लगे । मीराँ के मंजीर मधुर रुनझुन करते हुए ताल बद्ध बजने लगे । उनके जवाब मे किसी कोने से छिपी पखावज बोली । मन्दिर के पिछावाडे से झालर बजी—कहीं से करताल गूँजी—शंख ध्वनि फूँकी गई—और मीराँ प्रेमावेश मे डोलने लगी :—

श्री गिरधर आगे नाचूँगी ।
नाच नाच पिव रसिक रिझाऊँ प्रेमी जन कूँ जाँचूँगी ।
प्रेम प्रीत का बाँध घूँघरू सुरत की कछनी काछूँगी ॥
लोकलाज कुल की मरजादा या मैं एक न राखूँगी ।
पिव के पलंगाँ जा पौढूँगी मीराँ हरि-रंग राँचूँगी ॥

राणा और उदा नाचती हुई मीराँ को पलभर आश्चर्य से देखते रहे । मीराँ की आँख के आँसू सूख गये थे । मुँह पर निश्चलता और एक प्रकार की निश्चिन्तता छाई थी । गाते गाते और नाचते नाचते मीराँ नृत्य के बाद भगवान् के द्वार पर बैठ गई ।

राणा न समझा । न ही समझा ।

मीराँ के पास आकर राणा उन्माद में बोला, "नाचने वाली भाभी ! अब अन्तिम बार नाच चुकीं, समझ लो ! आज से यह मन्दिर बन्द है । बाहर के लिए और भीतर के लिए ।"

"मै आपको मन्दिर बन्द नहीं करने दूँगी ।"

विद्युत् वेग से खड़ी होकर राणाजी को पकड़ती हुई मीराँ बोली—मीराँ उन्मत्त दिखाई देती थी । विक्रम डिगा नहीं । गहरी आवाज़ में, आँख

की पलक हिलाए बिना, मीराँ की आँख पर आँख गड़ाये वह दृढ़ता से बोला· "मैं तुम्हे यहाँ खड़ा नही रहने दूँगा और ज़्यादा करोगी तो इस मन्दिर को तुड़वा दूँगा।"

"राणाजी!" मीराँ ने एक हलकी चीख निकाली।

"हाँ तुड़वा दूँगा।" जिसके कारण मेरा कुल लज्जित हो वह मन्दिर, मन्दिर नही पाप का धाम है!"

"गोविन्द! गोविन्द। न बोलो राणाजी, न बोलो।"

"आज से यह मन्दिर तुम त्याग दो।"

"क्या कह रहे हैं राणाजी?"

"आज्ञा है—मेरी। राणा की।"

"पूजा के बिना मैं जीऊँगी कैसे?"

"पूजा गोविन्द की करनी है कि मन्दिर की?"

"परन्तु यह आपके बड़े भाई का......"

"मृतात्मा की ओट लेना छोड़ो भाभी। जिन्दा रहते जिन्हें रिझाना नहीं जाना उनकी मृतात्मा को रिझा सकोगी? भाभी, व्यर्थ के भगवाँ पहननेवाले भिखारियो के बीच नाचे बिना अकेली नाचो तो क्या बाधा है?"

"है। मेरे है।" ऊदा बीच मे बोल उठी। "महल मे नाचेगी तो सारे अन्त·पुर को नचायेगी—राजमहल मे से ही निकाल बाहर करो दीवानजी। यह गोविद गिरधारी की राधा रोग है। जिसको छुएगी उसीको रोगी बनाएगी। धीरे धीरे सारा राजकुटुम्ब इसके रंग मे रँग गया है—जादूगर है यह मेड़तीजी। डायन है। ससुर को खाया, सास को खाया, पति को खाया, पिता को खाया, माता को खाया, अब आपकी बारी आई है। समय रहते चेत जाओ दीवानजी! भाभी भक्त नहीं, दुश्मनों का भेजा हुआ मनुष्य रूपी भयंकर हलाहल है। इसे शीघ्र दूर करो नहीं तो राजकुल सहित सारे राज्य का नाश करेगी—धूल में धूल बना छोड़ेगी सर्वस्व को।"

पाताल मे रहनेवाले वासुकियो के फुंकार भी इतने ज़हरीले नही होते। हृदय का सारा विष वमन करने के बाद ऊदा ने मीराँ की तरफ देखा और आगे बोलने से रुक गई। विक्रम भी चौंककर देखता रहा।

ऊदा के अविरत, असह्य शब्दप्रवाह मे मीराँ कभी की बेसुध होकर गिर पडी थी। मीराँ अगर सचमुच दुःखी थी तो आज—एकाकी थी तो आजही।

जैसे कुछ याद हो आया हो इस तरह ऊदा कुछ देर देखकर दौडती हुई घुटनो के बल बैठी और मीराँ का हाथ उठाकर नाडी देखने लगी। विक्रम जरा नीचे झुककर ऊदा से पूछने लगा—"कुछ हुआ तो नहीं ?"

"हो जाता तो अच्छा था—यह जग हँसाई तो नही देखनी पडती !" मीराँ का हाथ नीचे डालकर खडी होती ऊदा बोली। "यह तो राधिका को जरा चक्कर आया है—अरे ! भूल गई, समाधि चढी है।"

"परन्तु इसे यहाँ से......"

"अरे खेल है खेल ! तमाशा। पिघलो मत भैया ! इस 'भगतडी' को अब मुख्य राजमहल मे न रक्खो।"

"तो फिर ?" उलझन मे पडता हुआ राणा बोला।

"साधु भिखारियो के साथ भजन गा-गाकर भूत तो हो गई है। डालो भूतिया महल में इसे और इसके गोविद को। नाचेगी, गायेगी और मरना होगा तो मरेगी।"

इतना कहकर ऊदा ने तिरस्कारपूर्वक बेहोश मीराँ के मुँह की तरफ देखा और आवाज़ धीमी करती हुई बोली, "कुलघातिनी—बला।"

एकाएक उसकी नज़र वहाँ से हटकर मन्दिरवाले कृष्ण की ओर गई।

मीराँ के गिरिधारी की तरह यह कृष्ण भी हँसता था—सदा की तरह। विक्रम की तरफ, मीराँ की तरफ, ऊदा की तरफ, और—

अँधेरे मे छिपे बैठे उन कुछेक 'भगतों' की तरफ।

●

भूतिया महल में

"रोज इस समय किसी के साथ बातें करती है।" नई दासी ने घबराते घबराते कहा। दाँत और ओठ भींचे विक्रम सोने के झूले पर बैठा हुआ चुपचाप सुन रहा था। उसने कनखियों से दयाराम पांडे की तरफ़ देखा। पांडे ने सिर हिलाते-हिलाते कहा, "बात तो ठीक है हुजूर! कल मैंने भी मीराँबाई को किसीके साथ बातें करते सुना था!"

"देखा भाई?" विक्रम के पास अभी तक चुपचाप बैठी हुई खून की प्यासी ऊदा बोल उठी: "भूतिया महल के भूतों को भी खागई यह डायन—जरूर कोई कीमिया इसके पास है। छः छः महीनों से विचार करती हूँ कि 'भगतड़ी' को कैसे कुछ होता नहीं? अभी तक खुल्लमखुल्ला सबके साथ रहना था इसलिए बाईसाहिबा को मद्दा कठिनाई थी, अब जिस पर रुचि थी वही वैद्य ने बतला दिया। एकान्त मिला है—किसीका आना न जाना। कोई मनपसन्द भगत ढूँढ निकाला है और आनन्द करती है।"

"एक महीना और इस तरह बीतेगा, तो यह औरत मुझे पागल बना देगी।"

विक्रम झूले से उतर कर इधर उधर टहलता हुआ कहने लगा, "सुबह शाम शान्ति मे रहती है। एक बार भी किसी के सामने विरोध नहीं दिखाया। न माँगती है न बोलती है। जो दे दो वही लेती है, न दो तो उसका आग्रह नहीं करती। कल भोजन नहीं गया तो भूखी रही। आज मिष्टान्न भेजे तो इन्कार नहीं किया। मैं कहता हूं यह औरत मुझे पागल बनाकर छोड़ेगी।"

के भक्त प्रजा मे बढने लगे थे। भूतिया महल मे रहने के बाद भी अभी मीराँबाई जीवित हैं इस बातने साधु-सत्संगियो और प्रजाजनों के हृदय को शान्तिपूर्वक श्रद्धा और भक्ति से भर दिया था। अनेकश चमत्कारपूर्ण बातें प्रजाजनो मे सुन पडती थी। फलस्वरुप महाराणा की कठोर जब्ती के होते हुए भी गिरिधारी और मीराँ एक न एक प्रकार से चित्तौडवासियो और अन्य मेवाडियो की जीभ पर रमने लगे थे। इसका असर महाराणा के मन पर ऐसा वैसा नही था। ऊदा के अन्तिम वाक्य ने उसके हृदय की गुप्त आग को एकदम भडका दिया। सबकी अकल ठिकाने आ जाय इस तरह वह चिल्लाकर बोला—

"बस ऊदा—खबरदार आगे बोली तो।"

इतना कहकर विक्रम पागल की तरह खडा हुआ और दीवाल पर लटकती राजवंशी तलवार को क्रोध से खींचकर, आवाज़ न होने देने का ध्यान रखते हुए तेजी से भूतिया महल की तरफ़ चलने लगा। ऊदा और दयाराम पांडे घबराकर कुछ फासला छोड पीछे पीछे चलने लगे।

भूतिया महल विशाल राजमहल का एक भाग था, परन्तु गाँव में चमारों की बस्ती का जो स्थान होता है वही स्थान भूतिया महल का था। अब कृपा प्राप्त या बहुत निम्नकोटि के दासदासी किसी किसी दिन दोपहर मे इस महल के आगे के भाग मे खा-पका लेते थे परन्तु रात मे उधर से कोई नहीं निकलता था। वहम था कि महल के भूत रहनेवाले को खा जाते है। भूतिया महल का नाम सब कोई मज़ाक से ले लेते, परन्तु वहाँ जाना पड जाता तो हरेक के दिल में तर्क, कुशंका और घबराहट हुए बिना नहीं रहती थी।

भाभी के चरित्र पर शंका करनेवाला राणा अत्यंत क्रोध मे था—और नंगी तलवार उसके हाथ में थी इसलिए उसे भान न रहा; परन्तु ऊदा और पांडे भूतो के स्मरण से धक् धक् करती छाती से चलने लगे।

राणा भूतिया महल के द्वार पर आ पहुँचा। उसका आगमन ऐसा अचानक था कि पन्ना, काशी चौंककर झुकतीं या कुछ कहतीं इससे पूर्व ही

राणा ने काशी के मुँह पर हाथ रखकर पन्ना को चुप रहने का इशारा किया। दोनों दासियों के पैर घबराहट से काँपने लगे। राणा जलती आँखों से, अन्य दासियों को चुप रहने का संकेत करता हुआ देखता रहा और फिर धीरे से, धीमे धीमे महल के भीतर मीराँ के पूजावाले स्थान की तरफ बढ़ा। एक दालान, दूसरा दालान, तीसरे के पास आते आते उसके पैर रुक गए। भूत के डर से नहीं। किसी के साथ मीराँ के वार्तालाप से। सचमुच, मीराँ बातचीत कर रही थी। उसकी आवाज़ में अति निकटता, प्रेम का अत्यंत आवेश और ऊर्मि स्पष्ट जान पड रहे थे। मीराँ गद्गद् कंठ से बोल रही थी—

"विनती करती करती हारी, क्रोध करते करते थक गई, परन्तु तू जरा भी मानता नहीं—बता, कह दे क्या करूँ जो तू रीझे मेरे नाथ ?"

"मेरे नाथ !" विक्रम दाँत पीसकर बडबडाया। उसका हृदय मीराँ के इस दुष्ट नाथ का मुंह देखने को तडप रहा था। उसके हाथ इस नाथ की गरदन दबाने को व्याकुल होने लगे। उसने कान देकर यह सुनने के लिए दीवाल पर सिर लगाया कि देखें मीरों का यार क्या कहता है। परन्तु मीराँ का यार ऐसा कच्चा न था जो जवाब दे देता।

"कह दे ! क्या करूँ जो तू रीझे ?" पुनः मीराँ ने विनय की।

उस जिद्दी ने जवाब न दिया। विक्रम ने पैर की एडियाँ ऊँची करके और कान दिया।

"मै तुझ से कहलाये बिना नही रहूँगी—मेरा यह दृढ़ निश्चय है। मुझे इतना ही जानना है कि क्या करूँ जो तेरे मधुर मोहक शब्द मुझे हमेशा आनन्द देते हुए सुन पड़ें? अब तो कई दशक बीत गये। बोल सखे ! बोल—एक बार बोल—एक ही बार मुझे कह दे मेरे प्रभु, मेरे नाथ ! तू मुझसे क्या माँगता है ?" लगभग रोती हुई आवाज में मीराँ बोली।

"तेरी मौत ....." विक्रम अग्निशिखा की तरह आँखें दिखाते हुए भीतर घुसकर मीराँ से बोला, "और इसे मै दूँगा, अभी। खडा रह जहाँ है वहीं।"

"पधारो राणाजी—क्या है ?" मीराँ ने शीघ्र खड़े होकर दरवाजे मे छाती निकालकर खड़े हुए विक्रम को पूछा।

विक्रम आँखें फाड़े मीराँ की तरफ देख रहा था। आदमी गायब था और उसके बदले लगातार वह नटखट गिरिधारी उसके सामने देख रहा था। विक्रम ने लम्बे लम्बे डग भरते हुए आसपास देखा ऊपर नीचे देखा और फिर क्रोधी आँखो से मीराँ को तरफ देखकर पूछा, "कहाँ गया वह कुत्ता ? बाहर निकल हरामखोर !"

"आप किसको कह रहे हैं ?" मीराँ ने विस्मित होकर निर्दोष भाव से पूछा।

"किसको ? तेरे प्रभु को—तेरे नाथ को—तेरे उस यार को !"

मीराँ आश्चर्य मे कुछ बोल नहीं सकी।

राणा मीराँ पर झपटा। उसके भिंचे हुए दाँतों की कटकटाहट मीराँ ने अच्छी तरह सुनी।

"कैसे चुप हुई परम वैष्णव। कहाँ है वह नीच ! मुझे उसका मुँह देखना है—देखूँ तो सही कि मेवाड़ के युवराज की अपेक्षा वह कितना सुन्दर और कितना प्रतापी है ? बता दो कहाँ छिपाया है उसे—वह कौन है।"

मीराँ का निर्दोष भाव निर्दोष हास्य मे बदल गया। एक कदम आगे बढ़कर वह गिरिधारी की मूर्ति के पास गई और बोली "यह रहा वह !"

विक्रम ने अपनी वैराग्नि से जलती आँखें गिरिधारी की तरफ घुमाईं। गिरिधारी इस समय उसे अधिक हँसता हुआ जान पड़ा। वहम मे उसकी कल्पना तेज हो गई। अतिशय क्रोध मे उसकी साँस चढ़ी हुई थी। वह निश्चल होकर मीराँ से पूछने लगा। "तुम बातें करती थी भाभी ! कौन था ? किसके साथ बातें हो रही थीं ?"

"इस नटखट के साथ।" मीराँ ने मुख पर स्मित कायम रखते हुए कहा।

"पत्थर के साथ बातें नही होती, भाभी !" तिरस्कार में राणा बोला।

"प्रार्थना जरूर होती है, राणाजी !" मीराँ ने उसी स्मित से कहा, "मैं प्रार्थना करती थी।"

जिस तरह असंख्य जीवों को एक ही स्पर्श से भस्मीभूत कर डालने वाला कोई महान् ज्वालामुखी मुँह न मिलने से फटता नहीं और पृथ्वी के गर्भ मे अन्दर ही अन्दर प्रचण्ड ताप से भडभडाता रहता है वही स्थिति विक्रम की हो गई। उसका सिर चकराने लगा। उसे एक एक खंभा, एक एक कोना किसी सुन्दर युवक वाला दीख पडने लगा, परन्तु उसका भ्रम शीघ्र ही दूर हो गया। उसे गुस्से को दबाकर रखना पडा। फिर वह निराश किन्तु काँपते हुए शरीर से, वाणी धीमी करके कहने लगा, "भाभी, एक बात की हम दोनों समझ रखते है। हम दोनों आग और घी हैं जिनका धर्म एक जगह होते ही भड़कने का है। मुझे चैन नहीं, सुख नहीं, आशा नहीं—मुझे केवल एक महल को नहीं सारे मेवाड को सुनाना है। मुझे जरा शान्ति लेने दो।"

"भाई अगर यहाँ शान्ति मिलती हो तो खुशी से यहाँ पधारें—अहो-भाग्य ? आओ—यहीं पधारो। मुझसे राणाजी की जैसी सेवा बनेगी मैं करूँगी—गिरिधारी के चरण मे आपको ज़रूर शान्ति प्राप्त होगी।

विक्रम कुछ भी न बोला।

ज्वालामुखी फट नहीं रहा था परन्तु उसे भीतर ही भीतर अधिक सुलगा रहा था। मीराँ की हिमालय-सी शान्ति और निर्दोष हास्य ने उसे क्रोधोन्मत्त बना दिया। कुछ देर तो वह हाँफता हुआ मीराँ को देखता रहा और फिर एकाएक मुँह फिरा कर चलने लगा। पीछे आई हुई ऊदा ने तिर-स्कार मे दोनों हथेलियाँ जोड़कर नमस्कार किया और पांडे को लेकर चलने लगी। जाते जाते उसने देख लिया कि गिरिधारी और मीराँ दोनों उसे हँस रहे थे।

"बाई राणाजी बहुत रूठे हुए हैं।"

सबके चले जाने पर डरती डरती काशी बोल उठी—मीराँ केवल द्वार की ओर देख रही थीं।

"बहुत रूठे हैं, बाई !" पन्ना ने भी पास आकर धीरे से कहा, "हद-बेहद रूठे है, बाई।" काशी फिर बोली। मीराँ चुपचाप नीचे बैठी और गिरिधारी के सामने रक्खे हुए दीवट की बत्ती ठीक करती हुई काशी पन्ना के शब्दों को याद कर मोहिनी मूरत गिरिधारी की तरफ़ देखती रही, फिर मुस्कराते हुए बोली—

सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हाँरो काँई कर लेसी,
म्हे तो गुण गोविंदा का गास्याँ हो माई ॥

एक ही क्षण मे शब्द पूर्ण रूप से गीत मे बदल गये। पास पडा हुआ तम्बूरा और मंजीर ले कर मीराँ गाने लगी

राणोजी रूठ्यो वाँरो देस रखासी
हरी रूठ्या कठै जास्याँ हो माई ॥
लोक लाज की काँण न माँनाँ
निरभै निसाण घुरास्याँ हो माई ॥
राम नाम की ज्यांझ चलास्याँ
भौ सागर तिर जास्याँ हो माई ॥
मीराँ सरण साँवल गिरधर की
चरण कमल लिपटास्याँ हो माई ॥

रात की नीरव शान्ति में मीराँ का भजन अधिक स्पष्ट होकर हवा में गूँजता था। महल का लगभग प्रत्येक व्यक्ति दूर से आते हुए मीराँबाई के मीठे सुर मे मग्न हो गया। न हुआ अकेला विक्रम।

शयन मन्दिर में आकर उसने तलवार फेंक दी। पास आती हुई रानी को उसने धक्का मार कर बिठा दिया। दूर दूर से आती हुई मीराँ की सुरावली से वह अधिकाधिक उन्मत्त बना जा रहा था। रानी सब कुछ जानती थी। चुप रही। ऊदा अपने स्थान कोही चली गई और दयाराम पांडे ने घरका रास्ता

पकडा।

राणा बेचैन रहा। जहाँ तक मीराँ का भजन चला वहाँ तक घायल हुए बाघ की तरह वह महल मे घूमता रहा। आखिर, मीराँ का भजन बन्द हुआ।

हाँफता हुआ विक्रम भी अन्त में बैठा। रानी उसका दिमाग़ शान्त करने के प्रयत्न करने लगी। अपने कपाल पर फिरते हुए रानी के हलके हाथका राणा ने विरोध नहीं किया......परन्तु उसके हृदय की अशान्ति जरा भी कम न हुई . ...।

पहर बीत गये परन्तु विक्रम को चैन न मिला। जब से साधु-सन्त मीराँमन्दिर मे आने लगे, जबसे मीराँ बाई की अनेक बातें शतसहस्र जीभों से चमत्कारों के रूप मे सुनाई पडने लगीं, जब से मीराँ—गिरिधारी के नाम के ऊर्मिगीत मीराँ के ओठों से फैल कर दासियाँ और विधवा भाभी इत्यादि द्वारा बाहर के लोगो में मुँह मुँह से गाये जाने लगे, तब से उसके हरेक श्वासोच्छ्वास में मीराँ का नाम डंक देने लगा। उसे कभी कभी ऐसा महसूस होता मानो हजारों मुँह उसके सामने देख कर हँस रहे है—उसको ठिठोली करते है, उसे धिक्कारते है। राजदरबार मे बैठे बैठे, भोजनगृह में खाते-खाते, शयन-मन्दिर मे सोते सोते ये ही मुँह खिलखिला कर हँसते हुए उसके कान बहिरे करने लगे। उसकी बुद्धि कुण्ठित होने लगी। उसकी दृष्टि ओछी होने लगी। और वह यहाँ तक कि मात्र ऊदा और दयाराम पांडे को ही वह देख पाता।

विक्रम का परिवर्त्तन वेग से होने लगा—मात्र एक मीराँ के विचार से। और इस परिवर्त्तन मे सामन्तों को मेवाड़ के पतन की झाँकी होने लगी। राज-दरबार मे से ऊब कर राणा हलके लोगो के हलके आनन्द विनोद मे भाग लेने लगा—उसका उद्देश्य दिमाग में घूमती हुई मीराँ को भुलाने का था, परन्तु ज्यो ज्यों वह इन लोगों मे अधिक आनन्द औग उत्साह दिखाता उतना ही वह महल में पैर रखते समय अशक्त और दुःखी हो जाता। सामन्तो मे उद्दण्डता और दुश्मनों में मेवाड़ पर चढ़ाई की भनक राणा की अस्थिरता का

कारण था और राणाजी की अस्थिरता का कारण मात्र मीराँ ही थी ऐसा निश्चयपूर्वक मानकर भाई की इज्ज़त को बनाए रखने के लिए ऊदा ने मीराँ को हमेशा के लिए दूरकर देने का प्राणप्रण से प्रतिज्ञा की।

एक दिन राज्य के जंजालों से थककर सोये हुए विक्रम के पास ऊदा ख़ुशी से उमगती हुई आ पहुंची। उसने उत्साह से ऊँची साँस के साथ विक्रम के कान में कुछ शब्द कहे। राणा स्तब्ध हो गया। थोड़ी देर विचारपूर्वक ऊदा की तरफ़ देखा और फिर दयाराम पांडे को बुला भेजा। उन्होंने उत्साह को जरा भी कम किये बिना पांडे के हाथ मे फूलो के हार की एक सुन्दर चन्दन से बनी हुई सन्दूकची दी और कान में कुछ गुनगुनाई। पांडे चलता बना। ऊदा ने कठोर होकर राणा का हाथ दबाये रक्खा। राणा से न रहा गया। पांडे के चले जाने पर उसने आतुरता से पूछा,

"परन्तु मुझे तो बता ऊदा, मीराँ भाभी कैसे रास्ते पर आ जायगी ?"

"मैंने ऐसे कहा कि रास्ते पर आ जायगी ? नहीं, रास्ते लग जायगी।"

"ऊदा !" विक्रम खड़ा होकर बोल उठा।

"कोई ख़ास बात नहीं," ऊदा हँसती हुई बोली, "फूलो का सुन्दर बड़ा हार है। अन्दर केवड़े के बारीक साँप हैं। डसेंगे तो शीघ्र प्राण लेंगे। कहा जायगा कि फूलो मे पड़े हुए साँपों ने प्राण लिया और नहीं मरेगी तो विश्वास पक्का हो जायगा कि यह सचमुच डायन है और इसकी सद्गति करने का कोई दूसरा पुण्यकार्य करना पड़ेगा।"

संध्या आरती हो रही थी। भूतिया महल का डर सभी के मन से थोड़ा बहुत मिट चुका था, परन्तु पांडे घबराता घबराता ही आया और मीरांबाई के सामने सन्दूकची रखकर बोला : "बाई, राणाजी ने प्रभु के लिए भेंट भिजवाई है !"

"राणाजी ने ?" मीराँ ने सहज हर्ष से पूछा। उसने शीघ्र ही चन्दन की सन्दूकची ले ली और गिरिधारी की तरफ़ घूमकर बोली, "नाथ ? तूने

उनको सद्बुद्धि दी......तूने मेरी प्रार्थना स्वीकार की ! उनके हृदय मे तेरे प्रति प्रेम जाग्रत हुआ...तेरी भक्ति मे डूबे। स्वीकार कर प्रभु इन मेवाड़ के राणा का प्रेमोपहार।" इतना कह कर हर्षाश्रु से उसने सन्दूकची खोली और गृहखंड को सुवास से भर देने वाला हार निकालकर गिरिधारी के गले मे डाला।

"बापरे !"

पांडे ने हार की तरफ़ देखकर कलेजा कँपा देनेवाली चीख निकाली और द्वार के बाहर दौडते दौडते शोर किया, "साँप...साँप...साँप।"

"बहिनजी, खड़ी हो जाइये।" काशी चिल्लाई।

मीराँ चौंकी। गिरिधारी के गले में पड़े हुए हार मे से दो छोटे-छोटे साँप त्वरित गति से मूर्ति पर से उतर कर उसके पैर के पीछे अदृश्य हो गये। दूसरे तीन सन्दूकची मे से निकलकर दीवाल की तरफ दौड़ने लगे। उनमें से एक मीराँ की गोद में चढ़ा।

"बाई...बाई..." पद्मा ठूँठ की तरह होती हुई बोली। केवड़े का साँप वह परख गई थी; परन्तु मीराँ हँसते हँसते मुँह देखती रही। मंजीरे हाथ से न रक्खे। तम्बूरा जमीन से उठा लिया और बोली, "तुम किसीको सताना मत। बाहर जाकर खड़ी रहो। जानेवालों को रोको मत। आनेवालों को सताओ मत। यह तो कन्हैया की लीला है।"

इतना कहकर धीरे से उन्होंने मंजीर और तम्बूरा छेडा...साँप थोड़ी देर गोद में पड़ा रहा। फिर धीरे से उतर कर गिरिधर के चरण मे मीराँ की तरफ फन करके डोलने लगा—धीरे धीरे, मीराँ के साथ, मीराँ की धुन मे।

पद्मा और काशी प्राण कंठों में लिए देखती रहीं; परन्तु साँप को अधिक देर ठहरना ठीक नहीं लगा, भगवान् के सामने बैठते समय मीराँ के मुख पर अद्भुत कान्ति आ जाती थी। उसका मुँह हास्यमय ही रहता और नटखट गिरिधारी तो हँसता ही था।

मीराँ तन्मय होकर गिरिधारी के हँसते मुख को देखती हुई गा रही थी:

पिया, तैं कहाँ गयौ नेहरा लगाय ।
छाँड़ि गयौ अब कहाँ बिसासी, प्रेम की बाती बराय ।
बिरह-समँद में छाँडि गयो, पिव, नेह की नाव चलाय ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तुम बिन रह्यो न जाय ।।

दूसरे दिन सारे चित्तौड मे फूल और साँप की बात वायुवेग से फैल गई और लोग काँप उठे । कौन चंडाल भगवती के प्राणों पीछे घूमने लगा ? किसी ने कहा हार का साँप हो गया, किसी ने कहा साँप का हार हो गया । कोई वैष्णवी कहने लगीं कि ये तो भगवान् बाई के साथ खेल रहे थे । परन्तु लगभग हरेक व्यक्ति हृदय में गाँठ बाँधे बैठा था कि यह राणाजी का कृत्य होना चाहिए और मीराँबाई के चमत्कार से साँप भाग गये । हुआ भी ऐसा ही । साँप मीराँबाई के भूतिया आवास में नहीं दीख पड़े ।

थोड़े ही दिनों मे दरबार में बात पहुँची कि साँप का हार हो गया और हरेक ने इसे स्वीकार किया । परन्तु राणा से गुप्त रूप में होनेवाली यह बात पांडे द्वारा उसके कान में आये बिना न रही । वास्तव मे साँप की झूठी सच्ची बात सबसे अधिक फैलाने वाला पांडे ही था ।

राणा का आवेश बढ़ गया । उसे कदम कदम पर मानहानि होती जान पडी । अपमान और ग़मगीनी में वह तड़फने लगा । स्वप्न मे उसे मीराँ दीखने लगी । जाग्रति में उसे मीराँ की भनक गूँजती जान पड़ने लगी । उसके दाँतों का अन्न के साथ बैर होने लगा । उसकी आँखों को ऐश आराम जहर की तरह लगा । राणा भीतर ही भीतर शरम और घृणा से पसीजने लगा । मेवाड़ की कोई रानी मीराँ जैसी बेवक़ूफ़ नहीं बनी थी । मेवाड़ का कोई राणा किसी राज कुटुम्बी से विक्रम जैसे अपमानित नहीं हुआ । एक एक करके सारी स्त्रियाँ

मीराँ की प्रेमभक्ति मे रंग गई थीं। शुद्ध पतिव्रत धर्मी, एक समय की जड़ किन्तु इस समय की सबसे चतुर दीखने वाली पटरानी भी मीराँ के प्रेम मे हार चुकी थी। सारे राजमहल में ऊदा और विक्रम के सिवाय सब के दिलों मे गहरा और गहरा मीराँ के प्रति प्रेम छलक रहा था।

जिस कुल में पालने से ही तलवार और बलिदान के पाठ सीखे जाते हैं वहाँ मंजीरे और नृत्य गूँजें तो अवधि ही आजाती है न!

मीराँ, मीराँ, और मीराँ!

राणा का चित्त अस्थिर तो था, और अस्थिर होने लगा। उदा और पटरानी को चिन्ता होने लगी। धीरे धीरे राणा ने निश्चय कर लिया राजमहल में या तो मीराँ नहीं या वह नहीं। तभी उसकी आत्मा को शान्ति मिलेगी। मीराँ बाई पीहर जाने से इन्कार करतीं थीं, ससुराल में रहना पोसाता नहीं था और राणा का दिमाग़ बिगड़ने लगा था। समस्या आ पड़ी थी। कोई रास्ता नहीं मिलता था।

"एक ही रस्ता है!"

एक दिन बहुत विचार में पड़े हुए राणा विक्रम को विचारों में गोता खाते खाते दयाराम पांडे ने कहा।

"कौन सा?" एकदम थके हुए पुरुष की आवाज़ में विक्रम बोला। घोर निराशा में भी उसने आशा को एकदम नहीं छोड़ा था। पुरोहित ने हाथ जोड़कर आँखे बारीक बनाते हुए बहुत धीमी आवाज़ में कहा:

"अन्नदाता! स्त्री ने अपने आपको नष्ट करने के लिए दो रास्ते ढूँढ निकाले हैं। जल मरना या ज़हर खाना। भगवान् की भक्ति में ओतप्रोत हुई बाई देखने में जीती हुई भी मरी हुई है। क्या करें? अगर सिसोदिया कुल की इज़्ज़त का ख़ास प्रश्न न होता तो..."

कहते कहते पांडे रुक गया। फिर विक्रम की तरफ़ सूचक भाव से

देखता रहा और स्मित करते हुए बोला, "मेवाड़ के राजकुल की तरफ़ ऊँगलियाँ उठाये सारा राजस्थान आज हँस रहा है।"

"सती होने का तो प्रश्न ही नहीं" चुपचाप बैठी हुई ऊदा ने आगे खिसक कर बात पूरी करते हुये कहा और भाई के पास बैठती हुई बोली,

"परन्तु हाँ, ज़हर पी ले तो सब शमन हो जाय।"

"परन्तु राजी ख़ुशी से पिये तब न ?" विक्रम ने नीरस भाव से कहा।

"नहीं पियेगी तो पिलाऊँगी। इज़्ज़त के लिए, कुल के लिए, इसके और अपने सुख के लिए।"

"बात तो बुरी नहीं।" विक्रम बहुत दिनों से रसपूर्वक कहने लगा।

"चुड़ैल मार डालने के ही काम की है भाई ! कितने महीनों से आपको कहती हूँ।"

"चुड़ैल मार डालने के ही काम की है।" विक्रम ने ऊदा के शब्द दुहराये।

"कहती हूँ न—ज़हर दो। मैं दूँगी।"

"तू ऊदा ?" विक्रम आश्चर्य से उसकी तरफ़ देखता रहा और फिर थोड़ी देर ठहर कर बोला।

"किस तरह ? और अगर सबको मालूम हो गया तो..."

"मालूम होने ही क्यों देंगे ? मै, आप और पुरोहित तीन जने ही जानते है।"

"ठीक है !" राणा ने अनुमति दी।

"कल शिवरात्रि है।" ऊदा आनन्द मे नाच उठती हुई कहने लगी—राणा को उसी समय सबसे बड़ा त्यौहार याद आया। "ज़हर पी जानेवाले नीलकंठ श्री एकलिंगजी के नाम मैं ख़ुद ज़हर का कटोरा चरणामृत वाला करके दे आऊँगी।"

विक्रम ऊदा की तरफ़ देखता रहा।

दूसरे दिन शिवरात्रि थी। एकलिंगजी का माहात्म्य सारे मेवाड़ में ऐसा वैसा नहीं था। एकलिंगजी का दीवान राणा, बहुत उत्साहपूर्वक एकलिंगजी की पूजा करने लगा। उस दिन प्रातःकाल ऊदा अँधेरे अँधेरे उठी। पांडे के साथ महल के बाहर एक मदारिन को खास तौर पर बुलाया गया। उसके पास तरह-तरह के ज़हर थे जिनमे से तुरन्त प्राण हर ले ऐसे एक ज़हर वाली जड़ी और ज़हर विशेष लेकर ऊदा स्वयं उस औरत के पास खड़ी रही और एक शिला पर पिसवाया, साथ लाए हुए कुछ पत्तों का रस उसमे मिलाया और एक छोटी कटोरी में भराकर ऊदा स्वयं लेकर ऊपर आई।

थोड़ी ही देर में उसने पंचामृत तैयार कर दिया।

सवेरा हुआ और दिन चढ़ने लगा। एकलिंगजी स्वामी को प्रातः पूजा धूमधाम से सम्पन्न हुई। ऊदा ने कुछ समय बीतने दिया फिर हलाहल बने पंचामृत को एक सोने के कटोरे में भर कर पांडे को साथ ले भूतिया महल की तरफ़ चली।

प्रारंभ में तो ऊदा जोर से चलने लगी; परन्तु आधे रास्ते पर उसे मीराँ बाई का सुरीला स्वर भजन रूप में सुन पड़ा।

अभी तक ऊदा का मस्तिष्क पागल की तरह एक ही धुन से भरा था—ज़हर तैयार करके देना। अब उसका मस्तिष्क अन्य विचार करने लायक हुआ। उसे पहली बार भान हुआ कि लोगों में चमत्कारी कहलानेवाली एक कृष्णभक्त को वह ख़ुद मार डालने को चली थी; और ऐसे भक्त को कि जो हमेशा प्रेम से ही उसकी तरफ़ देखती थी।

कौन जाने क्यों एकाएक उसके पैर भारी हो गये—उसकी चाल धीमी हुई। ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ने लगी त्यों त्यों भजन स्पष्ट होई लगा :—

मीराँ रंग लाग्यो राम हरी, औरन रंग अटक परी।
चूड़ो म्हारे तिलक अरु माला, सील बरत सिंणगारो॥

और सिंणगार म्हारे दाय न आवे, यो गुरु ग्यान हमारो ।
कोई निन्दो कोई बन्दो म्हें तो गुण गोविन्द का गास्याँ ।।
जिण मारग म्हाँरा साध पधारे, उण मारग म्हें जास्याँ,
चोरी न करस्याँ जीव न सतास्याँ, काँई करसी म्हाँरो कोई ।
गज से उतरकर खर नहि चढ़स्याँ, या तो बात न होई ।।

एकाएक हुई व्याकुलता ऊदा को मसोसने लगी । भजन के शब्द स्पष्ट और उस गानेवाली का हृदय सरल और कंचन जैसा जान पड़ता था । चोरी करने को निकला हुआ कच्चा चोर, रास्ते चलते समय सामने मिलने वाले हरेक व्यक्ति के लिए यही कल्पना करता है कि वह उसीको देख रहा है ।

काम के निमित्त महल में घूमते-फिरते और सामने मिलते दास-दासियाँ विनयपूर्वक उसे बन्दना करके निकट से निकलते थे; परन्तु ऊदा को प्रतीत हुआ कि वे लोग यह जानकर उसके प्रति मन ही मन हँस रहे हैं कि इस कटोरे में क्या है ।

क्यों न हँसें ?

वे जानते थे कि वह उनकी मनपसन्द और उसकी भगवान्मयी भाभी को मार डालने के लिए जाती है । तभी तो हँसते हैं !

किसलिए न हँसे ?

ससुराल को बिसार कर वह पीहर मे बसी और अकेले पडे हुई भाई के अपने कल्पित अति दुःख में सहारा बनी । तो भी, राणा के दुःख निवारण के लिए जिन्हें काम करना ही चाहिए वे सब लोग बैठे हुए हैं और उनकी मुसीबत स्वय कैसे भोग रही है ? इस विचार से ही ये हँसते हों तो ?

मीराँ ने दूसरा भजन शुरू किया ।

हो जी हरी कित गये नेह लगाय ।।
नेह लगाय मेरो मन हर लीन्हो रसभरी टेर सुनाय ।
मेरे मन में ऐसी आवे मरूँ ज़हर विष खाय ।।

मरूँ ज़हर विष खाय ?

ऊदा सहम उठी। क्या मीराँ जान गई ? उसका हृदय कुछ देर को धडक उठा।

चोर का हृदय है न !

ऊदा का डग भरता हुआ चरण रुक गया। बहम मे उसे पुन विचार आये। स्वयं ही ज़हर देने को कैसे तैयार हुई ? राणा खुद ज़हर देने को क्यों नहीं तैयार हुए ? उनकी पटरानी क्यों कभी की पैर पीछे हटाकर बैठ गई ? पुरोहित कमर बाँध कर क्यो न आगे आया ? उसके मन मे अनेक कुशंकाए उत्पन्न होने लगीं। इन कुशंकाओं ने तीव्र स्वरूप पकडा। कठोर बनाकर रक्खा हुआ हृदय फिर हिलोरें लेने लगा..... काँपने लगा।

इतना ही नहीं, लोगो के समक्ष अपना पाप प्रकाशित करने के लिए ऊदा का चोर हृदय मानो उछल उछल कर बाहर आने लगा। इतने पर भी, हिम्मत इकट्ठी कर, अपने काँपते हुए पैरों को वह भूतिया महल तक तो खींच लाई; परन्तु मुख्य द्वार के सामने आते ही......उसके होश उड़ गये।

मीराँ बाई गा रही थी,

> छाँडि गये बिसवासघात करि नेह की नाव चढ़ाय।
> मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे रहे मधुपुरी छाय ॥

विश्वास घात ?

ऊदा के मस्तिष्क मे यह एक ही शब्द मन्दिर के घंटारव की तरह बजता रहा। विश्वास घात किसका ? किसने किया ? स्वयं किस तरह ? मीराँ निर्दोष थी ?

ऊदा का हृदय मानो उसके मस्तिष्क के साथ सारे आयुध लेकर एकदम टूट पड़ा। ऊदा घबराई हुई दरवाजे के पास जहाँ खड़ी थी वहीं चिपक गई। उसने पीछे पीछे आनेवाले पांडे को इशारे से बुलाया। दयाराम पांडे किसी

अपरिचित भय से काँपा, परन्तु ऊदा ने धीमी आवाज में ज़हर का कटोरा देते हुए दृढ़ता से कहा,

"जाओ, राणा का नाम लेकर तुम चरणामृत दे आओ।"

"हाँ, बाई!"

पुरोहित लड़खड़ाती जीभसे बोला और भीतर गया; परन्तु प्राण बाहर रख कर।

ऊदा शान्त होकर अपने मन को समझाने लगी; पति से लेकर पिता तक सब को मार डालने वाली अभागिनी को मारने में क्या पाप ? छिट्! सीसोदिया वंश की पवित्र स्त्रियों की मर्यादा डुबानेवाली मीराँ को मारने मे थरथराहट होनी ही नहीं चाहिए।

परन्तु वहीं क्यों मारे ?

पुनः उसे विचार आया। यह फ़र्ज़ तो महाराणी का था—राणा विक्रम की राणी का था। उसका नही। उसका हृदय फिर जोरसे कूदने लगा—बोलने लगा; पापी! चोर! हत्यारी! घातिनी! नीच! क्रूर! राक्षसी!

ऊदा को इन शब्दों की भनक से चक्कर आने लगे। जिस स्त्री के पति ने मृत्युशैय्या पर उससे क्षमा माँग कर हाथ जोड़े—जिसको पति ने पवित्र माना, उसे पापी मानने का ननद को क्या अधिकार था और पापी मानती थी तो मारने का क्या अधिकार ? कदाचित् मीराँ निर्दोष हो तो......?

उसका हृदय ग़म मे बैठ गया। ऊदा ने मन को विश्वास दिलाया कि मीराँ निर्दोष है......तो, तब फिर ?

उसके हाथ ढीले पड़ने लगे। उसके सिर पर पसीना आने लगा। उसकी कल्पना महल के भीतर मीराँ के पास जाते हुए पाँडे के पीछे पड़ी। वह मन ही मन कल्पना करके गिनने लगी; अब तक पांडे सौ कदम चला होगा। ठीक सौवे कदम में पुरोहित मीराँ के पास जा खड़ा हुआ होगा। ऊदा ने कल्पना को और तेज किया, भजन समाप्त हो गया है। दयाराम पांडे ने मीराँ के

सामने झूठा हास्य दिखा कर चरणामृत वाला हाथ लम्बा किया है। कर्म चाण्डाल हाथ को क्यों कँपाता है ? ऊदा अपना काँपता हुआ हाथ पकड़ती हुई—कल्पना की आँखों से देखते देखते बोली: मीराँ ने मुस्कारा कर कटोरा ले लिया। उसने एक-दो तुलसी पत्र डालकर गिरीधारी के आगे नीचे रख दिया। गिरिधारी का प्रेमपूर्वक अर्चन करके उसने कटोरा वापस हाथ में लिया। मुस्करा कर उसने पुरोहित की तरफ़ देखा और उसे भी थोडा चरणामृत देने लगी पर पांडे ने लेने से इंकार कर दिया।

चाण्डाल कहीं का ! ऊदा एकदम भीतर घुस गई।

उसकी कल्पना बिलकुल सच थी। उसने देखा की मीराँ पाँडे से थोड़ा चरणामृत लेने का आग्रह कर रही थी और सफेद पूनी की तरह हुआ पांडे चोरी छिपाने के लिए झूठमूठ हँसकर कह रहा था।

"ना, ना, बाई ! आप ही पीवें ! चरणामृत खास आपके ही लिए है आप स्वस्थ रहें।"

"जैसी आपकी इच्छा।"

इतना कहकर मीराँ ने सोने के कटोरे को सिर से लगाया और फिर ओंठों पर रक्खा।

गिरिधारी के सानिध्य में मीराँ का बदन सदैव किसी दिव्यकान्ति से चमक उठता। उसकी आत्मा आनन्द में खेलने लगती और उसकी स्पष्ट छाया उसके मुँह पर छा जाती। पवित्र धूप-दीप मीराँ के पवित्र वदन को हमेशा अवर्णनीय बना देता।

ऊदा आँखें फाड़कर निर्दोष हास्य करती हुई मीराँ को देखती रही। उसका छलाँगें मार मारकर कूदता हुआ चोर हृदय आख़िर एक बड़ी छलाँग मार कर बाहर निकला। उसने भयंकर किलकारी की,

"मत पीना—भाभी मत पीना !!! मत पीना! यह ज़हर है-हलाहल !" इतना कहकर वह एकदम भीतर दौड़ी और मीराँ का हाथ पकड़कर उसके पास ही बैठ गई।

मीराँ ने कुछ क्षण कटोरे को आँखों के सामने पड़ा रहने दिया। फिर उसने गिरिधारी की तरफ देखा। गिरिधारी तो रोज की तरह उसे हँस रहा था। मीराँ भी थोड़ी देर उसकी तरफ़ देखती रहकर हँसने लगी। ऊदा व्याकुल होकर मीराँ को देखती रही। मीराँ ने यही हँसता हुआ मुँह ऊदा की तरफ फेरा और फिर.... .

कटोरे को उठाकर झट मुँह से लगा दिया। ऊदा कटोरे को छीनती इससे पूर्व तो मीराँ के घट में चरणामृत अदृश्य हो गया। ऊदा की आँखें बाहर आ गईं उसने कारुणिक चीख मारी।

"भाभी! भाभी!! भाभी!!!

और सिसकियाँ भरकर भाभी के चरणों मे लुढकती हुई बोली: "मुझे क्षमा करें भाभी—मैंने आपको ज़हर दिया है—मैंने पाप किया है। झूठे क्रोध और ईर्ष्या से मैं आपका प्राण लेने को उन्मत्त हो गई थी। क्षमा दो देवि, क्षमा, क्षमा।"

पांडे काष्ठवत् होकर ऊदा को देखता रहा।.

यह ऊदा थी?

मीराँ ने स्नेहपूर्वक ननद की पीठ पर हाथ फिराकर उसे बिठाया। बोली:—

"बहिनजी! झूठी चिन्ता क्यों करती हैं? इस देह की ज़रूरत न समझ कर आपका और राणाजी का बहाना करके गोविन्दजी ने पाँडे को भिजवाया है।"

"परन्तु आपने जो पिया है वह हलाहल है।"

"भले ही हो। प्रभु के नाम का जो प्रसाद है उसे लेना चाहिए। आपकी जरा भी भूल नहीं। मनुष्य की शक्ति ही कितनी? जो कुछ होता है वह इस कन्हैया से! जो कुछ नहीं होता वह भी इस कन्हैया के ही कारण से। मेरे लिए अभी अगर ज़िन्दगी में कुछ काम करना बाक़ी है तो मैं नहीं

मरूँगी—निश्चय मानना। और मर ही जाऊँगी तो भगवान् की इच्छा के विरुद्ध जानेवाले हम कौन ?

आओ बहिनजी ! ऊपर देखो—देखो यह गिरिधारी हँस रहा है .. जानती हैं किसलिए ? चिन्ता न करने योग्य की चिन्ता करते हैं इसलिए। चिन्तन करने योग्य को त्याग दिया है इसलिए ! आओ, आओ, हम इनसे बातें करें।"

इतना कहकर मीराँ ने तम्बूरा लिया—ऊदा को मंजीरा दिया। चिल्लाहट के कारण दौडकर आई हुई काशी पद्मा ने ढोलकें लीं। निर्जीव की तरह हुए पाँडे के हाथ में मीराँ ने झाँझ दी और फिर शान्ति से गाने लगी :

करम गत टारे नाहिं टरे ॥

सतवादी हरिचन्द-से राजा,
(सो तो) नीच घर नीर भरे।

पांच पांडु अरु कुन्ती द्रोपदी
हाड हिमाले जाय गरे ॥

जग्य कियो बली लेण इन्द्रासण
सो पाताल धरे।

मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर
विख से अमृत करे ॥

यन्त्र की तरह ऊदा बजाने लगी। आँखों से निकलने वाले आँसुओं का उसे भान न रहा। आत्मा पर जमी हुई कई जन्मों की परत मानों धुलने लगी, आनन्द—अनहद आनन्द की डफली वह बजाने लगी। शरीर, हृदय और मन हलके हो गए। आँखें बन्द कर मंत्रमुग्ध ऊदा अस्पष्ट शब्द बोलती हुई मंजीर बजाती रही... ..

...जब उसने आँखें खोलीं तो देखा कि उसके आसपास राजमहल की

तमाम स्त्रियाँ, केवल एक पटरानी के सिवाय, भजन में साथ देती हुई बैठी थीं। भजन में कितना समय व्यतीत हो गया इसका उसे भान न रहा।

"बोलो गिरिधारीलालजी की जय!"

भजन पूरा होते ही सबने जयघोष किया। ऊदा ने आँखें पोंछीं और भगवान् के आगे झुकी हुई मीराँ को धड़कती हुई छाती से देखती रही। मीराँ ने धीरे से सिर ऊँचा किया। मीराँ के मुँह पर एक अलौकिक तेज उठा। वह किसी मस्त दशा में विहार करती हुई जान पड़ी—ऊदा ने जान लिया कि भजन पूजा तो मीराँ बाई के लिए मात्र निमित्त थे। उनका साधन लेकर मीराँ मस्त बन जाती थी। ऐसी मस्त कि कोई उसे समझ न सके—पूछ न सके।

ऊदा ने आँखें फाड़ कर देखा कि यह मस्ती उसे दिए हुए हलाहल ज़हर की नहीं थी। उसका हृदय उछल उछल कर उसे कहने लगा कि ज़हर अमृत हो गया। मुमुक्षु ऊदा ने फिर मीराँ के चरण पकड़ लिए। उसने उसे हत्यारी होने से बचाया था। कटोरे का और उसके हृदय का ज़हर मीराँ ने एक ही स्पर्श से अमृत बना दिया।

परन्तु प्रणाम कर महल से बाहर जाते हुए पांडे ने ज़हर को ज़हर ही मानने का दुराग्रह रक्खा। उसे पूरा वहम रहा कि जंगल की किसी अनजान वनस्पति के रस के साथ पिलाने से ज़हर मीराँ के पेट में पड़कर ज़हर न रहा। मात्र इतना ही।

यह बात उसने बहुत अच्छी तरह से राणाजी के दिमाग़ में बिठा दी। और, राणा ने उसे शीघ्र मान लिया।

★

तू–ऊदा, मेरी बहिन ?

"सारा भूतिया महल साधु सन्तों से भर गया है, अन्नदाता !"

विक्रम का अति विकराल अंगरक्षक बुधाजी राठौड़ काफ़ी नरम होते हुए बोला।

बन्द कर, बन्द कर, मुँह बन्द कर चण्डाल !' राणा लगभग अस्वाभाविक आवाज़ में चिल्लाया। राणा हृदय से बहुत निर्बल बन गया था। परन्तु ज्यों-ज्यों उसका हृदय निर्बल बनता गया त्यों-त्यों उसका मस्तिष्क सख़्त बनता था। अधिक मात्रा में आत्मग्लानि और ऐसे ही विचारों से वह मीराँमय बन गया था, जिसमे मीराँ के प्रति तिरस्कार इतनी अधम स्थिति को पहुँचा था कि मीराँ की देह के छोटे छोटे टुकड़े भी कर दे तो उसे शान्ति न मिले।

उसकी आँखों के क्रोध ने एकनिष्ठ परन्तु निर्दय बुधाजी को भी डगमगा दिया, नहीं, नहीं ठंडा कर दिया। उसने डरते डरते कहा —

"अन्नदाता, महल के बाहर, छोटे और बड़े सब लोग दर्शनों के लिए उमड़ रहे हैं।"

"तुझे मरना है ?"

मीराँ के भूतिया महल में साधु भर गए यह मानो बुधाजी का दोष हो, उस तरह राणा उसकी तरफ़ देख कर गरज उठा। उसकी सख़्त आज्ञाओं के होते हुए भी उसकी प्रजा मीराँ के पीछे पागल होने लगी ?

अचानक उसे खयाल आया। उसके मृत भाई की आज संवत्सरी थी। मीराँ प्रतिवर्ष इस दिन जितना बन पड़ता उतने साधुओं को बुलाती। भोजन कराती। उत्सव होता। आज उसने मात्र उनको आमंत्रित किया था और भगवान् का अल्पप्रसाद लेकर मीराँ के दर्शन से कृतार्थ होने के लिए वैष्णव और वैष्णवियाँ राणा की आज्ञा का उल्लंघन कर हिम्मत से एकत्र हुए थे।

राजमहल मे लोगो ने प्रवेश कैसे पाया ? किसने उनको आने दिया ? दास-दासियों सहित समूचा महल सुलगा देने की वैरवृत्ति विक्रम मे जगी। उसके शब्दों की कुछ भी कीमत नहीं, उसका कोई वर्चस्व नहीं ? उसका मान, उसकी इज़्ज़त, उसका अपनत्व उसे नष्ट होते हुए लगे।

और यह करने वाली एक निःशस्त्र, निर्लेप विधवा स्त्री !

निराशा और क्रोध से उसकी आँखों में मात्र आँसू आने ही बाकी रहे। इस मीराँ का जब तक फ़ैसला न हो, तब तक उससे राज्य न होगा। उसका जीना व्यर्थ होगा। उसे याद आया कि उसकी पटरानी दूर रह रह कर अपना हृदय मीराँ के चरणों मे रख चुकी थी। मेवाड़ के राजमहल में फक्कड़ और स्त्री-पुरुष घुस आवें यह पटरानी की आज्ञा के सिवाय असंभव बात है। आज का दोष पटरानी का था—यह मन में निश्चय कर लेने पर भी राणा को असली दोष मीराँ का प्रतीत हुआ। उसी ने पटरानी के हृदय पर बुरा असर किया। उसे भुलावे मे डाल दिया।

मीराँ उसका राज्य और उसका जीवनसर्वस्व लूटने बैठी थी। मीराँ उसका अन्त और प्रलय बनकर आई थी।

उसने ओंठों को इस तरह जोर से पीसा कि खून निकल आवे, और फिर बुधाजी के आगे आया। बुधाजी ने काँपते हाथों को छिपा कर सिर झुकाते हुए कहा :—

"अन्नदाता ! झूठ कहता होऊँ तो स्वयं पधार कर देखें, फिर मार डालें।"

"सारों को बाँध डालो, बुलाओ सैन्य को। मँगाओ घोड़े, हाथी, ऊँट और कुचल डालो एक एक को... "कहते कहते राणा ने तलवार खींची। बुधाजी राठौड़ चिल्ला कर जमीन पर गिरा। राणा उसके पैर पर पैर रखता हुआ चला गया, इसका उसे भान न रहा। वृन्दावन के कई एक साधु और योगिनियाँ मीराँ के दर्शन करने आए थे। मीराँ के भजन वृन्दावन तक पहुँच चुके थे और उनसे आकृष्ट होकर द्वारका जाता हुआ एक छोटा-सा संघ आज के दिन यहाँ खिंचा चला आया था...

हाथ मे मंजीरा लिए साधुसन्तों के बीच गिरिधारी के आगे मीराँ गाती थी, गाती थी और ऊर्मिवश होकर नाचती थी :—

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई,
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।
तात-मात भ्रात--बंधु आपनो न कोई,
छाँड़ि दई कुल की कानि कहा करि है कोई।
संतन ढिग बैठ बैठ लोकलाज खोई,
चुनरी के किए टूक ओढ़ लीन्हीं लोई।
मोती मूँगे उतार बनमाला पोई,
अँसुवन जल सींच सींच प्रेमबेल बोई।
अब तो बेल फैल गई आणंद फल होई,
दूध की मथनियाँ बड़े प्रेम से बिलोई।
माखन जब काढ लियो छाछ पिए कोई,
भगति देखि राजी हुई जगत देखि रोई।
दासी मीराँ लाल गिरिधर तारो अब मोही।

वाह ! वाह !

एक ध्यान, एक भाव, एक मस्ती हरेक के हृदय में नाच रहे हैं।

कड़ुवा लगने वाले मिथ्या जगत् को आनन्दमग्न करने के लिए एक छोटा-सा यात्री संघ होश और जोश से तैयार हो रहा है।

"खबरदार!"

इसी बीच राणा की कर्ण कटु चीख सुन पड़ती है।

परन्तु किसी का ध्यान नहीं जाता। सब की नज़र मीराँ द्वारा हँसते हुए कन्हैया में विलीन हो गई हैं। छोटी मीठी अनेक आवाज़ों मे राणा की अकेली शुष्क आवाज़ लुप्त हो जाती है। असख्य मंजीरों में एक तलवार की खड़खड़ाहट जरा भी नहीं सुन पड़ती।

"चुप रहो।" राणा फिर गरजता है।

भजन चलता रहता है।

"बन्द करो—बन्द कर दो! एक एक की खबर ले लूँगा—चुप! चुप!! चुप!!!"

राणा उन्मत्त होकर गरज उठता है।

तो भी, कोई सुनता नहीं।

राणा क्रोध से पागल हो उठता है। नीचे जमीन पर बैठे हुए सब लोगों को खदेड़ता हुआ, किसी का पैर कुचलता हुआ, किसी का हाथ कुचलता हुआ राणा पागल की भाँति मीराँ के आगे आ खड़ा होता है। मीराँ के हाथ से राणा मंजीर गिरा देता है। ऊदा को धक्का मारकर उसका तम्बूरा तोड़ डालता है। लात मारकर काशी के हाथ की ढोलक को डाल देता है। तब, लोगों को भान होता है कि वे आकाश मे नहीं हैं, पृथ्वी पर हैं। विनयपूर्वक सभी लोग सिर झुकाकर राणा का सत्कार करते हैं। साधु साध्वियाँ आशीर्वाद देने के लिए हाथ ऊँचा करते हैं...

राणा प्रत्युत्तर में दहाड़ता है।

"किसने इन धूर्त ढोंगी डाकुओं को महल में आने दिया?"

"मैंने"

किसीने जवाब दिया !

राणा ने चौंक कर पीछे घूम कर देखा। बोलने वाली ऊदा थी। वही उसकी बहिन ऊदा ! ऊदा के मुँह पर निर्मल हास्य छा रहा था। उसने फिर मीराँ की तरफ देखा तो—वही हास्य। उसने फिर मूर्ति की तरफ़ देखा—अरे ! वही हास्य !

किसका किसको रंग लगा था ?

"मैंने सन्तों को यहाँ निमन्त्रण दिया है भाई।"

राणा का ध्यान खींचते हुए ऊदा बोली। राणा की आँखो में क्रोध की लाल रेखाएँ उठ आईं थीं। वह एकटक ऊदा को देखता रहा और फिर बोला, "तू—ऊदा, मेरी बहिन ?"

"नहीं। मै ऊदा, भाभी की दासी।"

"ऊदा !"

राणा आग बरसाती हुई आँखों से बहिन को देखने लगा। यह क्या वही बहिन है जिसकी बुद्धि प्रतिभा अलौकिक थी ? जिसकी चातुरी, मुत्सद्दीपन और आत्मगौरव के आगे अनिच्छा होते हुए भी हरेक को मस्तक झुकाकर जो कुछ वह कहती उसे स्वीकार करना पड़ता।

"ऊदा, साधु-सन्तो के आगे नाचनेवाली यह कुलकलंकिनी मेरी प्रजा के आगे नाचती है और तू, सिसोदिया कुल की इज़्ज़त, इसकी दासी बनने में गौरव करती है ?"

"अन्धा सारी दुनियाँ को काला समझता है, पीलिया के रोगी को सभी पीले नज़र आते है; परन्तु दुनिया काली नहीं और लोग पीले नहीं। देखनेवाले की आँखों में दोष है। भाई, प्रेम-भक्ति की आँखों से देखने वाले को सब कुछ प्रेममय प्रतीत होता है। सभी लोग आत्मीय जान पड़ते है। कोई पराया नहीं रहता। मेरी आँखों के सामने से पर्दा हट गया है। क्षुद्र जन्तु

से मनुष्य योनि मे आई हूँ। अगर भाभी कलंक है तो फिर सारा संसार कलंक है। यदि भक्ति कुछ नहीं तो संसार में कुछ भी नहीं। आओ, आप भी सारे जंजाल छोड़कर प्रभुप्रेम में उन्मत्त बनी हुई भागीरथी भाभी के चरणों में दिव्य शान्ति अनुभव करें।"

"नहीं बहिनजी। ऐसा नहीं कहते। राजा का धर्म है राज्य करना।"

अभी तक चुपचाप खड़ी हुई मीराँ गंभीर, तटस्थ वाणी से बोली। लोग आश्चर्य से मीराँ को देखते रहे। मीराँ पुनः पूर्ववत् हास्य ओठों पर लाई और बोली :—

"किसी को किसी के धर्म से च्युत नहीं करना चाहिए। यह महान् पाप है, परन्तु..."

मीराँ इतना हास्य कर राणा को देखते हुए बोली, "प्रभु के प्रति प्रेम-भक्ति किसी के धर्म के बीच में नहीं आती। अपने धर्म को सँभालते हुए भक्ति करने मे ही प्रभु प्रसन्न हैं। राणा जी! मेरे ना करने पर भी, आपकी आज्ञा के बिना ऊदा बाई ने भगवान् के भक्तों को राजमहल में आने दिया; परन्तु, प्रभु के दर्शनों के आगे आने वाले हम कौन ?"

इतना कह कर मीराँ गिरिधारी की तरफ़ फिरी।

"अभी, अब मेरा मन तुम्हारे अटपटे जादूगरी शब्दजाल में फँसने वाला नहीं है। मुझे मृत्यु क़बूल है। कुत्तों के मुँह से फाड़ा जाना स्वीकार है, परन्तु इस भयंकर अपमान में अब मैं अधिक जीवित नहीं रह सकता। कहो, आख़िर तुम्हारी इच्छा क्या है ?"

राणाँजी म्हाँरी प्रीत पुरबली मैं काँई करूँ ॥

मीराँ बाई राणा की ओर देखे बिना गिरिधारी पर ही दृष्टि लगाए अपनी धुन में गाने लगी।

यह राणा को प्रत्युत्तर था।

राम नाम बिन नहीं आवड़े हिवड़ो झोला खाय।
भोजनिया नहीं भावे म्हाँनै नींदड़ली नहीं आय॥

राणा का पित्ता उछला। अपने सवाल का जवाब उसकी तरफ़ देखे बिना, गीत में देते देखकर उसको क्रोध से चक्कर आने लगे। उसने अपने पास चुपके से आ खड़े हुए बुधाजी राठौड को चिल्ला कर कहा :—

"राठौड ! काट डाल इस स्त्री को और जो चाहिए सो माँग !"

सब स्तब्ध हो गए।

राणा के शब्दों का पालन करने का अभ्यासी बुधाजी राठौड शीघ्र मीराँ के पास आ खडा हुआ परन्तु तलवार म्यान में ही रही। मीराँ ने कुछ देर उसकी तरफ देखा और फिर मन्द मुस्कान के साथ गाने लगी :

विष को प्यालो पी गई जी, भजन करो राठौर।
थाँरी मारी ना मरूँ म्हाँरो राखणवालो और॥
छाया तिलक लगाइया जी, मन में निश्चय धार।
रामजी काज सँवारिया जी म्हाँनै भावैं गरदन मार॥
मीराँ दासी श्याम की जो श्याम ग़रीब निवाज़।
जन मीराँ की राखज्यो कोई, बाँह गहे की लाज॥

बुधाजी जहाँ खड़ा था वहीं रह गया। सब स्तब्ध हो कर देखते रहे कि देखो क्या होता है। अभी तक रक्खी हुई मन की मर्यादा टूटी। राणा लपका और बैठी हुई मीराँ को हाथ पकड़ खींच कर खड़ा करते हुए बोला:—

"हमारी इकहत्तर पीढ़ियों को एक साथ धूल में मिलाने वाली ओ पापिनी ! मुझे तेरा डर नहीं। मुझे तेरा जादू स्पर्श नहीं कर सकता। मेरे क्रोध की और धीरज की अवधि जा चुकी है। अपने राजमहल को मुझे लफ़ंगों का धाम या कुल्टा चुड़ैलों का अड्डा नहीं बनाना। मैं तुझे और तेरे इन सबों

को, एक एक को चुन चुन कर चीर डालूँगा। मेवाड़ के राणा की कुल-इज़्ज़त कितनी भारी है यह अभी सबको समझानी है...” कुल इज़्ज़त को सँभालने वाला तो भैया यह एक गिरिधारी ही है।” ऊदा ने बीच ही मे कह दिया।

“गिरिधारी ?”

राणा ने अँगार बरसाती हुई आँखों से ऊदा को देखा और फिर शीघ्र उसकी नज़र गिरिधारी पर पड़ी।

गिरिधारी हँसता था।

राणा लपका गिरिधारी पर...

“ये ही मेरे कुल-कुटुम्ब को धूल में रखड़ाने लगे हैं। इन्हीं ने मेरे भाई को मारा, मेरे पिता को मारा, इन्हीं ने मेरी बहिन को पागल बना दिया और मेरे घर में एक कलंकिनी को ला बिठाया। इन्हीं ने मेरा सत्यानाश करना शुरू किया है। बस ये ही नहीं चाहिए मेरे महल मे। आज ही ठिकाने लगाये देता हूँ।” इतना कहकर क्रोधोन्मत्त राजा ने मूर्ति को उठा लिया।

“दीवान जी !”

मीराँ रोते हुए चिल्लाई और एकदम दौड़ कर विक्रम के दोनो हाथ पकड़ लिये।

मीराँ काँपती थी। अपनी हर रोज की शान्ति और धैर्य राणा के सख़्त हाथों में पकड़े हुए हँसते गिरिधारी को देखकर वह खो बैठी। मानो गिरिधारी जीवित हों और राणा उनका गला घोंट देंगे इस तरह का विचार आने से वह अत्यन्त घबराकर गद्‌गद होती हुई बोलीः—

“राणाजी ! धर्मरक्षक होकर धर्म के सुन्दर स्वरूप का उच्छेदन कर रहे हैं ? घोर पाप करने को तत्पर हुए हैं ? आपको मैं सताती हूँ इसलिए दण्ड मुझे मिलना चाहिए। इनको दंड देकर तो आप अपने आप को ही दण्डित करेंगे।”

“मैं अपने आपको दण्डित करना चाहता हूँ।”

निर्दय ढंग से इतना कहकर राणा मीराँ का हाथ मरोड़कर जाने लगा। परन्तु ऊदा पास ही खड़ी थी। उसने छलाँग मारकर,भाई के क्रोध को संभाला और काँपती काँपती बोली:—

"कुलकलंक! तू क्या करने बैठा है-यह पाप तो......"

परन्तु ऊदा कुछ और कहती इससे पूर्व तो विक्रम ने इतने ज़ोर से उसे धक्का दिया कि वह पत्थर के एक खम्भे से टकराकर बेहोश हो गई और जमीन पर गिर पड़ी। उसके सिर में से ख़ून निकलने लगा। राणा ने उसकी तरफ़ नज़र भी नहीं उठाई और मूर्ति लेकर तेज़ी से चलने लगा।

और उसके पीछे मीराँ, लड़खड़ाती, गिरती-पड़ती, रोती, कलपती दौड़ने लगी। भगवान् के भक्त जहाँ थे वहीं जमीन से चिपके खड़े रहे और हँसते हुए गिरिधारी और रोती हुई मीराँ को देखते रहे।

राजमहल में से एक गुप्त मार्ग महल और चित्तौड़गढ़ के बाहर जाता था। राणा उसी रास्ते पैदल चलने लगा। उससे कुछ ही दूरी पर मीराँ और मीराँ के पीछे बुधाजी सबको रोकते हुए चलने लगा।

बरसात की मौसम थी। गढ़ का एक झरना नदी के समान स्वरूप बनाकर एक ऊँची आवाज़ में थोड़ी दूरी पर बहनेवाली नदी में मिल जाता था। राणा उस नदी बने हुए झरने के पास आ पहुँचा। उसकी साँस तेज हो गई थी। उसका क्रोध उतना का उतना मौजूद था। "राणाजी—भाई—विक्रम" इत्यादि शब्दों से आक्रंद करके पीछे दौड़ी चली आने वाली मीराँ की उसे पूरी ख़बर थी।

एक बार उसने मीराँ की तरफ़ देख लिया। फिर कुछेक पत्थरों की टेकरी लाँघकर वह ऊँचा चढ़ा। यहाँ से बहुत गहराई में नाला गिरता था। राणा ने थोड़ी देर भँवरों में गर्क होते हुए पानी के बहाव को देखा और फिर ओंठ भींचकर उसने गिरिधारी को देखा।

• गिरिधारी को क्या पड़ी है? वह तो राणा को देखता हुआ हँस रहा

था। राणा ने उसे थोड़ी देर देखकर दाँत कटकटाये और फिर धड़कती हुई छाती से मीराँ के गिरिधर नागर को राणा ने नीचे स्वच्छन्द रूप से बहती नदी में डाल दिया।

झाड़ झंखाड़ों और पत्थरों में लड़खड़ाती हुई मीराँ अतिशय श्रमित हुई राणा के पास आ पहुँची। उसकी छाती में साँस नहीं समाता था; उसके कोमल पैरों और हाथों मे ख़ून के खरोंच पड़ गये थे। एक शिला पर राणा थकान मिटाने को शान्त बैठा हुआ था, उसके पास पहुँचकर मीराँ ने तीव्र दुःखभरी आवाज़ से याचना की:—

"दे दो मेरे गिरिधारी को, महाराज! आपके पैरों पड़ती हूँ।"

राणा मीराँ के सूखे हुए ओठों और भींगी हुई आँखों को क्षणभर देखता रहा। मूर्ति को पानी में डालने के बाद राणा को कुछ क्षोभ हुआ था। उसने फिर मीराँ पर से दृष्टि हटा ली और नीचे बहती हुई नदी की ओर हाथ से इशारा किया।

विस्फारित आँखों से मीराँ दौड़ी और जहाँ से राणा ने मूर्ति को फेंका था वहाँ खड़ी रहकर नीचे देखा। अट्टहास फेंककर बहती हुई नदी की लहरों उसने मानो आनन्द से किलकारी करके हँसते हुए गिरिधारी को देखा। मीराँ ने राणा के दोनों खाली हाथों की तरफ़ देखा और फिर कलकल करती हुई नदी की तरफ़ विचार मग्न होकर मीराँ देखती रही।

"मेवाड़ी कुल को कलंकित करनेवाले को पवित्र नदी के हृदय पर रख दिया।"

संयमित हुए तिरस्कार में राणा ने गहरी आवाज़ से धीरे से कहा।

मीराँ ने शीघ्र जवाब नहीं दिया। थोड़ी देर वह उस बहाव की तरफ देखती रही और फिर राणा की तरफ़ फिरी। धीरे से वह राणा के पास आई। राणा के हृदय ने क्षोभ को कुछ अधिक अनुभव किया। मीराँ अर्ध-विक्षिप्त की तरह राणा को एकटक देखती रही और फिर बोली:—

"प्राण को उखाड़ने पर शरीर का क्या होता है महाराज ? इनके बिना मै जी सकूँगी ? गिरिधारी मेरे प्राण हैं।"

पत्नी के मन में उसका सच्चा प्राण अर्थात् उसका पति। युवराज के मर जाने पर भी मीराँ जी रही है तो इस निर्जीव मूर्ति के बिना वह मर जाएगी ? विक्रम का द्वेष और क्रोध फिर उभर आये। हाथों की मजबूत मुट्ठियाँ कसकर वह खड़ा हो गया और प्राण कँपा देनेवाले घातक कटाक्ष में वह कहने लगा -

"तुम्हारी बात ठीक है भाभी ! गिरिधारी ही तुम्हारा प्राण है। इस नदी की पेंदी मे वे अभी भी विराजे हैं। पड़ो पानी मे और भेंट करो। गहरे पानी मे जाने से तुम्हारे प्राण निकलेंगे, तो तुम्हारे सच्चे प्राण पानी मे ही हैं इसलिए मृत्यु का तुम्हें डर नहीं! अगर तुम्हारे ये प्राण न मिलें तो यहाँ पानी में गिर कर मर जाना निरर्थक नहीं। गिरो नदी मे। परन्तु भाभी, तुम्हारे गिरिधारी को तुम सच्चे प्राण मानती हो तो फिर इस पृथ्वी पर रहने के लिए न आना। अन्यथा, तुम्हारे गिरिधारी आज से बाद में पानी के बदले किसी और ही ठिकाने पर होंगे।"

"मैं आपको इतना अधिक दुःख देती हूँ इसकी मुझे कल्पना नहीं थी। अरे रे, मुझे भक्ति करनी ही नहीं आती मुझे क्षमा करें, दीवानजी ! आज से मैं और मेरे गिरिधारी—अगर मिल जायँगे तो—मेवाड़ मे नहीं रहेंगे।

"तथास्तु।"

चौक कर देखते हुए राणा ने मीराँ को विषाक्त वाणी से कहा :—
"अपने वैरियों को मैं अपने राज्य मे नहीं रहने देता।"

मीराँ उसे टकटकी लगाए देखती रही। गिरिधारी ही जानता था कि इस समय उसके हृदय में क्या था। वह ग्लानि, आत्मवंचना, क्षमा का अनुभव कर रही थी। वह बोलने लगी परन्तु उसके शब्द गीतमय होकर राणा को सुनाई देने लगे :—

राणाजी थे क्याँनै राखो म्हाँसूँ बैर ॥

थे तो राणाजी म्हाँनै इसड़ा लागो,
ज्यूँ वृच्छन में कैर ।
महल अटारी हम सब त्याग्या,
त्याग्यो थाँरो बसणों सहर ॥
काजल टीकी राणा हम सब त्याग्या,
भगवाँ चादर पहर ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
इमरत कर दियो ज़हर ॥

ज़हर का नाम सुन कर राणा बेचैन हो उठा। उससे अधिक बोला न गया। संक्षेप में गुनगुनाया।

"तुम्हारा सामान और दासियाँ भेजता हूँ।"

"मुझे कुछ नहीं चाहिए।" मीराँ ने झट जवाब दिया।

"नदी लाँघने को म्याना मँगाऊँ ?"

"नहीं। मैं अकेली, तैर कर जाऊँगी। सुखी रहो, नमस्कार राणाजी!" इतना कह कर मीराँ ऊपर चढ़ने लगी।

"जाने का रास्ता इस तरफ़ नीचे है।"

"नहीं। जाने का रास्ता ऊपर है।"

"ऊपर पर्वत की चोटी पर ?"

"जी। जिस रास्ते गिरिधारी गए, उसी रास्ते मैं जाऊँगी। आओ दीवान जी! मुझे भेजो, जैसे उनको भेजा ठीक उसी तरह।"

"नहीं—नहीं।" राणा एक क़दम पीछे हटता हुआ बोला। उसके मुँह पर घबराहट थी।

"क्यों ?" मीराँ ने सती के अन्तिम स्मित के साथ पूछा।

"मैंने उन्हें फेंक दिया है।"

"तो मुझे भी फेंक दो।"

"नहीं।" राणा ने निश्चयपूर्वक कहा।

मीराँ ने दोनों हाथ जोड़े और जिस स्थल से मूर्ति पानी मे गिरी थी उसी स्थल पर आ खड़ी हुई। राणा का हृदय, पापी होते हुए भी, क्रूर होते हुये भी धक्‌धक् करने लगा :—

राणा के पैरों को मानो किसी ने कीलें ठोंक कर जमीन में गाड़ दिया हो। वह आगे भी नहीं गया, पीछे भी नहीं।

मीराँ ने दोनों हाथो को सूर्य भगवान की तरफ़ फिराकर नमस्कार किया और नाले से नीचे झिलमिल कर बहते हुए पानी में हुँकार कर मीराँ अदृश्य हो गई।

राणा आँखें बन्द करके नीचे बैठ गया।

★

डाकू का हृदय

मीराँ ने आँखें खोलीं।

आँखों के आगे से धीरे धीरे अन्धकार का पटल दूर होकर प्रकाश होता दीख पड़ा। उसने आँखें फाड़कर देखा तो उसकी पहली दृष्टि टूटे-फूटे छप्पर की छत पर पड़ी। सूर्य की किरणें ताक़ की जाली मे से छनकर अन्दर प्रवेश कर रही थीं। टूटी हुई छत में एक दो गिलहरियाँ अदृश्य होती दीखीं। दूर अँधेरे कोने में एक चमगादड़ लटक रहा था। उसके पास ही तलवारें, भाले और कटारें टूटी हुई दीवाल पर चमकते थे। घर टूटा फूटा और उजाड़ दीखने पर भी भीतर की वस्तुएँ कीमती प्रतीत होती थीं।

"गिरिधारी !"

मीराँ को पूर्ण रूप से भान आते ही चीख मार कर वह बैठी हो गई।

गिरिधारी उसे अपने सामने ही विराजमान हुआ जान पड़ा।

वही हास्य, वही शरारत।

हँसते हुए गिरिधारी को कुछ देर देखकर मीराँ की आँखों में आँसू आ गये। वह झट खड़ी हुई और उसे पकड़ कर उसके पास बैठ गई। शीघ्र ही उसका ध्यान कुछ दूरी पर खड़ी भीलनी की तरफ़ गया और वह उपकार दृष्टि से देखती रही। धीरे धीरे उसको होश होने लगा। वह भगवान् का स्मरण करके पानी में गिरी थी। फिर..... उसे याद न आया।

"क्या विचार करती हो ?" कहते हुए एक भीषण मुखाकृति वाला पुरुष

हँसता हँसता भीतर आया। भील दासी बाहर चली गई। आने वाला पुरुष हृष्ट पुष्ट था। उसकी भरावदार दाढ़ी में ही उसके विलासी ओठ साफ़ ज़ाहिर हो रहे थे। भीषण होनेपर भी उसकी मुखाकृति मे कुछ पसन्द आने जैसा था। उसकी आँखें लाल थीं—वेधक थीं। बाज़ की तरह सावधान और खिलाड़ी थीं, तो भी आकर्षक। कसूमल अँगरखे पर उसने कसकर कमर बाँधी थी और उसमें चमकती हुई कटार खोंसी थी।

"घबराना मत। घर मत देखना, घर के आदमी को देखना।" सरदार बोला। आगन्तुक सरदार ही था। डाकुओं का सरदार। उसके शब्दों में और बोलने की छटा मे जिम्मेवार व्यक्ति की प्रतिभा थी। उसके गूढ़ार्थ वाले शब्द सरल और सचोट थे। आदमी को क्रीडा कराने की आदत उसके हँसते हुए मुँह पर से और द्विअर्थी शब्दों से स्पष्ट हो रही थी। वह स्तब्ध हुई मीराँ के पास आया और पार्श्व में बैठ कर बोलाः—"आपने यह दूध नहीं पिया? पी लो। इसमे डाली हुई औषध से तुम मे स्फूर्ति आयगी।"

मीराँ ने सरदार की ओर देखा और बहुत प्रेमार्द्र आवाज़ में बोलीः "आप कौन हैं?"

"मैं यों तो गृहस्थी हूँ......स्त्री थी, मर गई, बच्चे थे वे भी मर गये। मुझ में एक ही निर्बलता है कि मैं किसी भी स्त्री को दुःखी नहीं देख सकता। आपकी ही बात—नदी में छट पटाते देखकर शीघ्र ही मैं नदी मे कूदा। पानी के बहाव को चीरकर आप को और आपकी जोर से पकड़ी हुई इस मूर्ति को खींच कर बाहर निकला। फिर विचार किया ऐसी सुन्दर स्त्री, रानी ही बनने योग्य ऐसी सुन्दर स्त्री मर नहीं जानी चाहिए। ज़रूरी काम छोड़कर मैंने शीघ्र ही आपको अपने कन्धे पर डाला और बड़े यत्न से यहाँ ले आया।"

सरदार आत्मप्रशंसा से मीराँ को आकर्षित करता हुआ बोला।

मीराँ ने गिरिधारी की तरफ़ मुँह फेरा। उसे याद आया कि नदी में पड़ते वक्त वह सीधी अन्दर गई थी और उसका हाथ सबसे पहले अपने गिरिधारी पर पड़ा था। गिरिधारी की ओर देखती हुई ही मीराँ बोलीः—

"मुझे पानी में ही रहने दिया होता तो ज़रा भी बुराई नहीं थी।"

"सुन्दर स्त्रियों को पानी में नहीं, राजमहल में शयन करना चाहिए। आजकल मैं राजमहल का ही विचार कर रहा हूँ।" विलासी ओंठ वाले सरदार ने वाणी का उच्चारण किया।

मीराँ ने सरदार की तरफ़ देखा और अपने सदा के स्वाभाविक स्मित से बोली: "राजमहल तो सुन्दर क़ैद है।"

"तो आपको यह घर पसन्द है? मुझे भी पसन्द है। तभी तो मैं यहाँ रहता हूँ। ये पहने हुए कपड़े आप झटपट बदल लें। पुराने हैं पर हैं कीमती।"

"मुझे एक सादी साड़ी ही चाहिए।" मीराँ बोली।

"सादी? सुन्दर स्त्री के साथ सादी वस्तु भी सुन्दर हो जाती है। मैनाँ!" उस भीलनी को बुलाते हुए सरदार इतना कहकर सादी साड़ी दिलाने के लिए बाहर जाने लगा परन्तु मीराँबाई ने उसे रोकते हुए पूछा—"किन्तु आपने मुझे बताया तो नहीं कि आप कौन हैं?"

सरदार रुका और ओंठ पर स्वभाविक तिरस्कार मय हास्य लाते हुए बोला:—

"शहर के सम्भ्रान्त लोग मुझे डाकू कहते हैं। परन्तु मैं डाकू नहीं। आपको विश्वास दिला दूँगा। वह दूध पहले पी लो, ठंडा हो जायगा।"

इतना कहकर वह बाहर चला गया।

सरदार के मस्तिष्क को मीराँ ने अस्थिर बना दिया था। बाहर निकलकर उसने सबसे पहले एक पानी से भरी हुई थलिया मँगाई और उसमें देख देख कर अपनी दाढ़ी, मूँछें और सिर के बाल ठीक करने में जुट गया। उसने नये कपड़े मँगाए। सुगन्धित तैल फुलेल मँगाया और आनन्दित होकर कुछ गुन-गुनाने लगा। भील और जंगली दास मूढ़ हुए-से अपने सरदार को देखने लगे।

थोड़ी देर में सरदार अपनी बुद्धि और सामर्थ्य के अनुसार गृहस्थी बन कर मीराँ के कोठे की तरफ़ चलने लगा।

धीरे धीरे मीराँ बाई की मन्द, हलकी, चेतना प्रेरक वाणी हवा में तैरती सरदार के कानों के रास्ते उसके हृदय को स्पर्श करने लगी। सरदार के पैर नाच उठे।

बडे घर ताली लागी रे
म्हाँरा मनरी उणारथ भागी रे ॥
छीलरिये म्हाँरो चित नहीं रे,
डाबरिया कुण जाव
गंगा - जमुना सूँ काम नहीं रे,
मैं तो जाय मिलूँ दरियाव ॥
हालयाँ मोलय. सूँ काम नहीं रे,
सीख नहीं सिरदार
कामदाराँ सूँ काम नहीं रे,
मैं तो जाय करूँ दरबार ॥
काच कथीर सूँ काम नहीं रे,
लोहा चढ़े सिर भार
सोना रूपाँ सूँ काम नहीं रे,
म्हाँरे हीरा रो बोपार ॥
भाग हमारो जागियो रे,
भयो समँद सूँ सीर
अमृत प्याला छाँडि के,
कुण पीवै कड़वो नीर ॥
पीपा कूँ प्रभु परचो दियो रे,
दीन्हा खज़ाना पूर,
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
धणी मिल्या छै हज़ूर ॥

सरदार मंत्रमुग्ध होकर भीतर आ खड़ा हुआ।

'दरबार', 'खज़ाना', 'हीराँ रो बोपार' आदि शब्दों ने उसके कान स्तब्ध कर दिए थे। मग्न मीराँ गिरिधारी को दूध चढ़ा रही थी। सरदार को यह न रुचा। दूध मीराँ के लिए आया था, भगवान के लिए नहीं और दूध की ज़रूरत पानी में ठिठुरी हुई मीराँ को अधिक थी। सरदार को आश्चर्य तो यह हुआ कि मीराँ भगवान् को इस तरह स्वस्थता से रिझा रही थी मानो उसे कुछ हुआ ही न हो। सरदार, न जाने क्यों; पर शीघ्र बाहर आया।

थोड़ी देर बाद मेनाँ भीलनी भोजन की थाली भीतर रख आई। सरदार पुन: भीतर गया तो मीराँ उस गिरिधारी को थाली चढ़ा रही थी। कुछ निराश होकर वह फिर बाहर आया।

इसे गिरिधारी नहीं रुचा।

अब तक तो संध्या हो आई थी। सूर्यास्त होते ही चिऊँटी दल की तरह असंख्य डाकू न जाने कहाँ से चारों ओर से उमड़ उमड़ कर सरदार के पास आ बैठे। एक मुखिया बोला—"सरदार, अम्बर, साँभर और बूँदी तीन-तीन जगह के बनजारों का डेरा लगा है। यह तो अम्बा माई ने ही हम पर विशेष कृपा की है एक ही झटके में जीवन भर का पाप कट जायगा।"

"सरदार, इस मौक़े के लिए आप रोज अम्बामाई की 'मनौती' करते थे।"

"अधिक विचार करने की बात ही नहीं है सरदार। बनज इस तरह पड़ी हुई है कि हम अकेले ही सब उठा लायँगे।"

"इसके अतिरिक्त, जेसलमेर जाती हुई दो दो बरातें आई हैं।"

परन्तु, सरदार इन प्रत्येक मुखिया की तरफ़ एक क्षण देख विचार में डूबता हुआ जान पड़ा। मुखिया को जान पड़ा कि आज सरदार को कुछ हो गया है। कुछ विचार कर सरदार मुखिया की तरफ़ घूमा और बोला:—"तुम सब लोग जाओ और फतह कर आओ।"

"पैसे की गर्मी से लोग पागल न हो जायँ इसका ध्यान रखना मेरा काम है। धन से जिनका दिमाग़ बोझिल हो गया है उनका बोझ में हलका करता हूँ। सोना जिनके शरीर पर रहते हुए शर्मिन्दा होता है ऐसों के शरीर को मै बनती कोशिश सोने से मुक्त करता हूँ और जिनके शरीर पर मैं हीरे-मोतियों को फालतू समझता हूँ उनको ठिकाने लगाने के लिए मैं प्रामाणिकता पूर्वक ले लेता हूँ, तो भी मूर्ख लोग मुझे डाकू कहते हैं।"

"भाई, पराई चीज़ लेना तो अधर्म है।"

"परन्तु मैं पराई को अपनी बना लेने के बाद लेता हूँ। ख़ैर, मुझे भाई कहने की ज़रा भी ज़रूरत नहीं।"

"क्यों ?"

"यह शब्द मुझे ज़रा भी अच्छा नहीं लगता।"

"तो मै आप कहेंगे वही कहूँगी।"

"मुझे वाघड़ कहो।" उसने ऐसे प्रेम और उत्साह से कहा जैसे कोई पुरानी स्मृति आ गई हो, "वाघड़ शब्द से मुझे अपना बचपन याद आता है।"

"वाघड, आपने मेरा प्राण बचाया है—विश्रान्ति दी है। मेरे गिरिधारी को और मुझे जंगल मे मंगल करने ले आये हो। मैं आपकी चिरऋणी रहूँगी।"

"यह ऋण अभी उतार दो तो!" वाघड़ ने अर्थपूर्ण हास्य मे कहा।

"बताओ किस तरह?" मीराँ ने निर्दोष भाव से पूछा।

वाघड़ एकदम चुप हुआ। सूझा नहीं कि क्या कहे। उसने मीराँ का मन धीरे धीरे मिलाने का निश्चय किया। उसने बात बदली, पूछा, आप कहाँ की हैं?"

"कहीं की नहीं।" मीराँ ने ज़रा विचार से कहा।

"मैं भी कहीं का नहीं।" वाघड़ शीघ्र बोला।

"वाह, तब हम दोनों एक-से।"

"मैं भी यही कहता हूँ।"

"तो हम लोग साथ मे रहेंगे।" मीराँ ने कोठा और बाहर का जंगल देखते हुए कहा।

"हैं ? ओह ! जो मुझे कहना चाहिए वह आप न कहें—मैं रो पड़ूँगा। मैं किसी दिन रोया नहीं।"

"तो यहाँ से हम साथ ही निकलेंगे।"

"हम दोनों साथ निकलेंगे।" काफ़ी ध्यान रखते हुए वाघड़ मीराँ के बोले हुए शब्दों को आवेश में आकर बोला। उसका हृदय सिंधी घोड़ी की तरह नाचने लग गया।

"कल सुबह।" मीराँ ने कहा।

"सुबह।" सरदार बोला।

"मेवाड़ के जंगलों को पार करते हुए।"

"पार करते हुए।"

"मथुरा की तरफ़।"

"मथुरा की तरफ़।"

"और भगवान के चरणो मे सिर रक्खेंगे।"

वाघड़ रुक गया। भगवान् की बात उसे न सुहाई। उसका शब्द-शब्द से ऊँचा चढ़ता हुआ उत्साह बिल्कुल भूमिसात् हो गया। उसने ठहर कर कहा :

"तो फिर मथुरा जाने की क्या जरूरत है। यह गिरिधारी यहाँ हैं ही। हम इनको यहाँ रक्खेंगे और रहेंगे। फिर, मथुरा के बजाय यहाँ मैं लोगों का अधिक भला कर सकूँगा।"

इन गिरिधारी के साथ तो मेरा विवाह हुआ है, इनसे तो अलग हुआ

ही नहीं जा सकता। परन्तु इनका बड़ा घर मथुरा में है, वहाँ जाना है। मेरे साथ चलोगे न वाघड भाई।"

"मुझे भाई कहने की ख़ास ज़रूरत है?"

"ख़ैर, तो बताओ आप कौन हैं?"

"कोई नहीं!" वाघड ने ज़रा खीझ कर कहा।

"तो क्या कहूँ?"

"जैसे आप हैं वैसे नहीं।" मीराँ ने स्नेह पूर्वक उसकी तरफ देख कर कहा। "जो मुझे और मेरे गिरिधारी को बचावे वह डाकू नहीं। लुटेरे की ज़िन्दगी अन्धेरे में पूरी हो जाती है। उजाले मे आओ वाघड़। यह देखा मेरा हँसता गिरिधारी? इसके पास आने वाले सब बदल जाते है। आप भी बदल गये—अब छोड दो अपना धन्धा और आओ मेरे साथ। मुझे मरने से बचाया। अब मै आपको प्रभु के घर ले जाऊँगी। चलेंगे मथुरा?

वाघड़ कुछ न बोला। साथ जाने के सिवाय उसे एक बात भी न रुची। उसे हँसता गिरिधारी भी न सुहाया।

मथुरा मे किसके यहाँ जाओगी?" वाघड ने ओंठ बन्द करते हुए पूछा।

मीराँ ने उसकी ओर स्मित करते हुए कहा—"मैंने कहा नहीं?—

मैं गिरधर के घर जाऊँ
गिरधर म्हाँरो साँचो प्रीतम
देखत रूप लुभाऊँ॥
रैण पड़े तब ही उठ जाऊँ
भोर भये उठि आऊँ।
रैण दिनाँ वाके संग खेलूँ
ज्यूँ त्यूँ ताहि रिझाऊँ॥

जो पहिरावै सोई पहिरूँ
जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उनकी प्रीत पुराणी
उण बिन पल न रहाऊँ॥
जहाँ बैठावे तितही बैठूँ
बेचै तौ बिक जाऊँ
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
बार बार बलि जाऊँ॥

ज्यों ज्यों मीराँ गाती थी, त्यों त्यो उसकी एकतानता बढ़ती थी, त्यों त्यो वाघड उल्टे पैरों बाहर जाने लगा। यह भी कोई औरत है? पागल है परन्तु पागल की तरह बोलती नहीं। रानी जैसी है परन्तु रानी की तरह हुक्म नहीं देती। युवती है परन्तु जवानी की अंश मात्र भी चंचलता नहीं दीख पड़ती।

यह कौन है?

एक तरफ़ से टूटे हुए दरवाजे के बाहर खड़ा रह कर, नन्हे दीपक की बत्ती में चम चम करते हुए मीराँ के मुँह को देखकर वाघड अपने आप को टटोल टटोल कर पूछने लगा। मीराँ का रूप देखकर वह लुब्ध हुआ था। अपनी बुद्धि और शक्ति उसने खो दी थी। एक ही वस्तु उसे सुहाती थी—मीराँ। एक ही वस्तु उसे चाहिए थी—मीराँ। और सब कुछ झूठा था—निरर्थक।

वाघड़ खंडहर के बाहर आया। रात काफ़ी ढल चुकी थी। खंडहर के बाहर ऊँट के एक ज़ीन पर बैठ कर वाघड़ डाकू यह विचार करने लगा कि उसे हो क्या गया है।

वाघड़ शराबी था। लुटेरा था। उसके नैतिक सिद्धान्त और नियम अलग ही थे......किसी को पकड़ने में, पीटने में, और मार डालने में उसे संकोच नहीं था। परन्तु मीराँ को देखकर गहन विचार में पड़ गया। उसकी जड़ता,

निष्ठुरता और पशुत्व मीराँ को देख कर नदी के पत्थर की तरह नरम न हुआ। परन्तु सुन्दर आकार प्राप्त कर मीना बन गया और उसका असर गहरा पहुँचा।

वाघड थक गया। अधिक विचार करना उसके स्वभाव में नहीं था। उसे इतना समझ पड़ा कि मीराँ की दिव्य मूर्ति को देखकर उसकी लालसायें जाग्रत होती थीं, किन्तु न जाने कोई बीच में बैठ कर उसका मार्ग रोकता था। हवा धीमी और गुलाबी जान पडती थी। बढ़ती हुई रात उसे प्रोत्साहन देती थी। चाँद को भी आज ही पूर्णिमा की चाँदनी डाल देनी थी! उसे जान पडा कि जब तक वह होश में रहेगा तब तक कोई काम नहीं बनेगा। उसने एक मीने नौकर को बुलाया और बेहोश होने के लिए खास मदिरा मँगवाई।

मदिरा की चार एक प्यालियाँ पीने के बाद उसे मनचाही राहत मिली। उसे सभी कुछ सुन्दर लगा। जलद मदिरा का असर उसे शीघ्र ही आया। मस्त साँड की तरह डोलता हुआ वह खंडहर की तरफ़ आया। द्वार में पैर रक्खा। मीराँ गिरिधारी के चरणों मे सिर रक्खे सोई हुई थी। वाघड़ उसे दूर से देखता रहा। मीराँ के मुँह का हास्य वैसा का वैसा था।

परन्तु थोडी देर देखते रहने पर वाघड़ का नशा उतर गया। मीराँ के पास जाने के बदले वह बाहर आया और मीने नौकर को लात मारते हुए बोला, "कमबख़्त मुझे कैसी मदिरा दी है—नशा क्यों नहीं चढ़ता?"

"मालिक यह तो सबसे तेज मदिरा है।"

"नहीं। जा देखकर ला।"

मीना दौड़ता दौड़ता एक विशाल वृक्ष के थोथे तने में अदृश्य हो गया और थोड़ी ही देर में मदिरा लेकर आया। वाघड़ ने गिनकर आठ प्यालियाँ पी गया। दिमाग़ फिराने को चार ही काफी थीं पर उसने दुगुनी ली।

"मीना, अब जो नशा नहीं चढ़ा तो समझना कि तेरी मौत घूमती है। कैसा दीख रहा हूँ, रे?

"हद कर रहे हो मालिक ! मेवाड़ का राणा भी एक बार तो शर्मिन्दा हो जाय ।"

"गधा ! यूँ कह कि मेवाड़ की रानी भी एक बार तो लजा जा ऐसी... मैं राणा यह रानी ।"

इतना कहकर वह वाघड जिसके पैर अस्थिर हो रहे हैं, लडखड़ाता हुआ खंडहर को तरफ़ चला और द्वार में पैर रखकर खडा हुआ ।

मीराँ उसी हास्य से सोई हुई थी और वही हास्य बिखेरता हुआ गिरिधारी प्रतिमा के रूप में जागता हुआ खड़ा था ।

वाघड़ ने एक क़दम उठाकर आगे बढ़ने का प्रयत्न किया; परन्तु उसका कदम न बढ सका । मीराँ के तेज में अंजित वाघड़ कुछ क्षण खडा रहा । उसे प्रतीत हुआ कि वह बेहोशी में नहीं है । पूरा पूरा होश में है—या मीराँ को देखकर होश में आ जाता है ? और होश में आ जाता है तो आगे क्यों नहीं बढता ? उसे हो क्या गया ?

इतने में किलकारियाँ मारते हुए उसके आदमी आ पहुँचे । वाघड़ ने उन्मादी आँखों से घूम कर देखा । घनघोर जंगल के वृक्षों को प्रकाशित कर जलती हुई मशालें देखते ही देखते पास आ पहुँचीं और लुटेरे मुखियों ने लूट का सारा माल सरदार के चरणों में रक्खा । बारात में नृत्य करने को जाती हुई दो वेश्याओं को भी पट्ठे उड़ा लाए थे । सबके बाद उन्हें भी सरदार के पैरों में डाला—नज़र किया ।

वाघड आज इन्हें देखकर पीछे खिसका । उसने लूट का माल मनमुताबिक मुखियों में बाँट दिया । विजयोन्माद में लुटेरे चाँदनी और मशालों के उजाले में मस्त होकर डोलने लगे । कुछ दूर जाकर एक बकरे का वध किया—मदिरा की प्यालियों का दौर चलने लगा और वेश्याओं ने राजीखुशी नृत्य-गान शुरू किया ।

वाघड़ अभी होश में था । वह कभी सुन्दर वेश्याओं की तरफ और

कभी खंडहर की तरफ़ देखने लगा। मीराँ उसका नशा उतारे दे रही थी। वेश्याएँ उसको नशा नहीं चढ़ा पाईं। उसने अपने पास बैठे हुए अपने खास मुखिया के हाथ मे से मदिरा का पात्र झपट लिया और नशे को आमंत्रित करने लगा।

सबको भय बैठ गया कि आज सरदार का मिज़ाज़ ठिकाने नहीं।

वेश्याओ ने गान शुरु किया:—

मेरे पिया के रंग राती

सखी री मेरे पिया के रंग राती

शान्त रात्रि में संगीत की ध्वनि अधिक कर्णप्रिय होकर फैलने लगी। नींद में मशगूल मीरां के कान में भी वह आखिर गूँजने लगी और मीरांबाई चौंककर खड़ी हो गई। संगीत मधुर था। आवाज़ मीठी थी। क्या साधु सन्त आ पहुँचे? कृष्ण भक्तों ने उसे ढूँढ निकाला? उसके कान में आवाज़ आई

मेरे पिया के रंग राती

मीराँ ने धीरे धीरे गिरिधारी की तरफ देखा और गुनगुनाई:—

मेरे पिया के रंग राती

संगीत का सुर चलता चला। गाने-वाली रग में आने लगी। मीराँ जाग्रत तो थीं ही। वे धीरे धीरे किसी स्वप्नावस्था में उतरने लगीं। धीरे-धीरे परन्तु क्रमश. मीराँ का शरीर झनझना उठा। उसका गिरिधारी पूर्ण रंग मे हँसने लगा। भूतिया महल के भक्तों के हँसते हुए मुँह उसकी दृष्टि के आगे तैरने लगे। पश्चात् भूमि में गाई जाने वाली कृष्ण की अश्लील प्रणयलीला भिन्न रूप में मीराँ के पास रंग पकड़ने लगी। धीरे धीरे मीराँ के मुख से बाहर निकलने वाले शब्द स्पष्ट होने लगे......मीराँ डोलने लगीं, गाने लगी:

मेरे पिया के रंग राती......

शब्द बदले ।

मै गिरिधर रंग राती, सैयाँ मै ॥

एक ही कृष्ण की लीला वेश्याओं के मुँह से अलग सुनाई दी और मीराँ के मुँह से अलग । धीरे धीरे मीराँ की आवाज़ने गहरा स्वरूप पकड़ा । बाहर का कोलाहल जल्द शाँत हुआ । वेश्याओं को अपने गीत मे हरकत होने लगी । धीरे-धीरे मीराँ की मोहक आवाज़ वेश्याओं की आवाज़ को ढँकने लगी—

वाघड ने आँख ऊपर उठाकर देखा तो......तो... मीराँ खंडहर में से बाहर आती दिखाई दी । उसका सारा नशा, फिर से ढलने लगा ।

डाकू और वेश्याएँ मीराँ की आँखों को कृष्ण का कीर्तन करते हुए वैष्णव जान पड़े ......उन्होंने गाना चालू रक्खा ।

मैं गिरिधर रंग राती

मस्त हुई मीराँ को देखती हुई वेश्याएँ बीच में आई । मीराँ उनकी तरफ़ देखकर गाने लगी :—

पँचरंग चोला पहर सखीरी
मैं झिरमिट रमवा जाती ।
झिरमिट में मोहि मोहन मिलियो
खोल मिली तन गाती ॥

मीराँ के तेज में अँजाई हुई वेश्याएँ उत्साह पाकर मीराँ की तान में तान मिलाकर नाचने लगीं । नाचने लगीं और उनके साथ गाने लगीं । मीर गाना शुरू किया :—

कोई के पिया परदेस बसत है
लिख--लिख भेजैं पाती ।
मेरा पिया मेरे हीये बसत है

ना कहुँ आती जाती ॥
चन्दा जायगा सूरज जायगा
जायगी धरण अकासी ।
पवन पाणी दोनूँ ही जायँगे
अटल रहे अविनासी ॥

वावड का नशा बिलकुल उतर गया। पतित वेश्याएँ आशावान् बनकर मीराँ के साथ अपना रंग बदलने लगीं। डाकू मूढ़ होकर मीराँ को देखते रहे। मीराँ की आँखें उन्मादी थीं। ओठों पर वही स्मित था। संगीत की धुन ने उनके पैर कम्पित कर दिये। मीराँ गाने लगीं और धीरे धीरे शरीर झुलाकर नाचने लगीं। वेश्याएँ मुग्ध होकर एकटक आंखों से नाचती हुई मीराँ को देखने लगीं.......

और सखी मद पी-पी माती
मै बिन पिया ही माती।
प्रेम भठी को मैं मद पीयो
छकी फिरूँ दिन राती ॥
सुरत निरत को दिवलो जोयो
मनसा की कर ली बाती।
अगम घाणी को तेल सिंचायो
बाल रही दिन राती ॥
जाऊंनी पीयरियै जाऊंनीं सासरिये
हरि सूं सैन लगाती ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर
हरि चरणाँ चित लाती ॥

सबसे पहले भजन वेश्याओं ने सँभाला और उसके बाद कोई शान्त शक्ति अदम्य रूप से उन जंगली और खूंखार डाकुओं को खींचने लगी, कहाँ ?

मीराँ के रूप की तरफ़ ? मीराँ की आवाज़ की तरफ़ ? मीराँ के भजन की तरफ ? गिरिधारी जाने। परन्तु प्रेममयी मीराँ का भजन मार्ग बहता शुद्ध स्वच्छ कृष्ण प्रेम हर एक के हृदय को पिघलाने लगा। निर्मल सौन्दर्य मे ऐसी ताक़त हो सकती है ? सर्वलक्षी शुद्ध प्रेम घातक और दुराचारियों के हाथ, पैर और मुँह निश्चल कर सकता है ? मीराँ अपने हृदय में व्याप्त कृष्ण प्रेम के विशाल सागर में से प्रस्फुटित होते हुए स्रोत से नीच, कुटिल, कामी और क्रूर लोगों को उनकी कलंक-कालिमा से अलिप्त रह कर अपने शुद्ध शुभ्र प्रवाह में पवित्र कर सकती है ?

मीराँ ने जब आँखें खोलीं तो सब डोलते और गाते थे—

और भजन पूरा होने पर लगभग सभीने मस्तक झुकाया। मात्र वाघड उसे देखता रहा और अपने आप से पूछता रहा :—

"यह है कौन ? अगर यह स्त्री दो दिन और रह गई तो मेरे धन्धे का दिवाला ही पिट जायगा।"—वाघड विचारने लगा गिरिधारी को छाती से लगा कर पाली की तलहटी में सोते हुए उसने मीराँ को देखा था खंडहर में सोती हुई मीराँ को उसने देखा था और उसने भजन मे उन्मत्त अवस्था पर पहुँच कर नाचती हुई मीराँ को देखा था। अन्धकार का पर्दा दूर होने पर जिस तरह मनोहर वनश्री नज़र आती है, नशा उतरने पर जिस शराबी को हज़ारगुनी मनोवेदना होती है, पागल का पागलपन उतरने से जिस तरह उसे दुनिया और की और ही जान पड़ती है, ऐसा ही वाघड को जान पड़ा। पाप पाप है यह विचार करने का उसे अवसर नहीं मिलता था। उसके कठोर हृदय पर मीराँ ने अधिकार जमा लिया था। सख़्त पथरीली ज़मीन में गहरा घाव करके बारीक किन्तु स्वच्छ झरना बहा दिया था।

भजन पूरा हुआ, सब बिखरने लगे, मीराँ खंडहर की तरफ़ चली गई परन्तु वाघड जहाँ था वहीं बैठा रहा। उसने अपने चरणों में लुढ़कते हुए मदिरा के पात्रों को देखा—कहाँ गया नशा ? कहाँ गई मदिरा ? खंडहर की तरफ एक दृष्टि डाल कर वह विचारों में डूब गया।

सबको जब नींद आने लगी तब वह अधिक जागने लगा..

पौ फटने पर मीराँ जग कर बाहर आई तब भी बाघड ज्यों का त्यों बैठा था। मीराँ को देख कर वह मीराँ पर से नज़र हटाए बिना ही धीरे धीरे उसके पास आया। मीराँ मुस्कराती हुई उसे देख रही थी। वाघड़ ने आकर उसके पैरों में सिर रक्खा और बोला—"मैं तुमको मथुरा ले जाऊँगा।"

"यह क्या वाघड।" मीराँ ने आश्चर्य पूर्वक उसे उठाते हुए कहा।

"मुझे वाघड न कहो। मुझे अच्छा नही लगता।"

"तब क्या कहूँ ?" निर्मल हास्य बिखेरती हुई मीराँ बोली।

"भाई।" वाघड ने कहा।

"एक शर्त पर।" मीराँ उसी निर्मल हास्य से बोली।

"स्वीकार।"

"इन सब को, लोगों को, पशुओं को, धन धान्य को छोड़ दो।"

* ● *

वाघड़ ने सूर्योदय होते ही सब को छोड़ दिया और मुसाफ़िरी का थोड़ा सामान, हँसते गिरिधारी और मूक इकतारे को उठाए हुए मीराँ के आगे आगे मथुरा की तरफ़ चलने लगा।

वाघड़भाई, अभी मेरी समझ में नहीं आया। मेरे साथ पैदल ही मथुरा कैसे चलते हो ?"

"सच बतादूँ ?" वाघड़ ने हँसते हुए गिरिधारी की तरफ़ एक आँख मार कर कहा :—

"तीस प्यालियाँ पीने पर भी मुझे नशा नहीं चढ़ा इसलिए।"

मीराँ हँस पड़ी।

दूसरे दिन पथ-दर्शकों को साथ लेकर ऊदा रखड़ती रखड़ती आ पहुँची, परन्तु बहुत देर करके आई।

एक भी डाकू वहाँ नहीं था। खंडहर वीरान पड़ा था और मीराँ जीवित है इसका एक भी निशान वहाँ नहीं मिला।

ऊदा निराश्रित होकर बैठ गई।

उसे विश्वास हो गया था कि उसकी निर्दोष भाभी ने नदी में ही जल-समाधि ले ली।

प्रेम पराजय

"यह क्या करती हैं, बहिन जी ?"

भूतिया महल में मीराँबाई की पूजा की कोठरी की जमीन को चूमती हुई ऊदा को झट उठाते हुए मेवाड़ की पटरानी बोल उठी।

"भाभी, आज से पहले महल कैसा था ? पिताजी पैर रखते हुए विचार करते और हम बहिन भाई भय के मारे जल्दी से निकल भागते। आज क्या है ? आज यहाँ हँसते गिरिधारी नहीं, नाचती हुई मीराँ बाई नहीं और उनकी खाली जगह को मैं चूमती हूँ ? इससे मैं तुम्हें पागल मालूम देती हूँ ? भाभी, देव पत्थर में नहीं, भावनामें है। इस स्थान का स्पर्श करने से मेरा शरीर काँपता है; हृदय की गहराई में जगी हुई जोत बड़ी हो रही है और उसके उजाले मे मुझे न समझ पड़ने वाली सभी वस्तुएँ समझ पड रही हैं।"

"क्या समझ पडती हैं बहिनजो !" पटरानी ने धैर्य से पूछा।

ऊदाने भूतिया महल को एक बार चारों ओर दृष्टि पसार कर देखा और फिर भाभी की तरफ हँसते हुए बोली:—

"मुझे समझ पड रहा है भाभी कि निर्दोष और सच्चे मनुष्य ही अधिक सताये जाते हैं—भगवान् का यह बड़ा सन्देश है।"

"आप क्या कह रही हैं बहिन ?" रानी आश्चर्य से बोली।

"हाँ भाभी। भगवान् का आदेश। दोषी दंड भोगे यह तो उसका दंड

है, परन्तु निर्दोष भोगे यह उसकी परीक्षा है। सच्ची यातना और झूठे जुल्मों को जो हँसते हँसते सह लेता है वही संसार के समक्ष धीरज और उदारता का आदर्श दृष्टान्त बनता है—वही सच्चा सन्त है। संसार में रह कर संसार-धर्म पालन करते हुए अपने आप को ऊँचे से ऊँचे ले जाने वाले ही सन्त है। मीराँ-बाई सन्त हैं। थीं नहीं, हैं, सन्त के रूप में जीवित हैं। आज मैं ससुराल जाती हूँ। मुझे जरा भी दुःख मानती थी वह तो मेरे अभिमान को सन्तोष देने का एक बहाना था। विक्रम ने उसे पोषित किया और अपनी हविश के लिए मुझे यहाँ बुला लिया। जिन जिन को मैं धिक्कार और घृणा से देखती रही आज मैं उनको प्रेम से देखती हूँ। भाभी, मीराँबाई ने यह सब सिखाया। कुल का कलंक कौन निकालता है यह तो भगवान् एकलिंगजी जानें परन्तु मेवाड के राजवंश को उज्वल करने वाली प्रेममयी मीरां भाभी हैं— इतना, रानीमाता ध्यान मे रखना।"

रानी मूढ की तरह ऊदा की बातें सुनती रही। ऊदा के ऐसे परिवर्त्तन की किसी ने कल्पना नहीं की थी। भाभी को उसने प्रणाम किया और रानी ने उसे आशीर्वाद दिया, परन्तु वह मूढ की तरह अवाक् थी। इसके बाद ऊदा राणा विक्रम के पास गई और उनकी चरण रज लेकर रथ में बैठी और ससुराल जाने लगी।

रानी के पेट मे मानो कोई लोहे की कीलें गाड़ गया। मीराँ की तरफ उसका हृदय भीतर भीतर झुका था इसका कारण भक्ति नहीं, भय था। स्वार्थ ही रहनेवाली रानी के हृदय मे ऊँचा उडने की शक्ति नहीं, परन्तु एक बात उसे दीपक की तरह प्रतीत हुई; लोग भले ही उसके पति को न मानते, सरदार भले ही झुककर "जो आज्ञा" कहकर राणा के पास आते, भले ही मीराँ के भक्तों ने प्रजा में यह हलकी-फुलकी अफवाह उड़ा दी थी कि भक्त का प्राण लेने से मेवाड़ की राजलक्ष्मी, यश और वीरता मेवाड छोड़कर जाने लगे थे, भले ही यह सब कुछ सत्य हो परन्तु इसकी उसे परवाह नहीं थी। वह अपने पति के पक्ष में ही थी। परन्तु, एक ही बात उसके हृदय का मन्थन कर देती और

उसका जीवन निरर्थक किए दे रही थी वह बात थी, उसकी कोख से उत्पन्न होने वाले दोनों पुत्रों की मृत्यु और अभी तक एक भी पुत्र का मुँह नहीं देखना।

परन्तु राणा विक्रम को चिन्ता नहीं थी। मीराँ की मृत्यु के बाद तो विक्रम की स्थिति विचित्र हो गई। अभी तक मीराँ उसके मन में ही रहती थी। अब नियमित रूप से स्वप्न में आती थी। प्रसंग-प्रसंग उसके सुर बजते थे। ऊँची ठेकरी पर से पानी में गिरते समय की मीराँ की काल्पनिक चीख़ उसे कई बार सुन पड़ती। कभी खाते, कभी हँसते, कभी सोते राणा डोल उठता और दूसरे ही क्षण उसके क्रोध की मात्रा बढ़ जाती। परन्तु क्रोध कहाँ और कैसे निकालना इसका रास्ता उसे नहीं मिल रहा था और आख़िर-कार उसका असर उसके शरीर पर और शरीर से भी अधिक मन पर होने लगा। जब दरबार में बैठा रहता तो राणा अपने आपको सबकी नज़र मे खूनी महसूस करता। उसे कई बार भास होता कि उसके प्रजाजन चतुःसहस्र मुखों से उसकी निन्दा कर रहे हैं......परन्तु उसका मन यह मानने को तैयार नहीं होता कि उसने भूल की है। हाँ, दण्ड कुछ अधिक कठोर था। परन्तु उसने थोड़े कोई मीराँ को धक्का मारकर पानी मे गिराया था? फिर मीराँ कोई बड़ी भक्त थी। इसने अपने पति के प्राण नहीं लिये? इसके आने के बाद राजकुटुम्ब की गिरावट नहीं हुई? अस्सी अस्सी घाव सहनेवाला राणा साँगा इसके विवाह के बाद ही रणक्षेत्र में नहीं हारा? ऐसी स्त्री मर भी गई तो क्या? और राजा राम को भी दुःखी करनेवाली प्रजा का फिर विश्वास कैसा? मैंने केवल अपने धर्म का पालन किया है और बराबर किया है—राणा अपनी रानी को इन शब्दों से दबाने लगा और रानी यह सोचकर कि यों कहने से इनके मन को तसल्ली होती होगी, पति की बात सहन करने लगी।

परन्तु, आज रानी ने उसे छोड़ा नहीं।

"कल मीराँबाई के जन्म की संवत्सरी है। कल से मीराँबाई का वृन्द

किया हुआ मन्दिर खुला दें और भूतिया महल लोक-कल्याणार्थ धर्मादे कर दें।" रानी ने बहुत विनम्रता से कहा।

"क्यों ?" राणा ने लाल सुर्ख आँखें करके रानी से पूछा। "तुझे भी भूत लग गया है ?"

"हाँ, राणा ! मीराँबाई का भूत।"

"बोलना बन्द कर।"

"मेरे स्वामी, सुनो। अगर स्वजन का बोल कड़वा हो तो भी सुनना चाहिए। मै तो आपकी चरणदासी हूँ। आपकी भलाई के सिवाय मेरे जीवन मे और कुछ हो ही नहीं सकता इसलिये सुनो। प्रजा कहती है—साधु सन्त कहते हैं, ऊदा बहिन कह गई हैं. "

"क्या कह गई हैं ?"

"मीराबाई की पवित्र आत्मा मेवाड़ के चारों ओर आर्तनाद करती हुई फिरती है। लोग लज्जा छोड़ें तो..."

"प्रजा का कहा मानने से लज्जा रहती नहीं जाती है। मै इस दुराचार के स्थान को भगवान् के नाम से नहीं खोल सकता। प्रजा को मेरा कहा मानना पड़ेगा। मेरी इच्छा के आधीन रहना पड़ेगा। मुझे पश्चात्ताप नहीं। उल्टे, मेरे हृदय को शान्ति है। फिर यह कुकर्म करने की ज़रूरत ?"

"नाथ, मेरी तरफ़ देखो और हृदय पर हाथ रखकर अपने आपको ही पूछो :—

आपको सचमुच शान्ति है ? सारे राजवंश में आपका उत्तराधिकारी है ? आपका कोई पुत्र जीवित नहीं रहता। जो थे उन सबने रास्ता लिया। कारण ? जानते हैं ? मेरे नाथ ! सती का शाप न देने पर भी लगता है। मेवाड़ के राजवंश के लिए ही, जिन जिन की भूल मालूम होती हो उन्हें उदारता पूर्वक क्षमा कर के, हजारों के हृदय को शान्ति देने के लिए आप मन्दिर खुलवा दें।

प्रजा के ऊपर गये हुए मन नीचे लौट आयेंगे और आप एक भारी कलंक से बच जायँगे।

"जो गया वह गया। उसकी चिन्ता अब व्यर्थ है। मीराँ भाभी ने अपने हाथ से आत्मोत्सर्ग किया—सुखी हुई। आत्महत्या करने वाले के सिर कलंक लगता है, एकलिंगजी के दीवान के सिर नहीं।"

"परन्तु लोग कहते हैं......"

"लोग क्या कहते हैं ?"

"मौत से मैं डरती नहीं, क्षत्राणी हूँ। जो करना हो सो कर लेना। लोग कहते हैं कि आपने मीराँ बाई को मार डाला, आपने ही नारी हत्या करके कलंक लिया......मेवाड़ की दुर्गति......"

"चुप !" राणा महल को कँपा देने वाली गर्जना कर उठा। राणा सचमुच निर्बल हो गया था। रानी स्वयं डर गई। बिजली की कड़क होने के बाद जो शान्ति फिर लौट आती है वैसी ही शान्ति से राणा फिर धीमी आवाज़ से बोला—"कौन कहते हैं......कौन कहते हैं ?"

"सब कोई कहते हैं !"

रानी बोली। राणा सहम उठा। खड़ा होकर कुछ देर वह स्थिर रहा और फिर एकदम रानी के पास आकर बोला :—

"हाँ, मैंने मार डाला है। कहला दो सबको कि मैंने मारा है। डौंडी पिटवा दो—क़ासिद भेज दो और प्रजा को जतला दो कि मैंने मीराँ को मार दिया है, और साथ साथ यह भी ज़ाहिर कर दो कि उसका पक्ष लेने वाले प्रत्येक को मैं मार डालूँगा। पत्नी, पुत्र, स्वजन किसी को नहीं छोड़ूँगा। मेवाड़ का राणा हूँ। मेरा फ़र्ज अदा करने के लिए किसी को भी नहीं छोड़ूँगा। सबको मार डालूँगा; परन्तु जो मैं निश्चय करता हूँ वही होगा और वही उत्तम है।—यह हरएक को मानना पड़ेगा।"

इतना कह कर उसने क्रोध से तलवार खींची..... इतने में दासी ने आकर अर्ज़ की : "पुरोहितजी आज्ञा मांगते हैं, किसी ज़रूरी काम से पधारे हैं।"

"आने दो।" आधी निकाली हुई तलवार को म्यान मे रख एक ओर डालते हुए राणा ने कहा।

पागल की तरह पुरोहित ने हडबडी मे प्रवेश कर थोडे से शब्दो में ही महाराणा को आशीर्वाद दिया और फिर ऊँचे चढ़ते हुए श्वास से बोलने लगा, "राजराजेश्वर ! मीराँ बाई ने तो सारी मथुरा को पागल बना दिया है।"

"क्या कहते हो ?" राणा ने आँखें फाडते हुए कहा। "मीराँ अभी जीवित हैं ? इतनी ऊँचाई से गिरा हुआ मनुष्य जीवित रह सकता है ?"

"मनुष्य नहीं रह सकता। संत रह सकता है।" पुरोहित ने दीर्घश्वास उत्तर दिया।

"पुरोहित, तेरी भी अक्ल फिर गई है क्या ?" पुरोहित के शरीर पर उतारू होते हुए राणा बोला।

पुरोहित अडिग रहा और बोला —

"फिर गई है अन्नदाता ! पाँच पाँच वर्ष से हम लोगों को हैरान करने वाला वाघड जैसा नर-राक्षस भक्त बन गया; भक्ति से डरने वाले अनेक नर-नारी निडर होकर प्रभुप्रेम मे मस्त होने लगे। यह चमत्कार नहीं ?"

पुरोहित इतना प्रश्न पूछ कर स्वयं ही उत्तर देता हुआ बोला . "नहीं, यह चमत्कार नहीं, अनहद प्रेम की प्रतिभा है। इस प्रतिभा मे मैं फँसा—फिर गया। अन्नदाता एक खानगी बात कहता हूँ। मीराँ बाई तो अवतारी व्यक्ति हैं। वे अमानुषिक जोर अत्याचार और मानसिक पतन में पतित हुई जनता को जाग्रत करने को आई हैं। मानो चाहे न मानो परन्तु महाराज जिन्दगी की सच्ची मस्ती उनके सानिध्य में ही अनुभव होती है।"

"अब हद हो गई नाथ, मेरी विनति स्वीकार करें।" रानी ने याचना की।

"नहीं, नही, नहीं। मन्दिर नहीं खोला जा सकेगा।" राणा ने क्रोध में

सुनहरे झूले पर हाथ फटकारते हुए कहा, "इतना ही नहीं, आज से यह भक्तिन अगर मेवाड में पैर रख देगी तो वह जहाँ होगी मैं खुद वहीं जाकर उसको मारूँगा।

इतना कहकर वह राजदरबार की तरफ़ जाने लगा। रानी और पुरोहित देर तक राणा को देखते रहे। फिर रानी धीरे से पुरोहित के पास आई और धीमी आवाज़ से बोली, "मथुरा से मीराँ बाई वापस आ जायँ तो मुझे कहना। वे जहाँ होंगी वहाँ मैं खुद जाकर उन्हें यहाँ ले आऊँगी।"

'बाईजी; आप मौत को निमंत्रण दे रही हैं, हो।" पुरोहित ने सहानुभूति भरी चेतावनी दी।

"पुरोहितजी! मौत हमें निमंत्रण दे इसकी अपेक्षा हम मौत को निमंत्रण दें यह अधिक अच्छा नहीं? जाओ, कहती हूँ उसे ध्यान में रखना। मीराँ बाई के बिना मेवाड़ उजाड़ बन जायगा।" इतना कहते कहते रानी, न जाने क्यों फीकी पड़ गई।

यही व्रजभूमि ?

यह वही व्रजभूमि है, जिस पर खेलते-फिरते यदुनन्दन ने लोगों को मुरली से मुग्ध बनाया था—यह वही पवित्र भूमि है जहाँ पूतना जैसी राक्षसियाँ और बकासुर, शकटासुर जैसे राक्षस प्रभु लीला से नष्ट हुए थे। यह वही पवित्र भूमि है जहाँ स्वर्गाधिपति इन्द्र और पातालपति शेषनाग का गर्व खंडन हुआ था। यह वही प्रेमभूमि है जहाँ गोपियाँ और गायें निर्दोष गोपों के साथ जीवन का दधि अमृत पीते-पीते कृष्ण और कृष्ण की वंशी के पीछे पागल बनते थे। हाँ, हाँ, यह वही प्रेरणाभूमि है जहाँ प्रकट पुरुषोत्तम श्री कृष्ण ने अनेक पापों और पापियों से भारी पृथ्वी को हलकी करने के लिए शिक्षापाठ लिये और दिये।

सदियों पहले यहाँ कंसराज राज्य करता था। अभी भी उसकी क्रूरता के अवशेष बहुत क्षीण स्थिति में जहाँ तहाँ दृष्टिगोचर होते हैं। मदान्धता और निर्दयता गुप्तरूप से अभी भी यहाँ जीवित है। ज़हर और ईर्ष्या अभी तक गये नहीं। लोभ-लालच जितने थे उतने ही हैं। गोपाल की भूमि में मनुष्य मानवता भूलता हुआ जान पड़ता है और जानवर अपने आप को। ऐसा लगता है कि भगवान रूठे हैं। तभी तो यहाँ से द्वारका चले गये ! नहीं तो, हजारो यात्रियों के पैरों से रौंदी जाने वाली भूमि में अभी भी निर्धनता, कंगाली और पाप क्योंकर लुके-छिपे बच रहे हैं ? ऐसी निराशा मे......

इसी व्रज की एक छोटी गली मे से निरुत्साह और दुःख को दूर करने वाली, चेतना प्रेरित करने वाली और प्रेम से गूँजती हुई आवाज़ आती है :—

या व्रज में कछु देख्यो री टोना ॥
ले मटकी सिर चली गुजरिया
आगे मिले बाबा नंदजी के छौना ।
दधि को नाम बिसरि गयो प्यारी
'ले लेहु री कोउ स्याम सलोना' ॥
वृन्दावन की कुंजगलिन में
आँख लगाय गयो मनमोहना ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
सुन्दर स्याम सुघर रस लोना ॥

कौन है यह ?

तैलंगाना और दक्षिण से आये हुए कोई यात्री बंगाल और बिहार के कृष्णभक्त यात्रियों को पूछते हैं। दोनों ही एक दूसरे की भाषा नहीं समझते परन्तु कृष्ण का नाम समझते हैं—आनन्दित हो हो कर गली की तरफ़ नज़र करते हैं और एक मथुरावासी बोल उठता है—

मीराँ बाई...मीराँ बाई

यात्री भाव पूर्वक देखते रहते हैं। पता नहीं किस तरह परन्तु पन्ना और काशी मथुरा आ पहुँची हैं और उनके आगे मीराँ बाई मन्द मन्द मुस्कराती हुई चली आ रही हैं। पीछे वावड़ है और वावड़ के पीछे वृन्दावन वासियों का एक छोटा-सा दल चला आता है। कीर्तन का सामान हर एक के हाथ में है। मीराँ व्रज के कृष्ण की गोपी बन कर मग्न है। उसकी वाचा और हृदय को भान नहीं रहता। कोई वृक्ष देख कर उसे कदम्ब याद आता है। कोई गोप देख कर उसे कृष्ण याद आते हैं। उसकी कल्पना तीव्र होकर पाँच पाँच हजार वर्ष पीछे जाती है और जैसे कि मानो अभी ही कोई शरारत कर के दौड़ गया हो, इस तरह कन्हैया को ढूँढ़ती हुई, हर्षाती, शर्माती, दुःखी होती प्रसन्न

होती मीराँ चल रही है। उसके शरीर में प्रभु के सौभाग्य चिह्न हैं । कलाई पर कंकण की जगह रुद्राक्ष के कंकण हैं। बाजूबन्द हैं, परन्तु माला के। सिर पर सौभाग्य चिह्न है परन्तु सिन्दूर का नहीं, गोपीचन्द का। गले में मंगलसूत्र की जगह तुलसी की बारीक माला हृदयपट पर खेल रही है।

मीराँ का वदन पुलकित होता है। एक कोयल सिर के ऊपर से उड़ती हुई जाती है। कोई मोर दूर की पहाड़ी मे बोलता है। एक घर में बँधे हुए तोतामैना बोलते हैं और दूसरी तरफ़ नन्हें बछड़ो से घिरी हुई गायें मीठी मीठी रँभाती हुई सिर डुला रही हैं। मीराँ का भी सिर डोलता है, हृदय डोलता है :—

आली ! म्हाँनें लागे बृन्दाबन नीको !

घर घर तुलसी ठाकुर पूजा
दरसण गोबिन्द जी को ॥

निरमल नीर बहत जमुना में
भोजन दूध दही को ।

रतन सिंहासण आप बिराजै
मुगट धर्यो तुलसी को ॥

कुंजन कुंजन फिरत राधिका
सबद सुणत मुरली को।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
भजन बिना नर फीको ॥

द्रविड़ लोग भजन से आकर्षित होकर सन्त-साधुओं के इस नन्हें दल में शामिल होते हैं। बंगाली और बिहारी मीराँ के पीछे हो जाते हैं। एक बंगाली बंगला मे बोलता है, कहाँ जायँगे भक्ति बाई ? बिहारी कहता है, बड़े मन्दिर पधारती है ? एक गुजराती साथ साथ चलता है, बोलने की इच्छा होती है

परन्तु बोलता नहीं। मीराँ की दृष्टि सुदूर फैले हुए पानी पर पड़ती है। आकाश को प्रतिबिम्बित करती हुई कालिन्दी उसकी दृष्टि के आगे झूमती है। उसकी आँखों में पानी भर आता है और उसके ओंठ काँपते है उसे वापस भान होता है कि यह कालिन्दी नहीं। कुछ निराशा होती है परन्तु हृदय का आवेश कम नहीं होता। ओंठ पुन: काँप उठते है :—

चालो मन गंगा-जमना तीर ॥
गंगा जमना निरमल पाणी
सीतल होत शरीर ।
बंसी बजावत गावत कान्हो
संग लियाँ बलबीर ॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे
कुंडल झलकत हीर ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर
चरण कँवल पर सीर ॥

मीराँ आवेश में सिर नीचा कर देती है। चैतन्य प्रेमो बंगाली आँसू भरता है। बिहारी निःश्वास डालता है। गुजराती देख रहा है। संघ मीराबाई का भजन गाता है और और तन्मय होता है। संघ आगे बढता है। सवेरे का दोपहर और दोपहर की शाम होती है। धीरे धीरे आकाश घिर जाता है—पवन तीव्र होता है, भगवान के पुराने मन्दिर से कुछ ही दूर दोपहर की निवृत्ति के बाद संघ आराम ले रहा है। एक वृक्ष के नीचे अभी अभी एक आँध्रवासी भगवान् का कुछ पारायण कर चुका है।

"वासुदेवः पुमानेकः स्त्रीमयमितरज्जगत् ।*" अभी वह रटता रटता भीतर पोथी के पन्ने जमा रहा है।

---

* संसार में वासुदेव एक ही पुरुष है, अन्य लोग स्त्रीमय है। (गोपी भाव में)

मीराँ तल्लीन होकर विचार कर रही है और उसकी नज़र आकाश की तरफ़ जाती है। आन्ध्रभक्त, आकाश मे देखकर पोथी झटपट समेटकर बाँधने लगता है। मीराँ को अभी सुनी हुई कृष्णजन्म की रात याद आती है और उसका हृदय डोल उठता है:—

नँद नँदन बिलमाई, बदरा ने घेरी माई॥
इत घन गरजे उत घन गरजे,
चमकत बिज्जु सवाई।
उमड घुमड़ चहुँ दिसि से आया,
पवन चले पुरवाई॥
दादुर मोर पपीहा बोले,
कोयल सबद सुणाई।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
चरण कँवल चितलाई॥

प्रत्युत्तर में पवन जोर पकड़ता है...आकाश सारा घिर जाता है। संघ के लोग झट खडे होकर समीप की धर्मशाला को तरफ़ दौड़ते हैं— पन्ना और काशी मीराँबाई को खींच लाती हैं। बरसात झिरमिर झिरमिर शुरू होती है। मीराँ का हृदय धडक उठता है। उसे प्रतीत होता है कि उसका गिरिधर नागर उसके शब्दो का जवाब दे रहा है। मीराँ आनन्द मे नाच उठती है और गाने लगती है:—

बरसै बदरिया सावन की।
सावन की मन भावन की॥
सावन मे उमग्यो मेरो मनवा
भनक सुनी हरि आवन की।
उमड़ घुमड चहुँ दिसि से आयो

दामण दमके झर लावण की ॥
नान्हि नान्हि बूँदन मेहा बरसै
सीतल पवन सुहावन की ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
आनँद मंगल गावन की ॥

मीराँ हरि के आने की 'भनक' सुनती है ।

तो भी, हरि नहीं आते । कुछ ही क्षणो में ताज़ी श्रावणी वर्षा ठहर जाती है और इसके बाद मोर आक्रंद करते हुए सुन पड़ते हैं ।

मीराँ निराश होती है । हरि नहीं आए ? नहीं दीखते ?

मीराँ का हृदय भारी हो जाता है । वस्त्र बदलकर संघ महा भगवान् के मन्दिर जाने को निकलता है । पद्मा, काशी और वाघड़ से सुरक्षित हुई मीराँ भी थके पाँव उठाती है—प्रभु के मन्दिर की तरफ़ ।

दिन मे मीराँ गोकुल, मथुरा और वृन्दावन की भूमि में फिरती है । गोवर्धन पर्वत और कालिन्दी का तीर देखते देखते वह थकती नहीं । कृष्ण को याद करते करते उसने वन-उपवन छान डाले हैं—परन्तु मीराँ को चैन नहीं । मात्र पद्मा, काशी और वह गुजराती इसे जानते हैं । गुजराती वृद्ध है । मीराँ की उसे लगन लगी है; परन्तु उसके सिवाय समस्त भक्त मंडल मीराँ के भजनों में और मीराँ के वार्तालाप में अनहद आनन्द पाते हुए वृन्दावन की यात्रा सफल करता है ।

दर्शन की बाढ़ देखते हुए मीराँ और उसकी सन्तमंडली मन्दिर की अन्तिम पौड़ी पर बैठी है । मीराँ के समीप से कोई आने-जाने वाला, उसके राजस्वरूप को देखकर, कुछ देर रुकता है, देखता है और आगे बढ़ता है । वाघड़ मीराँ को देखता हुआ बैठा है । वह गुजराती मीराँ के मुँख पर बदलते भावों को ताकता हुआ दूर बैठा है । पद्मा धीरे से पूछती है —"बाईजी, क्या विचार कर रही हैं ?" पद्मा ने यह पहली बार ही प्रश्न नहीं किया । बरसात

बन्द होने के बाद अब तक उसने और काशी ने कई बार यही प्रश्न पूछा है। उनको भय है, मीराँ बाई को कुछ होगा तो नही !

पन्ना और काशी की चिन्ता मीराँ जान जाती है। स्नेहभरी आँखों से उनकी तरफ़ देखकर मीराँ कहती है—नही, गाते हैं। वे जो कुछ बोलते हैं, वह उस व्रजभूमि मे गीतमय होकर ही सुनाई देता है !

बरजी मैं काहूकी नाँहि रहूँ ।
सुणो री सखी तुम चेतन होय कै
मन की बात कहूँ ॥
साध सँगति कर हरि-सुख लेऊँ
जगसूँ दूर रहूँ ॥
तन धन मेरो सब ही जावो
भल मेरो सीस लहूँ ॥
मन मेरो लागो सुमरण सेती,
सब का मैं बोल सहूँ ॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
सतगुर सरण गहूँ ॥

"हम मूढ़ अज्ञान ! बाई जी, सच बताओ ?"

काशी सहज साधारण भाव को दबा कर रुँधे हुए कंठ से मीराँ को पूछती है। "आप क्या विचार करती हैं ?"

मीराँ शीघ्र हँस पड़ती है। "मन्दिर की पौढ़ी पर एक ही विचार होता है काशी !—प्रभुमिलन।"

"तो भगवान् यहाँ कब मिलेंगे ?" काशी आशा छोड़ कर पूछती है।

"नहीं मिलेंगे ?" सिर हिला कर पन्ना पूछती है।

पन्ना के पास चुपचाप बैठा हुआ वृद्ध गुजराती, 'हाँ' में उसकी तरफ़

देखता है। मीराँ मस्तक नीचा करती है। फिर धीरे से लगभग अपने ही को उद्देश कर पद्मा को जवाब देती है:—

नहीं मिलेगा। कन्हैया मुझसे यहाँ मिलने को इन्कार करता है। नदी, पर्वत, वन, उद्यान मे भी मिलने से इन्कार करता है। कहाँ मिलने की इच्छा है और कब मिलने की इच्छा है यह समझ नहीं पड़ता। इसे यों ही नटखट थोड़े कहते हैं। बचपन से चिल्लाती आ रहीं हूँ, विनती करती हूँ, मनाती हूँ कि एक बार केवल एक बार दर्शन दे परन्तु अभी परीक्षा पूरी नहीं हुई। मेरा प्यारा अन्तरिक्ष मे खड़ा खड़ा सुनता है, सब सुनता है परन्तु जवाब नहीं देता।''

कहते कहते मीराँ सिर ऊँचा कर अन्तरिक्ष मे आकाश की तरफ़ देखती है।

"न दे कन्हैया—जवाब न दे। परन्तु मैं जानती हूँ कि तुझे मेरी इच्छा को पूरा करना पड़ेगा और तब तक तेरी चरण रज में असंख्य स्वर्ग देखने वाली मै तेरी प्रतीक्षा करती हुई खड़ी हूँ—फिरती हूँ, फिरती रहूँगी।" मीराँ की आँखो में इतना कहते ही आँसू आ जाते हैं। मन्दिर के घंटे बजते हैं तुरन्त आवाज आती है—"गोवर्धनलाल की जै।" यात्री गण उतावल में दर्शनार्थ भीतर घुसते हैं। मीराँ भी धक्के खाती हुई, इधर उधर होती हुई अन्दर जाती है।

सामने ही गोपालमूर्ति हँसती-मुस्काती खड़ी है। मीराँ को अपना नन्हा गिरिधारी बड़े स्वरूप में दीखता है। आरती और घंटानाद मे सबकी आवाज़ डूब जाती है। तालबद्ध बजने वाली झाँझ और नगारों में मीराँ मूर्ति को देख रही है। उसका हृदय पूर्ण विचूर्ण होता है। मीराँ की आवाज़ बाहर आती है; परन्तु कोई सुन नही सकता। मीराँ का हृदय गुनगुनाता है :—

घड़ी एक नहीं आवड़े तुम दरसण बिन मोय।
तुम हो मेरे प्राणजी, कासूँ जीवण होय॥

घान न भावै नींद न आवै बिरह सतावे मोय।
घायल-सी घूमत फिरूँ रे मेरो दरद न जाणे कोय॥

आरती रुकती है। गिरिधारीलाल जी की अनेक बार "जै जै" होती है, परन्तु प्रभु की अपनी मीराँ गाती रहती है। दर्शनार्थ आने वाले भक्त शान्त हो कर मीराँ की तरफ़ देखते हैं। आँखें बन्द कर मीराँ गा रही है:—

दिवस तो खाय गमाँइयो रे, रैण गमाई सोय।
प्राण गँमाया झूरताँ रे, नैण गमाया रोय॥

"ठीक! ठीक!" भक्त लोग सिर हिलाते हुए अनुमति देते हैं।

जो मैं ऐसी जाणती रे प्रीत कियाँ दुःख होय।
नगर ढँढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोय॥

"हरि! हरि!" भक्तजन बोल उठते हैं। मीराँ का हृदय खिलता जाता है।

कागा सब तन खाइयो, चुन चुन खइयो माँस।
दो नयना मत खाइयो, पिय देखण की आस॥

"ओहो! ओहो!" एक वृद्ध रो पड़ता है। गुजराती गद्‌गद् हो जाता है। मीराँ कहती जाती है:—

कागा नैन निकार के लेजा पी के द्वार।
पहले दरस दिखाइ के, पीछे लीजे खाय॥

"धन्य! धन्य!" भक्त बोल उठते हैं। गुजराती उठ कर मीराँ के चरण छूता है। छूते हुए अपने आँसुओं से मीराँ के चरण पखारता है। मीराँ

को सुध नहीं थी—उसे सुध आती है। आँखें खोल कर गोपालमूर्ति को देखती है और गद्गद् कंठ से याचना करती है —

पंथ निहारूँ डगर बुहारूँ, ऊभी मारग जोय।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलियाँ सुख होय॥

मीराँ की जय पुकारता हुआ छोटा-सा संघ गूँज उठता है। अन्य भक्त जयजयकार मे साथ देते है। मीराँ बेहोश होकर पन्ना और काशी के हाथ मे से छूट कर वाघड भाई के सशक्त बाहु मे पड़ती है......

मीराँ आँख खोलती है तो अपने विशाल मन्दिर के मंडप के एक कोने में पड़ी हुई देखती है। आस पास भक्त भरे बैठे हैं। गुजराती पानी लिये खड़ा है, पन्ना हवा कर रही है, काशी पैर सहलाती है। इसी बीच दर्शन करती हुई मंडप की सारी स्त्रियाँ एक साथ मुँह फिरा कर घूँघट निकाल उसके पास आ खडी होती हैं।

"क्या है ?" मीराँ आश्चर्य से बैठी होकर पूछती है।

"जीवा गोसाईं पधारते हैं। किसी स्त्री का वे मुँह नहीं देखते।" एक आदमी कहता है।

"क्यों ?" मीराँ कौतूहल से पूछती है। जीवा गोसाईं का नाम उसने खूब सुना है। समर्थ गुरु माने जाते हैं। उनसे मिलने की इच्छा उसमें जग चुकी है।

"ये पुरुष हैं—परम वैष्णव हैं।" पास खड़ा हुआ गोसाईं का नया शिष्य प्रभाकर सहज ही मुँह चढा कर कहता है।

"स्त्रियाँ वैष्णव नहीं ?"

प्रभाकर चुप है।

"भगवान के मन्दिर में एक भक्त दूसरे भक्त से मुँह मोड़े ?" मीराँ फिर पूछती है।

"भगवान् इनको रोकते क्यों नहीं ?" वाघड़ झुँझला कर कहता है।

"भगवान् धर्मात्मा को भी नहीं रोकते, पापात्मा को भी नहीं रोकते।" मीराँ जवाब देती है।

"कैसे ?" गुजराती पूछता है।

"उनका पुण्य या उनका पाप ही उनको रोक लेता है।" मीराँ कहती है।

"तब गोसाईं जी स्त्रियों से क्यों दूर रहते हैं ?" एक दक्षिणी पूछता है।

"स्त्रियाँ सचमुच खराब हैं—एक आपके सिवाय।" गोसाईं का भक्त बिहारी कहता है।

"स्त्रियाँ खराब ही होतीं तो भगवान् कृष्ण कैसे स्वीकार करते ? राधा के बिना कृष्ण और गोपी बिना कान्ह कैसे होते ?—राम और सीता, शंकर और पार्वती, कृष्ण और राधा, ब्रह्मा और ब्रह्माणी। भगवान ने किसी दिन स्त्री जाति को अपने से दूर नहीं रक्खा।"

मीराँ इतना कह खड़ी होकर गोसाईं के पास पहुँची, इससे पूर्व तो जीवा गोसाईं अपने शिष्यों सहित मन्दिर की अन्तिम सीढी से उतर चुकता है। वाघड़ अपनी खूँखार आँखों से जीवा गोसाईं को देख रहा है। मीराँ उसके पास जा कर हँसकर कहती है" वाघड़ भाई, तलवार के लिए हाथ छटपटाता है क्या ?"

"अरे हो तो एक झटके में इस बूढे का सिर धड़......" क्रोध से कहते कहते वाघड़ रुक जाता है और मीराँ के मुस्कराहट भरे मुँह को देखकर ठंडा पड जाता है। उसे महसूस होता है कि मीराँ बाई उसको परीक्षा ले रही है।

"भाई, तुम जिसे अपना मानते हो उसे सभी लोग अपना मानें यह तुम्हारा कैसा दुराग्रह !" मीराँ कहती है।

वाघड़ सहम जाता है। जिसे वह पवित्र मानता है ऐसी सन्त मीराँ का यह बूढ़ा मुँह भी न देखे। जिसके सुन्दर मुख दर्शन से लोग पवित्र विचार

ही करने को प्रेरित हों उसकी तरफ़ यह बूढ़ा घृणा रखे ऐसा मनुष्य पृथ्वी पर ख़ास कर इस स्थान पर जीवित नहीं रहना चाहिए। परन्तु उसकी जाग्रत हुई हिंसकवृत्ति मीराँ के शब्दों से शान्त हो जाती है। मीराँ हँसकर जाने लगती है।

"कहाँ चलीं, बाई?" अभी अभी बेसुध हो कर पड़ी हुई मीराँ की चिंता करते हुए वाघड़ कहता है।

भक्त से मिलने।" मीराँ जवाब देती है और उतावल से चलने लगती है। वाघड समझता नहीं।

फिर पूछता है,

"कहाँ?"

"भगवानसे मिलने।" मीराँ हँसकर बोली।

"हैं" यात्री गण चौंक कर देखते हैं।

"जहाँ भक्त वहीं भगवान्। भगवान् तो भक्ताधीन हैं—भक्त के यहीं मिलेंगे। आखिर पता–ठिकाना मिला। चलो... "

"परन्तु कौन से भक्त?" भक्त पूछते हैं।

"ज्ञानी—जीवा गोसाईं!"

सभी कुछ देर स्तब्ध होकर खड़े रहते हैं फिर मीराँ के पीछे पीछे तेज चाल से चलने लगते हैं।

भव्य हवेलियों से थोडी ही दूर एक छोटे–से झोंपड़े में कृष्णोपासना करनेवाला जीवा गोसाईं बहुत सादा जीवन बिताता है। कठोर व्रत लिए है और कठोर व्रत शिष्यो से लिवाता है। समर्थ विद्वान् और ज्ञानी है। ऐसा कहा जाता है कि इसके पास रह कर कथीर भी सोना हो जाता है। वृन्दावन में विहार करने वाले कृष्ण जितने पूज्य माने जाते हैं, उनकी दूसरी ही श्रेणी में मात्र एक जीवा गोसाईं पूजा जाता है। संसार में रहकर जीवन में प्रत्यक्ष

संसार से अलग रहने का कठोर नियम-पालन उसकी झोपड़ी मे और उसमें दीखता है—भागवती है। वेदाध्ययन रात-दिन करता है। अमुक समय में गुणीजन को उपदेश भी देता है और उपदेश ग्रहण करने वाला धन्य होकर झोंपडी से बाहर भी निकलता है।

ऐसे, रजोगुण और तमोगुण को अपने से दूर रखनेवाले प्रतिभा सम्पन्न गुरु के झोपडे के आगे मीराँ अपनी छोटी-सी मंडली लिए खडी है। मंडली मे स्त्रियाँ ही अधिक हैं और सबसे आगे मीराँ है।

स्त्री, पुरुष को जीतने आई है।

गोसाईं का शिष्य प्रभाकर मुँह फाड़े देख रहा है। अब भी उसे विश्वास नहीं होता। इस रास्ते पर वर्ष भर में कभी एकाध वक्त ही कोई स्त्री गोसाईंजी के झोपडे के आगे खडी रहने की हिम्मत करती है—तो यहाँ दो, पाँच, दस.....प्रभाकर को कमजोर आँखों के आगे सारे वृन्दावन की पनिहारिनें उमडी दीखती हैं। वह धीरे-धीरे मीराँ की तरफ़ आता है—मुँह फाडकर, आँखें ज्यों की त्यों स्थिर रखकर प्रभाकर मीराँ के पास आता है। पसीने से तर होते हुए भी प्रफुल्लवदना मीराँ खड़ी है और उनके पीछे उनकी छोटी मंडली मे कोई मंजीरे, कोई मृदंग, कोई एकतारा तो कोई झाँझ लिए खडी हैं। आसपास के पड़ोसी मीराँ की भक्त मंडली को देखकर खिंचे चले आ रहे हैं। भीड बढ़ती देखकर प्रभाकर घबराता है......बिना कुछ कहे ही वह झोपडी में दौडता है और गोसाईंजी के पैर पकडकर कहता है ."एक नहीं, दो नहीं, पच्चीसो स्त्रियाँ हम लोगों के यहाँ बढ आई हैं और उनकी सरदार सबको घबराती हुई आगे खडी है।

"पूछ आ उन्हें—क्यों आई हैं ?"

प्रभाकर हाँफकर भागता हुआ मीराँ के पास आता है और पूछता है, "कैसे आई हैं ?"

"गोसाईंजी के दर्शन करने।"

प्रभाकर हाँफता हुआ पुनः झोपडी मे आकर सन्देश पहुँचाता है। गुरु कहते हैं:—

"जा कह, दर्शन तो भगवान के होते है·— मैं स्त्रियों को नहीं देखता।" प्रभाकर हाँफता हुआ फिर दौडकर आता है। उसे अब दौड़ना पसन्द हो पडा है। नम्रता से प्रभाकर कहता है।

"स्त्रियों को मैं देखता नहीं। मैं यानी मैं नही, मेरे गुरुजी।"

मीराँ हँस देती है। कहती हैं "जाओ, मेहरबानी करके इतना कह आओ:—

वासुदेवः पुमानेकः स्त्रीमयमितरज्जगत्।※— तोभी आप व्रज में रहकर अभी तक पुरुष हैं?

जीवा गोसाईं योगवासिष्ठ की पुस्तक खोलने को तैयारी में हैं। इसी बीच प्रभाकर आ पहुँचता है और घबराते घबराते सन्देश कहता है:— वासुदेवः पुमानेक; स्त्रीमयमितरज्जगत्।—तोभी आप व्रज मे रहकर अभी तक पुरुष रहे हैं?

वैष्णव गुरु जीवा गोसाईं बैठे बैठे सीधे हो जाते हैं। शिष्य उनका मुँह देखकर घबराते हुए उल्टे पैरों चलने लगता है। गोसाईं के दाये हाथ में पोथी की डोरी ज्यों की त्यों रह जाती है। उनका मुँह झोपडी के द्वार की तरफ़ से हटता नहीं। वे शान्त, स्थिर बैठे रहते हैं। उनकी प्रज्ञा उत्तेजित होती है। उनकी आँखों मे और मस्तिष्क में मानो कोई तेज आ रहा हो, इस प्रकार आँखें पैनी करके वे ग्रहण करते है और फिर आँखों को पूर्ववत् करते है।

धीरे से गोसाईं खड़े होते हैं। सिर पर कनटोपी पहनते हैं। कन्धे पर दुपट्टा डालते हैं और आहिस्ता-आहिस्ता झोपडी से बाहर निकलते हैं।

※ अब तक मैं समझे बैठी थी, व्रज में कृष्ण पुरुष है एक! किन्तु आप भी पुरुष कहाते धन्य आपको, धन्य विवेक।

गोसाईं के शिष्य दौड आते हैं। पडोसी इकट्ठे हो गये है। सब दाँतों में उँगली दबाये देख रहे हैं। गोसाईंजी मीराँ के सामने आकर मीराँ को देख रहे है।

असम्भव! अशक्य!! अद्भुत!!!

झोंपडी के बाहर गुरुजी को दूसरी ही दुनिया जान पडती है। मजबूत श्रृंखलाओ के वर्षों के बन्धन मे से मुक्ति पाने पर जो विचार आते हैं ऐसे ही गोसाईंजी अनुभव करते हैं।

धीमी चाल से मीराँ को देखते देखते गोसाईं मीराँ के पास पधारते हैं। जिन्दगी मे पहली ही बार यह परम वैष्णव, स्त्री को इतनी देर तक देखते हैं। वृद्ध पुरुष मीराँ के एकदम पास आते हैं और मीराँ उनकी चरणरज लेती इससे पूर्व ही जीवा गोसाईं उनके पैरों पड़ते हैं .....

'हाँ...हाँ! गुरुदेव! गुरुदेव!'' कहते हुए मीराँ पीछे हटती है परन्तु उनके पैर वृद्ध के हाथ मे आ जाते हैं। मीराँ उनको खड़ा करती है। गोसाईं गद्गद् होकर कहता है, "गुरुदेव मैं नहीं, तू, तू मेरा गुरु! सौ वर्ष पुस्तकों के पठन से जो न समझ पडे, उसे तूने एक वाक्य में कहा—धन्य हो, पधारो। झोंपड़ी मे पधारो! कहो, कैसे आना हुआ?"

"माँगने आई हूँ, दोगे?"

"बताओ, क्या दूँ?"

"आपकी चरणरज ..." इतना कहकर मीराँ चरणरज लेती है। सारी मंडली झुकती है। "महापुरुष, आपकी चरणरज से पावन होकर, आपके आशीर्वाद से प्रेरित होकर, प्रभु से मिलने आई हूँ। शिष्या के रूप में मेरी सेवा ग्रहण करें।"

"जय श्री कृष्ण! जय श्री कृष्ण!" जीवा गोसाईं कह उठता है, "बहिन, वर्षों के अध्ययन के बाद मुझे विश्वास होने लगा था कि मै सब कुछ जानता हूँ परन्तु तेरे एक ही वाक्य ने मुझे थप्पड़ मारकर समझा दिया

कि मैं कुछ भी नहीं जानता। मेरे जैसे शुष्क पाठक की अपेक्षा भगवान् तेरे पास अधिक रहता है। भगवान् से मिलने की तो मेरी भी इच्छा है, परन्तु उनसे तू मिला।"

"गुरु बिना ज्ञान कैसा ? प्रभो ! शिष्यस्तेहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्...."

गोसाईं जी मीराँ को और न बोलने देकर प्रेमपूर्वक झोंपड़े में ले जाते हैं। मीराँ, गोसाईं जी को गुरु स्थापित कर पूजन-अर्चन करती है। गोसाईं इन्कार नहीं करते...क्योंकि किसी भी उपाय से मीराँ के पास से भगवान् के दर्शन करने की लगन गुरुजी को लग गई है। मीराँ की प्रेमभक्ति और एकतान में गोसाईं जी की गर्दन झुक पड़ती है। उन्हें श्रद्धा हो जाती है कि भगवान् हैं तो केवल मीराँ के ही पास।

एक छोटे से आले में शृंगार सजाये हुए पूजित अर्चित भगवान् विराजे हैं। उनके सामने मीराँ और मीराँ की भक्त मंडली बैठ जाती है। गोसाईं जी और गोसाईं जी के शिष्य हाथ में करताल लेते हैं...गुरु के आग्रह से भगवान् को रिझाने लगती है:—

गली तो चारों बन्द हुईं, मैं हरि से मिलूँ कैसे जाय।
ऊँची नीची राह लपटीली, पाँव नहीं ठहराय।
सोच सोच पग धरूँ जतन से, बार बार डिग जाय॥
ऊँचा नीचा महल पिया का म्हाँसूँ चढ्यो न जाय।
पिया दूर पथ म्हाँरो झीणो सुरत झकोला खाय॥
कोस कोस पर पहरा बैठ्या पैंड पैंड बटमार।
हे बिधना कैसी रच दीनी दूर बसायो म्हाँरो गाँव॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर सतगुरु दई बताय।
जुगन जुगन से बिछड़ी मीराँ घर में लीनी लाय॥

मीराँ गाते गाते गोसाईं की तरफ़ देखती है। गोसाईं मीराँ की तरफ़

धीरे धीरे सिर हिलाते हैं और फिर दुपट्टे के छोर से अपनी आँख का एक आँसू पोंछते हैं। गुजराती, गोसाईं के हाथ में से काँपती हुई करताल ले लेता है।

"कहाँ के हो ?" गोसाईं पूछते हैं।

"द्वारका का हूँ।" गुजराती जवाब देता है।

"द्वारका पधारेंगे ? गुरुदेव ?" मीराँ एकाएक बोल उठती है।

गोसाईं हँसते हँसते स्वीकार करते हैं।

प्रभु के दर्शन के लिए, प्रभु की खोज में प्रेममयी मीराँ और ज्ञानमय गोसाईं द्वारका की तरफ़ जाने को तत्पर होते हैं।

और मीराँ की भक्त मंडली जयजयकार कर खड़ी होती है।

....ये आयेंगे ?

"पुरुष विशेष या स्त्री ?" उसने पूछा।

"पुरुष हमेशा कहने के—पुरुष।" उसने जवाब दिया।

"और स्त्रियाँ ?"

"स्त्रियाँ भी कहने की—पुरुष।" वह बोली।

"तेरी बात को मैं इन्कार नहीं करता।" गिरिधारी लाल मीराँ की ओर देख कर बोला।

"यही मुसीबत है न!" मीराँ मटक कर बोली।

"हाँ कहकर मारती है, लालच दिखाकर भगाती हैं, हँसकर नचाती हैं और आख़िर भटका देती हैं। बता देखूँ यह तेरी कैसी रीत है? पुरुषों को निष्ठुर कहा है वह!"

"तो भी तू अपने कहने के अनुसार पुरुष को स्त्री की अपेक्षा विशेष कैसे मानता है?"

"स्त्री अधिक देर तक दंभी नहीं रह सकती—प्रेमभाव में। वह सरल और स्वच्छ है। प्रेम के प्रदेश में वह पुरुष को अपने से अधिक मानना चाहती है।"

"और पुरुष नहीं?"

नहीं। स्त्री की कीमत वह और ही आँकता है। अपनी बात कर। "हम

"ठीक। यही। ऐसा अच्छा बोलती है तो भी स्त्री को पुरुष से नीचा समझती है ?"

"मैं स्वयं कहाँ कहती हूँ ? जो कहा जाता है वह कहती हूँ। ख़ैर तो अभी हम मोच में हैं ?

"हाँ, हाँ।"

"यानी ?"

"संशयात्मा विनश्यति। बहम न रख। जब संशय जायगा तभी दृष्टि के आगे सब कुछ स्पष्ट रूप लेगा। किन्तु, आज तुझे बकवाद करना क्योंकर सूझा ?"

"तू है इसलिए।" मीराँ ने ओंठ चढ़ा कर कहा।

"ले, तो यह चला।" लटका दिखाकर कन्हैया चलने लगा।

"बस। आज तेरी बात मुझे अच्छी नहीं लगती। जरा बोले कि लगे चलने—हाथ जोड़े तेरे आगे तो।" इतना कहकर मीराँ फिर बैठी।

कन्हैया विनोद में रोष भरी मीराँ को देखता हुआ खड़ा रहा। मीराँ ने एकदम मुँह फिरा लिया, कन्हैया धीरे से उसके और पास गया और कान में बोला :—

"मैंने सुना है कि तू कवि बनी है ?"

"मूर्ख मत बन।" मीराँ चौंकी और क्रोध छिपाते हुए तमक कर बोली।

"सुना है कि तू कविता बनाती है और गाती है !"

मीराँ ने क्रोध छोड़ा और बैठते हुए बोली, "मै तुझे याद करती हूँ और लोग गाते हैं। मैं तेरी याचना करती हूँ और लोगों के हृदय उछलते हैं—और वे समझते हैं कि मैं कवि हूँ।"

"सन्त हो।" जरा गंभीर होकर कहा।

"मुझे लज्जित न कर।"

"बस, स्त्री की यही बात मुझे अच्छी नहीं लगती । जरा भी सच्ची बात की कि लगी शरमाने ।"

"अब तो तू मुझे अधिक लज्जित करता है, हो ! बजाता है कि नहीं ?"

"क्या ?"

"वह प्राण हरने वाली और ख़ून पीने वाली ।"

"बाँसुरी ?"

"नहीं तो ! इसके बिना प्राण अगर आते हैं और तेरे मुख से इसके श्रवण बिना वियोग के पल शतसहस्र वेदना बन कर सताते हैं । वह गुजराती ठीक कहता है ।"

"क्या कहता है ? कह देखूँ—नहीं, गा ।"

"देख फिर !"

"वह जो कहता है उसे तू गा ।"

कानुडा तारी मोरली अमने दु:खडा दीधे छे दांडी दांडी ।

माझम रातनी, मधुर स्वरनी,

म्हालाजी, मुरली कोणे वगाडी ।

हुं रे सुती, ती मारा शयनभुवन माँ,

मँने निद्रा मांथी जगाडी ।

कयोरे कबाड़ी तु'ने कापी ने लाव्यो,

म्हालाजी, कयोरे सुतारे, तु'ने संवारी ।

शरीर जो ने तारूँ संघाडे चडावी,

तारा, पंडडा मां छेद पडावी ।

मोरली कहे छे हुं कामणगारी,

म्हालाजी हुं छुं व्रजकेरी नारी ।

दासी कहे प्रभु गिरधर नागर,
तनडा मां ताप समावी .

तो भी—

कानुडा तारी मोरली अमने दु:खडां दीधे दांडी दांडी।

"गुजराती झूठा है।"

"तेरे सिवाय सारे गुजराती सच्चे है।"

"अच्छा, गा, सखी! और गा! मीठा, मधुर गा, न! नहीं गाती, न गा!" इतना कह कर जानबूझ कर चुप हो बैठी हुई मीराँ की तरफ कन्हैया झूठमूठ पीठ फेर कर बैठा। मीराँ ने सिर घुमा कर शीघ्र देखा। उसे जान पडा कि कन्हैया सचमुच रूठ गया है। उसे झुंझलाहट हुई। कन्हैया ने दृढ़ होने का और दिखावा किया। मीराँ बेचैन आँखों से कुछ देर उसकी तरफ़ देखती रही और फिर उसके पास बैठती हुई दोनों हाथ जोड़कर बोली —

तनक हरि चितवौ जी मोरी ओर।
हम चितवत तुम चितवत नाहीं
दिल के बड़े कठोर॥
मेरे आसा चितवनि तुमरी
और न दूजी दौर।
तुमसे हमकूँ एक हो जी
हम-सी लाख करोर॥
ऊभी ठाढ़ी अरज करत हूँ
अरज करत भयो भोर।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर. .... .

मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर ने अचानक उसकी तरफ देखा। मीराँ खड़ी

हो गई थी। सचमुच 'भोर' हो गया था। कन्हैया ने आतुरता से उसकी तरफ देखा। मीराँ ने अश्रुभीनी आँखों से चरण पूरा किया।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ..
देस्यूँ प्राण अकोर ॥

"हाँ, हाँ, हाँ!" कन्हैया खड़ा होते बोला।

"तो फिर बजा!" आँसू पोंछ कर आशाभरी मीराँ कन्हैया से विनय करते हुए बोली—मेरी इच्छा तीव्र बनी है। सच, तू ऐसी मोहक किस तरह बजाता है? मीराँ अपना रोष भूल कर मूल बात को भोले मन से पूछने लगी।

"मोहक सखियाँ मुझसे बजवाती हैं इससे। मैंने तुझे एक बार नहीं कहा था?—तुझे मैं देखता हूँ और बंशी बजाने का मन होता है। परन्तु पहले 'तू कहती है' तभी बजाने की इच्छा होती है।"

इतना कह कर कन्हैया खिलखिला कर हँस पड़ा। उसने देखा कि मीराँ व्यर्थ ही घबरा गई थी। प्रेम बरसाती आँखों से मीराँ कुछ देर तक कन्हैया को देखती रही फिर तुनक कर बोली :—

"अब तुझे मुरली बजानी है कि नहीं? मैं बजा सकती तो तेरी इतनी खुशामद न करनी पड़ती। हे कन्हैया, मैं कैसे नहीं बजा सकती?"

"प्रकृति के दो बाजू हैं : एक काम करने वाला, एक कार्य का कारण बनने वाला। दोनों के बिना संसार संसार नहीं। दुःख दुःख नहीं। सुख सुख नहीं। मैं, तुम, आकाश, पृथ्वी, सत्, असत् कुछ भी नहीं। प्रकृति न होती तो सब कुछ शून्य होता। परन्तु प्रकृति, प्रकृति है। यम नियमों के ताल पर यह चलती है और इसके ताल पर यम नियम चलते हैं। दोनों एक दूसरे से अमर हैं।"

"आज तुझे जरूर कुछ हो गया है। तू जो कुछ कहता है उसे मैं कैसे नहीं समझती?"

"यही तो। यम-नियम। सुनाना मेरा काम है। कारण, तू है तब मैं सुनाता हूँ। बजाना तेरा काम नहीं। सुन। सुनकर आनन्दमग्न होना तेरा काम है। आनन्दमग्न होकर तेरे हृदय को मेरी तरफ़ और तेरे शरीर को संसार के आवश्यक कर्मों में लीन कर दे यही तेरा सच्चा काम है।"

"मैंने तुझ से केवल मुरली सुनने की बात की है, और कुछ नहीं। अब न कहूंगी। बस ?"

"फिर जैसी की तैसी ! जरा भी नहीं बदली।"

"जैसे तू तो बदल गया हो ! बजाता है कि नहीं ?"

"आज तू बजा !"

"मैं ? मुझे नहीं आती।"

"बजा तो सही।"

"तेरे यम-नियम को भूल कर ! मेरा काम तो सुनने का है।"

"यम-नियम हैं या नहीं इसका विश्वास करने के लिए ही बजा सखी !" मैं कहता हूँ।" कह कर गोविन्द ने उसका हाथ पकड़ लिया। और उसके मुँह पर मुरली रखी मीराँ ने डरते डरते फूँक मारी...एक मीठा स्वर निकला...मीराँ को आश्चर्य हुआ। स्वर इतना मीठा लगता था कि उसकी तान में ही वह अर्ध विक्षिप्त हो गई—उसने झट मुरली को अपने ओंठ पर से हठा कर गिरिधारी के ओंठ पर रक्खी और तीनों लोकों को डुलाने वाली मुरली अपनी शक्ति से बाहर है, इस तरह सिर हिला कर सूचित किया।

कन्हैया ने मुरली ग्रहण की। मीराँ उसके पैर के पास खिसक गई। कन्हैया मुरली बजाने लगा और धीरे धीरे मीराँ का कंठ काँप उठा ! वीणा के एक बड़े तार से जिस तरह दूसरे नन्हें तार झनझना उठते है उसी तरह मीराँ का कंठ झनझना उठा। हृदय की एक एक भावना को छेड़ता हुआ और क्रीड़ा करता हुआ गीत उठा—मीराँ गाने लगी :—

म्हाँरे जनम-मरण रा साथी थाँनै
　　नहीं बिसरूँ दिन राती ।
थाँ देख्याँ बिन कल न पड़त है
　　जाणत मेरी छाती ।
ऊँची चढ़ चढ़ पंथ निहारूँ
　　रोय--रोय अँखियाँ राती ॥

मुरली की धुन ऊपर ही ऊपर चढ़ती गई, मीराँ की आवाज़ मीठी और अधिक मीठी होने लगी। उसका हृदय और मन अधिक सतेज होने लगा। मुरली बजती रही और मीराँ गाती रही:—

यो संसार सकल जग झूठो,
　　झूठा कुल रा न्याती ।
दोउ कर जोड्याँ अरज करूँ छूँ
　　सुण लीज्यो मेरी बाती ॥

यो मन मेरो बड़ो हरामी
　　ज्यों मदमातो हाती ।
सतगुर हाथ धर्यो सिर ऊपर
　　आँकस दे समझाती ॥

पल पल पिव को रूप निहारूँ
　　निरख निरख सुख पाती ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
　　हरि चरणाँ चित राती ॥

मीराँ की आँख कब बन्द हुई और कब खुली यह मालूम नहीं हुआ परन्तु जब आँख खुली तब मुरली और वाचाल कन्हैया के बदले उसका

नन्हाँ साँवला गिरिधारी अपने हमेशा के युक्त हास्य के साथ उसकी तरफ़ देख रहा था। मीराँ का मगज़ चक्कर खाने लगा। कब वह यहाँ सो गई थी ? कहाँ थी ?

मीराँ का हृदय भर आया।

एक आह भर कर वह गिरिधारी के चरणों में सिर रख कर रो पड़ी. .

बरस बीते, दशक बीते परन्तु अभी उसका गिरिधारी उसके साथ आँख मिचौनी खेलता है। किसलिए वह हँसता रहता है ? कब तक वह हँसता रहेगा ? मीराँ ने अति दीन मुख से गिरिधारी की तरफ़ एकटक देखा। कैसी मीठी बातें करता था ? कैसी सयानी बातें ? कितने दिन बाद .. कितने वर्षों बाद वह आया और आँख खोल कर बन्द होते ही लुप्त...

"गिरिधारी...?" मीराँ ने आर्तनाद किया, "एक बार मेरे सामने आ, एक ही बार। बस इतनी ही इच्छा है...मुझे देख मेरी तरफ़ देख..."

पानाँ ज्यूँ पीली पड़ी रे, लोग कहे पिंड रोग।
छाने लाँघण म्हैं किया रे राम मिलण के जोग॥

बावल बैद बुलाइया रे पकड़ दिखाई म्हाँरी बाँह।
मूरख बैद मरम नहिं जाणै, कसक कलेजै माँह॥

माँस गल गल छीजियारे करक रह्या गल आहि।
आँगलियाँ री मूँदड़ी म्हारे आवण लागी बाँहि॥

खिण मन्दिर खिण आँगणै रे, खिण खिण ठाढ़ी होय।
घायल ज्यूँ घूमूँ खड़ी, म्हाँरी बिथा न बूझै कोय॥

काढ़ कलेजो मैं धरूँ रे, कागा तू ले जाय।
ज्याँ देसाँ म्हाँरो पिव बसै रे, वे देखे तू खाय॥

म्हाँरो नातो नाँव को रे, और न नातो कोय।
मीराँ व्याकुल बिरहणी रे, हरि दरसण दीजो मोय॥

इतना दुःख ? ऐसी निराशा ?—मीराँ ने पहले कभी अनुभव न की थी।

हिम्मत नहीं हारी थी, परन्तु हिम्मत डगमगाती थी। हरि की लाडली मीराँ आज बावरी बन बैठी...

ऐसी लगन लगाय कहाँ तू जासी।

किसी की गहरी घुटी हुई आवाज़ आई। मीराँ चौंकी। कौन गाता था ? पौ फटने की अभी तैयारी हो रही थी। जंगल की अनन्त दिखाई देने वाली शान्ति मे गिरिधारी के सम्मुख जलने वाला छोटा-सा दीपक सबका मार्गदर्शक बना हुआ था। उसके उजाले में मीराँ ने देखा कि रात के तीसरे प्रहर मे जाग कर उठ खड़े हुए गुरु गुसाईं स्नानविधि समाप्त कर गाते गाते आ रहे हैं।

ऐसी लगन लगाय कहाँ तू जासी !
तुम देखे बिन कल न पडत है,
तडप तड़प जी जासी ॥
तेरे खातर जोगण हूँगी,
करवत लूँगी कासी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर
चरण कँवल की दासी ॥

उसका ही कहा हुआ गुरुदेव गा रहे थे ?
वह इसे कह चुकी है ?
और
अब क्या कहते हैं ?

कुछ देर तक जमी हुई निराशा अपने ही शब्दों को गुरुजी के मुख से सुनकर अदृश्य हुई। उसने स्मित करते हुए गिरिधारी की तरफ़ देखा।

वह तो हँसता ही था।

मीराँ ने उसकी तरफ़ देखा। जरा और हँसकर—उसके ओंठ जितने चौड़े थे उतने अपने भी किये। वह मन ही मन गुनगुनाई—

ऐसी लगन लगाय कहाँ तू जासी ।

गुरुजी नज़दीक आये। मीराँ ने प्रणाम किया। आशीर्वाद देते हुए गुरुजी बोले:—"क्या बातें कर रही थी, गोविंदजी के साथ तू? या गोविंद तेरे साथ बात करता था?"

"दोनों गुरुजी।"

"शतं जीव शरद: । क्या कहती हो बहिन? गोविंद तेरे साथ बातें करता था?

"हाँ। गुरुदेव... ..।"

मीराँ ने मुस्कराकर गिरिधारी की तरफ़ देखा और फिर बोली —

सोवत ही पलकां में मैं तो ।
पलक लगी पलमें पिव आये।
मैं जु उठी पिव आदर देण कूँ
जाग पड़ी पिव ढुँढ न पाये ॥
और सखी पिव सोय गँमाये
मैं जु सखी पिव जाग गँमाये।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर
सब सुख होय स्याम घर आये ॥

"आयगा! ज़रूर आयगा। मेरे पास नहीं, तेरे पास ज़रूर आयगा।"

वृद्ध जीवा गोसाईं आशीर्वचन उच्चारते उच्चारते चलने लगा और मीराँ उसके हाथ में से उसका धोया हुआ वस्त्र लेकर पेड़ की डाल पर सुखाने लगी।

सचमुच! आयगा?

मीराँ ने पेड़ के नीचे बिराजमान नटखट गिरिधारी की तरफ़ देखा।

जंगल में हँसते गिरिधारी ने जवाब न दिया।

हँसता था न!

प्रभु पंथ में

"महारानी कहाँ है ?"

तीसरी बार राणा ने दहाड़कर पूछा।

दासियाँ तीसरी बार घबराहट में काँप उठीं। महाराणा के मुँह की तरफ़ देखने की किसी की हिम्मत न थी। हर बार क्रुद्ध होने की टेव से राणा का मुँह क्रोध का घर दीखता था। ताप मे तपे हुए और भूगर्भ में भरे हुए कोयले की तरह राणा के हृदय का क्रोध और घृणा उनके मुँह पर झलकते थे। मीराँबाई के पीछे जासूस रूप में नियुक्त की हुई एक समय की चम्पा और चमेली दासियों की तरफ़ फिर कर राणा चम्पा से दहाड़ते हुए बोला:—

"कोई कुछ कहोगी ?"

चम्पा रो पड़ी। रोते रोते बोली, "उत्तर की तरफ..."

"क्यों ?" राणा गरजा।

फिर सब चुप।

"आज से तुम सब भूतिया महल में रहो। कोई भी मुझे पूछे बिना मत खाओ—पीओ मत—भूखे रहो और मरो। जाओ, अभी जाओ।

"महाराज दासियों का कोई अपराध नहीं। आपके प्रश्न का मैं जवाब दूँ।" कहते कहते पुरोहित दामोदर पांडे अन्दर आया। महाराणा को अभिवादन करके निर्मल हास्य करते हुए पांडे बोला, "महारानी पधारी हैं मीराँबाई से मिलने।"

जिस प्रकार लोहे की छड़ की ध्वनि से चौंककर कोई पीछे हटता हो उसी तरह राणा दो कदम पीछे हट गया। बाघ की तरह वह पांडे को देखता रहा और दो क्षण बाद चैन लेकर बोलाः—

"क्या कहा ?"

जिस ढंग से राणा बोला था वह देखकर पांडे भी स्तंभित हो गया; परन्तु स्वस्थ होकर पांडे इस ढंग से बोला ताकि राणा उत्तेजित न होः— "आप शिकार के लिए पधारे थे और मीराँबाई वृन्दावन से यात्रा करके वापस लौटी हैं, इसलिए माता करमैतीजी की आज्ञा लेकर महारानीजी अगवानी के लिए गई है।"

"अगवानी ? मेरी धर्मपत्नी लेकर जाय ? मेरी स्त्री मेरी ही कुलकलंक कथा पूरी करने बैठी है ? और मेरी जननी इसे मंजूरी देती है ? महारानी को पता कैसे लगा ?"

"राज्य की ख़बर हम रखते हैं ! भक्तों की ख़बर प्रजा रखती है।"

"मुझे कहा क्यों नहीं ?" राणा हाथ मलते हुए भूखे शेर की तरह टहलने लगा।

"किसी की हिम्मत न हुई।"

"कैसे ? मैं किसी को मार डालता ? पीस देता ? बात क्या है जो मुझे नहीं कहा गया ? नीच, हरामी कुत्ते ! सारे के सारे फांसी चढ़ाने लायक हैं...किसने ख़बर दी थी कि वह चुड़ैल यहाँ वापस लौटती है ?"

"महाराज ! वृन्दावन के कई यात्री यहाँ आए हैं, उनके साथ पद्मा और काशी यहां अपने पतियों से मिलने आई थीं...वे गँवारिनें चुप नहीं रह सकीं और गांव में ख़बर लगते ही झट से लोग अगवानी करने को तैयार हो गये... आप थे नहीं इसलिए लोग राजमाता की आज्ञा लेकर महारानीजी को साथ ले गये हैं।"

विक्रम चुप रहा। कुछ देर उसने शान्ति ली। फिर अपने एक हुजूरिये-

को बुला कर कहा—"पाँचसौ घुडसवारों को शस्त्रों के साथ तैयार करो। हर एक के पास तैल पिलाए हुए कोडे होने चाहिए!"

"अन्नदाता! यह तो महान् जुल्म होता है...मैं आप को इस अविकारी कृत्य से रोकूँगा।"

पंडित जी ने हिम्मत करके कह दिया।

"पंडितजी को कारागृह मे डालो।" राणा ने गुस्से से हुजूरिये को हुक्म दिया—"बुला, जो बाहर हो उसे।"

"महाराज, मैं मौत से नहीं डरता..."

"जाओ।"

राणा ने पांडे को आज्ञा दी। बाहर से एक अधिकारी और पांडे को ले जाने लगा। ज़्यादा बोलना निरर्थक समझ कर पांडे सैनिक अधिकारी के साथ चलने लगा।

चित्तौड़ का राणा, फिर कुल की लज्जा रखने के लिए बापदादों की इज़्ज़त गँवाने एक कोड़ा लेकर घोड़े पर चढ़ा और पाँच सौ सैनिकों को लेकर मेवाड़ की उत्तरी सीमा की तरफ़ कूच किया। मुँह पर जान पड़ता था कि राणा मीराँ को देखते ही काट डालेगा। घोडे आगे दौडते थे; परन्तु सैनिकों के दिल पीछे रहते थे, कारण बिना अपराध बिना इन्साफ वे अपने ग़रीब भाई बहिनों को क्रूर सज़ा देने जा रहे थे। हुक्म मिल चुका था—"जाते ही कोड़े खींचो और जो सामने आवे उसे बींध दो।

यह एक तरफ़ का दृश्य था।

और दूसरी तरफ—

भक्ति, भाव और सुर की चहल-पहल हो रही थी :—

स्वामी सब संसार के हो साँचे श्री भगवान ॥
स्थावर जंगम पावक पाणी
धरती बीज समान।

सब मे महिमा थारी देखी
कुदरत के करबान ॥
ना कोई मारे ना कोई मरतो
तेरो थो अज्ञान ।
चेतन जीवन तो अजर अमर है
थो गीता रो ज्ञान ॥
मेरे पर प्रभु किरपा कीजे
बाँदी अपणी जान ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
चरण-कँवल में ध्यान ॥

नज़दीक होने पर भी दूर से सुहावने लगने वाले छोटे डोंगरों की तलहटी में एक विशाल वृक्ष के नीचे मीराँ बैठी थी—गाती थी और भजन के गवैये प्रमोदमय थे। वृन्दावनियों की नन्ही टोली के बीच और मेवाड़ियों की बड़ी टोली के बीच मीरा बाई ने भजन शुरू किया था। भजन में रस न लेने वाले और भजन के प्रति हँसने वाले लोग आज एकरस होने वाले अथवा सबरस प्रेमी इस नन्हें यात्री संघ में उल्लासपूर्वक साथ दे रहे थे।

मानो सहस्र मुख एक मुख से और एक मुख सहस्र मुख होकर गाते थे।

प्रेमभक्ति की ज्योति मीराँ ने प्रकट की थी और वह सहस्रगुना प्रकाश बनकर सत्संगियों के अन्तःकरण को उज्ज्वल बना रही थी।

यह एक जोश था जहाँ प्राण त्याग करने की लापरवाही थी। दुःख और चिन्ता का यह स्थान नहीं था। कायरों की यह जगह नहीं थी। क्रोध और क्रूरता का यह स्थल नहीं था। यहाँ तो प्रेम मस्त मानव की आवश्यकता थी—जिसे मरना आता था, मारना नहीं।

रणक्षेत्र के वीरों में और इन वीरों में मात्र इतना ही अन्तर था कि :

एक को मरना और मारना आता था, दूसरे को केवल मरना ।

प्रेम का भी रंग है । कैसे लगता है, कब लगता है यह दीखता नहीं । परन्तु ज्योंही रंग लगा कि तुरन्त उसकी आँख और जीभ मे यह रंग चमक उठता है ।

मीराँबाई की प्रेमभक्ति ने मेवाड़ियों को प्रेम रंग लगाया था । चित्तौड़ और चित्तौड के आसपास के मेवाड़ी मीराँबाई को लेने आये थे । हरेक नगर सेठ यह मानता था कि मीराँबाई के मेवाड त्याग के बाद मेवाड़ पर अधिक आपत्तियाँ आई हैं । क्षत्रियो का क्षात्र शक्तिहीन होता जाता है । राज्य की लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा क्रुद्ध होकर अपना स्थान छोडकर कहीं छिप बैठी हैं ।

प्रजा के दु:ख दुगुने बढ़ गए हैं । राजा का क्रोध सौ गुना बढ़ा है । इसलिए आत्मा का ओज प्रसारित करनेवाली मीराँ की प्रेमभक्ति से, मीराँबाई यदि अपने स्थान पर रहने को आवे तो, मेवाड़ का जाता हुआ तेज वापस आ जायगा ।

मेवाड़ के मेवाड़ी इस भावना से आये थे । और उनकी अगुआ थीं मेवाड़ की महारानी और अभी अभी ससुराल से दौडी आई मीराँ के चरणों में पड़ी हुई महारानी की ननद ऊदाबाई ।

"नहीं माँ, पधारीं तो भली पधारीं ।" चित्तौड का नगर सेठ प्रेमपूर्ण आग्रह से रोक रखते हुए आखिर कहने लगा—"हम आपको यहाँ से नहीं जाने देंगे । आप पूज्या हैं । आपको तो राणाजी को क्षमा करना होगा ।

"क्षमा ?" भजन पूरा हो जाने से इकतारे को एक ओर रखते हुए मीराँ बोली, "क्षमा, किसलिए ?"

"दीवानजी ने आपको..." रानी कहने लगी ।

"नहीं । नहीं । दीवानजी ने तो मुझ पर भारी उपकार किया है । उनके पुण्यप्रकोप से ही मैं वृन्दावन गई—वृन्दावन गई तो मुझे ये समर्थ गुरु प्राप्त

हुए जिनसे मुझे ज्ञान हुआ। अँधेरे मे भटकती हुई को जीवन का सच्चा मार्ग मिला।"

"परन्तु भगवती। मेवाड आपकी भूमि है।" ऊदा ने याचना की।

"ऊदाबाई !" मीराँ ने आँखों से अमृत बरसाते हुए कहा, मेवाड अखिल ब्रह्माण्ड का एक नन्हासा भाग है। मुझे तो ब्रह्माण्डपति ने बनाया है और इससे मुझे ब्रह्माण्ड मे फिरना चाहिए, मेवाड़ मे रहने से काम नहीं चलेगा।

'तो फिर हमें अपने चरणों मे स्थान दो। हम भी आपके साथ चलेंगे। नगरसेठ और वृद्ध सरदार बोल उठे। दूसरों ने भी तत्परता दिखाई। मीराँ ने प्रेमभरीं आँखों से सबको देखा और तब बोलीः—

"आपका धर्म यहाँ रहने का है। यहीं रहो। धर्म को न भूलो। कुल, शक्ति और संस्कार के अनुसार भगवान ने हरेक के सिर पर धर्म डाला है और उसीके अनुसार रहने मे भगवान राज़ी हैं।

जीतो, प्रेम से जीतो, मारो, प्रेम से मारो। मरो, प्रेम से मरो। कृष्णप्रेम आपके जीवन को रसमय, आनन्दमय, और समृद्ध बनावे। जय श्री कृष्ण !"

"आपको अपने घर आना ही होगा," महारानी गद्‌गद हो मीराँ के चरणों पर गिरी। उसे विश्वास था कि वह निपूती रहती है इसका कारण मीराँ का मेवाड त्याग है, इसलिए अधिक नम्र होकर बोली, "हाँ, कहो भगवती ! ना मत कहो। हमारी सेवा स्वीकार करने को आप अपने घर पधारें।"

मीराँ महारानी को प्रेम से खड़ी करते हुए बोलीं—"भगवान का घर ही मेरा घर है, और भगवान का घर कहाँ नहीं है ! कौन सा नहीं है ? महारानी मुझे न रोको।"

"तो मुझे भी आप साथ ही ले चलें। अपना कुलध्वंस मैं देखना नहीं चाहती।"

"श्री कृष्ण ! श्रीकृष्ण ! महारानी का धर्म है महाराणा के पास रहने में।

राजा से रानी रूठे तो प्रजा का ध्वंस होता है और प्रजा का ध्वंस ही कुलध्वंस है।"

"तो फिर इस दासी को साथ रहने दें।" अभी तक चुप बैठी हुई ऊदा बोली।

ऊदा को ससुराल में सुख न था। पति निकम्मा निकला था। एक पर पाँच पाँच रानियो के बीच ऊदा अत्यन्त दु ख भोगती थी। मीराँ बाई यह जान चुकी थीं। उन्होंने प्यार से ऊदा को खींचा और बोलीं, "बहिनजी! पत्नी का कर्त्तव्य है पति के पास रहना! जिस पवित्र अग्नि के पास पति को सुखी बनाने की प्रतिज्ञा ली है उसे छोड कर जाने मे धर्म नही, अधर्म है... पति के पास रह कर यथाशक्ति सेवा करो।"

इतना कह मीराँ बाई ने अपनी माला ली, मँजीरे लिये और अपनी झोली में रखा। हँसते गिरिधारी भी धीरे से उनकी झोली में चले गये। इतने में उनके चरणों पर किसी की पगड़ी गिरी! मीराँ बाई ने देखे बिना ही झोली को ठीक करते हुए कहा, "सुखी रहो—कौन हो भाई?" इतना कह वह अपने पैरों गिरने वाले को देखने के लिए फिरी। पैर छूने वाले ने सिर ऊँचा किया। मीराँ बाई की आँखें देखते ही स्नेहाश्रु से छलक गईं।

"कौन, भाई जयमल?"

"हाँ बहिन, जयमल। लेने आया हूँ। नहीं जाने दूँगा। पीहर पधारें।"

इतना इतना दुःख पडा था; परन्तु पीहर से मदद या सहानुभूति मीराँ बाई ने नहीं मँगाई थी। जयमल को जब मीराँ बाई के विषय मे पता चला तो वह आकाश पाताल एक करने को तैयार हुआ परन्तु सम्बन्धियों ने उसे रोका। जयमल पूरा भक्त था परन्तु तलवार पकडने वाला था। महापराक्रमी वीर के रूप मे उसे मारवाड मे सम्मान मिल चुका था। मीराँ बाई वृन्दावन से यहाँ आई हैं यह जान कर मुँह से भोजन का ग्रास किनारे रख जयमल दौड़ा आया था। दोनों एक दूसरे को बहुत प्रिय थे। और उसी के कारण मीराँ बाई ने

अपने ऊपर पड़े हुए कष्ट जयमल भाई तक न पहुँचे इसका बड़ा विचार रक्खा था। चिरकालके पश्चात् मिलने के कारण भाई बहिन का प्रेम छलक उठा। दोनों एक दूसरे को देर तक देखते ही रहे। आख़िर जयमल बोला:—"मुझे बहुत कुछ देना है। कितने वर्ष हो गये 'वीरपसली' नहीं दी उसे लेने पधारें।"

परन्तु मीराँ कुछ कहती इससे पूर्व तो दूर से महाराणा की हुँकार हुई। ऊदा, महारानी, नगरसेठ सब चौंक कर देखते रहे। आसपास की वनश्री को खुरों से उड़ती हुई धूल से रँगते हुए घोडे वेगपूर्वक मंडली के पास आ खड़े हुए और विकराल काल के समान महाराणा घोड़े से उतर कर मीराँ के सम्मुख आ खड़ा हुआ।

"पधारो महाराणाजी! विराजो!"

मीराँ ने स्नेह भरी वाणी से सामने चलकर राणा को एक आसन दिखाते हुए कहा।

राणा मीराँ को टुकुर टुकुर देखता रहा। मीराँ की आँखों में उसे एक प्रकार का उन्माद, किसी के बन्धन से मुक्त स्वेच्छा, उसके मोहक हास्य के पीछे छिपा हुआ जान पड़ा। मीराँ के पास वृद्ध जीवा गोसाईं और जवान जयमल को देखकर वह विचार में पड़ा। मीराँ के लिए अतिशय तिरस्कार और घृणा सेते सेते राणा का मुँह घृणा का मूर्त स्वरूप बन गया था। उसके मुँह पर और उसके होठों में से एक ही भाव बाहर प्रकट होता दीखता था: घृणा।

"सुखी हैं? मीराँ ने पुनः सरल हास्य के साथ पूछा, श्रीकृष्ण आपको......"

"तू मेरे राज्य में कैसे आई?" घृणा से अपना रूप प्रकट किया।

"महाराणा?" जयमल आगे बढ़ते हुए बोला, "मेरी बहिन मीराँ मेवाड़ के राजकुल की पुत्रवधू है। महाराणा का धर्म है उसे इज़्ज़तपूर्वक बुलाना।"

"जो इज़्ज़त के योग्य होता है उसकी महाराणा इज़्ज़त करता है।"

"अर्थात् ?"

"यह मारवाड़ नहीं, मेवाड़ है।"

"ज़रा भूलते हो। यह स्थल मारवाड़ पूरा नहीं और मेवाड़ है परन्तु आधा है।" जयमल ने सहज आँखें बन्द करते हुए कहा।

"मेवाड़ के महाराणा के सामने तलवार पर हाथ रखने का क्या अर्थ होता है, जानते हो ?" राणा गरजा।

"राजपूत पैदा होते ही अपनी जननी से तलवार पर हाथ रखने का अर्थ सीख लेता है।"

"राठौड़, मैं निरर्थक ख़ून बहाने नहीं आया—चुप रह।"

"आपका आगमन ही यहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आप यहाँ किस लिए पधारे हैं। लेकिन मेरा खून बहाना निरर्थक न होगा, सार्थक होगा। भविष्य में लोग कहते रहेंगे कि महाराणा ने आख़िर जयमल राठौड़ की तलवार के साथ तलवार मिलाई। राणाजी, मेरी तलवार से नहीं बचेंगे तो भी अमर हो जायँगे और बचेंगे तो भी अमर हो जायँगे। लोग कहेंगे कि जयमल की तलवार के सामने बचे।"

"इतना घमंड ?"

"अधम आचार और नीचता के सामने रखना चाहिए।"

"राठौड़ ! जय एकलिंगजी !"

"जय वासुदेव !"

खनूनन ! आवाज़ के साथ बिजली की तरह दो तलवारें भिड गईं; परन्तु इतनी ही मुठभेड़ से मीराँ ने दौड़ कर दोनों के हाथ पकड़ लिए—मज़बूती से पकड़ लिया और फिर गंभीर वाणी से कहा :—

"भगवान के नाम से ही निरर्थक ख़ून का प्रारम्भ करते हो ? छोड़ो

दीवानजी तलवार ! आपको शोभा नहीं देती । म्यान मे डाल दो भाई तलवार को, तेरी वीरता लज्जित होती है । जयमल, क्षत्रियों की तलवार गरीबो का रक्षण करने और प्रजा की पीड़ा मिटाने के लिए है । आपसी क्रोध को शान्त करने के लिए नहीं, वैर को बढ़ाने के लिए नहीं । ये दोनों चीजें प्रेम से ही जीती जाती हैं ।" इतना कह कर मीराँ ने राणा की तरफ मुँह किया और स्मितपूर्वक बोली—"राणाजी ! विश्वास रक्खें, मैं यहाँ नहीं रहने की । मेरा निश्चय है । मेरे कारण वैर को उत्तेजित न करें । त्याग दें । म्यानमे कर दो तलवार को ।"

"जहाँ तक तू है ....."

"प्रतिज्ञा करती हूँ राणाजी की मेवाड़ में आज के बाद पैर भी न रखूँगी—गिरिधारी की सौगन्ध । तलवार म्यान में रक्खो ।" राणा को अधिक बोलने से रोकती हुई मीराँ बोली ।

राणाने तलवार को म्यान में रक्खा ।

मीराँ दूसरी ओर फिरी, बोली:—"भाई, तलवारको म्यानमें कर । राठौड़ बहादुर हैं । एक वीर राठौड़ ने मेवाड़ की भूमिपर तलवार खींची है । प्रतिज्ञा कर कि इस भूमि पर खींची हुई तलवार इस भूमि की रक्षा के लिए सदैव खिंची रहेगी ।"

"बहिन, तुम क्या माँग रही हो ?"

"मैं ऐसी कच्ची नहीं जो अपने भाई को न पहचानूँ । तुम्हारा एक समय का किया हुआ निश्चय ब्रह्मा भी नहीं तोड़ सकता और तुम्हारा एक समय का प्रज्वलित हुआ क्रोध भगवान भी ठंडा नहीं कर सकते—एक खुद तुम्हारे सिवाय । मेरे ससुराल के राजकुल तिलक पर यदि तेरी तलवार पड़ती है तो मेरा जीवन ही वृथा है । दादा का जीवन वृथा है । पिताजी का जीवन वृथा है । राठौड़ों ने मेवाड़ की गद्दी की रक्षा की है, तू उसे न तोड़ । तू 'वीर पसलियाँ' देना चाहता था न ? दे इतनी 'वीर पसली' । प्रतिज्ञा ले कि

सीसोदिया राजवंश जब तुझे बुलाएगा तभी उसकी रक्षा के लिए अपनी वीरता सौंप देगा।"

सब लोग चकित होकर मीराँ को देखते रह गये। मीराँ तो भक्त थी, नहीं ? तो फिर ऐसा, बिलकुल क्षत्राणी की तरह कैसे बोली ?

वे भूलते थे कि मीराँ भक्त थी और भक्त, संसार के धर्म कार्य संभालते संभालते ही प्रभु के साथ अपने को एकरस बनाते है। जयमल बहिन के सामने देखता रहा और उसके सम्पूर्ण आधीन होते हुए बोलाः—

"बहिन, मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि महाराणा के सामने तलवार नहीं उठाऊँगा और जीवन प्रर्यन्त जब भी मेवाड़ का राणा इज्जत मे मेरी तलवार की सेवा मांगेगा तब प्राण को किनारे रख कर मे चला आऊँगा।

"धन्य हो वीर! धन्य!" बहिन बोली।

"जय हो जयमलजी की!" अन्य बोले। किन्तु राणा बोल न सका। उसे अपनी दीनता अधिक स्पष्ट दिखाई पडी। वह तुरन्त घोडे पर बैठा और चलने लगा। शस्त्र और कोड़े उसके सैनिकों के शरीर पर व्यर्थ पडे रहे।

मीराँ ने प्रेम पूर्वक भाई से भेंट की ननद से भेंट की, रानी से भेंट की और रोती हुई काशी तथा पद्मा को उनके पतियों के पास आग्रहपूर्वक छोड़ कर मीराँ बाई यात्रियों के संघ के साथ द्वारका जाने को तैयार हुई .....

मीराँ बाई ने गुरुजी की और अपनी झोली कन्धे पर डाली, हाथ में नन्हा सा इकतारा लिया, गुरुजी ने करताल लिये, अन्य भक्तो ने मँजीरे लिये और समय होने पर चलने लगे।

द्वारका की ओर।

● ● ●

चलते चलते जीवा गोसाई बोले—"मीराँ यह सब क्यों कर होता है, जानती है ?"

"मेरे कारण।" मीराँ बोलीं।

"नहीं। नहीं।" गुरूजी बोले।

"तो?"

"वह तेरी झोली मे पड़ा पड़ा हँसता है, उस गोविन्दा के कारण—तू अपना देश छोड़ती है।"

मीराँ ने बहुत प्रेम भरी दृष्टि से झोली में हँसते हुए और इधर उधर से हिलते हुए नटखट की तरफ़ देखा और फिर गुरूजी की तरफ़ देख कर तेज़ी से चलते चलते गुनगुनाने लगी—गाने लगीः—

माई री मैं तो लियो गोबिन्दो मोल।
कोई कहे छाने कोई कहे छुपके,
लियो री बजंता ढोल॥
कोई कहे मुँहगो कोई कहे सुँहगो
लियो री तराजू तोल।
कोई कहे कालो कोई कहे गोरो,
लियोरी अमोलक मोल॥
कोई कहे घर में कोई कहे बन में
राधा के संग किलोल।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
आवत प्रेम के मोल॥

यात्री लोग क्षितिज में जब तक अदृश्य न हो गये तब तक जयमल, ऊदा, रानी और पन्ना काशी देखते देखते बैठे रहे। हाँ, और अगवानी वाले भी दूर-दूर से आने वाले भजन सुनते हुए बैठे रहे।

●

वहम, क्लेश और क्रोध

"बन्द कर दो दरवाज़े—महारानी महल में प्रवेश न करे।" राणा ने आज्ञा दी।

"अन्नदाता..." बुधाजी राठौड़ जीवन की आशा छोड़ते हुए बोला।

"बन्द कर दो दरवाज़े।" राणा ने लाल सुर्ख आँखों से सब की तरफ़ देखते हुए कहा।

"आज्ञा वापस फेर लो।' रानी करमैती पीठ की तरफ़ के दरवाज़े में खड़ी खड़ी बोली। पति के और युवराज के मरण के बाद रानी करमैती लग भग विरक्त हुई बैठी थी। दूर बैठी बैठी विक्रम के कीर्ति कलाप देखा करती थी। विधवा होने के बाद, और पुत्र के महाराणा बनने के बाद करमैती का महत्त्व बहुत कम हो गया था। परन्तु महाराणा तक उसकी राज्यनिपुणता और प्रतिभा के सामने सिर झुका देते थे। पूर्ण एकान्त में रहने पर भी राज्य या कुल की कोई महत्त्वपूर्ण बात आ उपस्थित होते ही वह बिजली की तरह आती और उस समय जो कुछ वह कहती वही होता। राणा एकदम आपे से बाहर हो रहा था; परन्तु जननी को देख कर, अधम कोटि के शब्द बोलने से रुक गया, तो भी राणा का मस्तिष्क हाथ से बाहर था। जीवन में पहली बार राणा विक्रम माँ के सामने सिर ऊँचा कर के बोला :—

"माँ, बचाव छोड़ दो। जो रानी अपने पति की न रह सके, वह उसके राज्य में भी नहीं रह सकती। बन्द कर दो दरवाज़े।"

फिर से उसने बुधाजी को आज्ञा दी।

"तुम्हें ये शब्द शोभा नहीं देते।" करमैती बोलीं।

"माँ, क्या राणा एक बार भी साधारण मनुष्य होकर नहीं बोल सकता? मै देवता नहीं, मनुष्य हूँ और राजा हूँ। जो राजा की बनी रहे वही रानी है। मुझे पूछे बिना जो मेरा सर्वनाश करती है और जो मेरे हृदय, मन, शरीर तथा इज़्ज़त का क्षय ही करती रही है उसकी पूजा करने वाली स्त्री मुझे नहीं चाहिए।"

"परन्तु भाई..."

"माँ, यह मेरी आज्ञा है।" राणा बिना पीठ फेरे ही दरवाज़े की तरफ़ पीठ किये बोला।

ठीक उसी समय पटरानी दरवाज़े की देहरी तक आकर खडी खडी सुन रही थी। पास ही रानी के साथ साथ पीहर आई हुई ऊदा भी दृढ़चित्त खड़ी थी। राणा के अन्तिम शब्द सुन कर पटरानी स्तंभित हो गई। पैर रुक गये। द्वारपाल विनयपूर्वक सिर झुका कर लाचार खड़े थे। कहाँ फिरना, किधर जाना, किस तरह राणा को समझाना? रानी पत्थर की तरह खड़ी थी। अकस्मात् उसकी दृष्टि दूरवर्ती भूतिया महल पर पड़ी।

उसने उधर जाने को मुँह किया।

"किधर चलीं, भाभी?" अब तक चुपचाप खड़ी ऊदा रानी का हाथ पकड़ कर कठोर आवाज़ से बोली, "चलो महल में।"

"बहनजी!" रानी ने अपने को दरवाज़े के भीतर खींचती हुई ऊदा को रोकते हुए कहा। परन्तु बहिन सुनने को तैयार नहीं थी। झुके हुए द्वारपालों और पीठ फेर कर खडे राणा की ओर तिरस्कार भरी दृष्टि डालते हुए ऊदा बोली:—"मेवाड़ की महारानी को अपने महल में जाने से रोकने वाला कौन है, देखूँ? मेवाड़ की गद्दी महारानियों से अखंड रही है। हट जाओ द्वारपालो रास्ते से! महारानी की आज्ञा है।

इतना कह महारानी का हाथ छोड़े बिना ही शर्म से पीछे हटे हुए द्वार-

पालों के बीच से क्रोधित हुई ऊदा भीतर चली गई।

क्रोध से संमोह और संमोह से स्मृति-विभ्रम महाराणा को हुआ था। किसी को मूर्ख ही रहना हो तो उसे सुधारने वाला कौन ? रोग बढ़ते बढ़ते जैसे असाध्य बनता है वैसे ही राणा का वहम, क्लेश और क्रोध असाध्य बन गये थे यह तो स्पष्ट था कि मीराँ मे उसे अपने कुल का विनाश जान पड़ता था। अब उसे, मीराँ के साथ रहने वाला या मीराँ का नाम लेने वाला प्रत्येक द्रोही जान पड़ता था। अपनी अतिशय प्रिय ऐसी बहिन ऊदा को अपने विपरीत हुई देख उसे किसी मे श्रद्धा न रही थी। तो भी, ऊदा को आया देख राणा क्रोध ही क्रोध मे पीठ फिराये बैठ गया। करमैती अपनी पुत्री को देख कर बिना कुछ कहे, ऊदा को भीतर आने का इशारा कर चलने लगी। ऊदा ने कुछ देर राणा की तरफ देखा फिर राणा को निर्देश करके बोली, "भाभीजी, भले काम के लिए भी पति को पूछे बिना जाना ज़रूर गुनाह है, राणाजी से क्षमा माँगें।"

रानी के हृदय को ऊदा के शब्दों से मार्ग मिला। लज्जा और अपमान कुंठित बुद्धि रानी की आँखों मे आँसू आ गये परन्तु मन को काबू में रख कर मानपूर्वक बोली :—

"अगर कुल रक्षा के लिए शुभाशीष माँगने जाना भी गुनाह है तो मैं क्षमा माँगती हूँ।"

जैसे कोई प्रेत खड़ा होता है उसी तरह राणा खड़ा हो गया—तो भी बोल न सका। ऊदा मृदुभाव से परन्तु आवाज़ मे दृढ़ता रखते हुए बोली :— "भाईजी, मेवाड़ की रानी अपने ही द्वारपालों से रोकी जाय इसमें राणा की कितनी इज़्ज़त है ?"

ऊदा के सम्मुख राणा गर्जना न कर सका। दहाड़ने से ही वह थका था। धीमी आवाज से दाँत भींच कर बोला:—"मुझ से न कहलाओ, जाओ, दूर हो।"

"किस लिए ?" ऊदा निश्चित भाव से किन्तु मृदुता बनाये हुए बोली'

'तुम्हारे हृदय और तुम्हारी आत्मा को अपनी तरफ़ झुकाऊँगी। भाई, तुम्हारे बेहद तिरस्कार और बेहद क्रोध मे भी मुझे गहरा गहरा प्रेम छिपा हुआ प्रतीत होता है। मेरी तो पूरी श्रद्धा है कि वह किसी न किसी दिन बाहर आये बिना न रहेगी। उस समय पश्चाताप से मेरे पास न आकर महारानी के पास जाना।"

"मैं एक कुलकलंकिनी सहचरी..."

"बस करो भाई।" ऊदा आँखें खींच कर बोली, "वीर के पुत्र हो, राणा के वंशज हो, राणा हो। अधम शब्दों को जीभ पर आने देना भी तुम्हारे जैसे एकलिंगजी के दीवान के लिए पाप है। मीराँ भाभी सन्त हैं। कुलोद्धारिणी भगवान कृष्ण की भूली भटकी गोपी हैं उनके इस अवतार में उनका आशीर्वाद लो—तर जाओगे।"

"इस जन्म में नहीं।"

जिस तरह ज्वालामुखी फटने की तैयारी में होता है उस तरह की अवस्था को सूचित करती हुई भीषण आँखें करके राणा बोला।

"बुद्धि को जान बूझ कर भूलने वाला रक्षक नहीं भक्षक है। पुण्य को पाप मानने वाले का क्षय है। राणा मीराँ बाई के आशीर्वाद के बिना तुम्हारे कुल का उत्थान नहीं, पतन है।" इतना कह ऊदा भाभी को लेकर भीतर भाग में चली गई।

राणा ने पास पड़ी हुई गन्धपेटिका को लात मारी। पास पड़ी हुई तलवार को एक ओर फेंक दिया। अचानक उँगलियों में उलझे हुए मुक्ताहार को झटका मार कर तोड़ दिया और बुधाजी को "मेरे साथ आ" कहकर वेगपूर्वक महल से बाहर चलने लगा...

एक पहर बाद उसने उद्यान के एक कोने में देखा कि नशेबाज नशे में जमीन पर से हवा में उड़ने लगे हैं और नशेबाजों ने देखा कि उनके बीचोंबीच राणा होठ पीसे नशा करता जाता है।

इसी बीच एक दास ने चुपके से बुधाजी के कान में कहा:—"भूतिया महल भजन से गूँज रहा है।"

राणा को झट वहम हुआ। उसकी जहरीली आँखें बुधाजी की तरफ फिरीं। बुधाजी अपने पेट में होनेवाली हलचल को छिपाता हुआ घबराहट में राणा से नज़र चुराने लगा।

"क्या है, बुधाजी?" राणा ने शीघ्र पूछा।

"कुछ नहीं अन्नदाता।" मुँह में चक्कर खाती हुई जीभ को क़ाबू में रखकर बुधाजी बोला। उसे आज किसी का काल नज़दीक आया जान पड़ता था। एक तो राणा का अपार क्रोध, उसपर फिर चतुर को भी बेवकूफ़ बनाने वाला कसूंबे का नशा!

"क्या है बुधाजी?" राणा ने दूसरी बार पूछा।

बुधाजी भीतरसे काँपने लगा।

"मैं पूछता हूँ क्या है बुधाजी?" राणा तीसरी बार बोला। बुधाजी के होश उड़ गये। बोले बिना छुटकारा न था। दिमाग और जीभ पर क़ाबू रखते हुए बोला:—

"अन्नदाता! भूतिया महल में.... भजन होते हैं।"

राणा बुधाजी को देखता रहा। बुधाजी आश्चर्य से राणाको देखता रहा। राणा गुनगुनाने लगा:—

"जिसे मैंने बन्द कराया था, जिसके नाम लेने की मैंने मनाही कराई थी, उसीके भजन उसी स्थान पर गाने के लिए साधु, सन्यासी और प्रजा इकट्ठे होते हैं?"

बुधाजी राणा को देख ही रहा था। नशे में राणा पर उल्टा असर होते दीखा। वह निर्बल होता जान पड़ा, बिलकुल निर्बल। अलबत्ता, जिद् निर्बल न हुई। घृणा उतनी ही रही। उसने नशेबाजों को आज्ञा दी:—

"जाओ, सब जाओ—सारे शराबियों को बुला कर कहो कि प्रत्येक

व्यक्ति भूतिया महल मे जाय और शराब पीवे। भंडारे मे से शराब मँगाओ। वेश्याओं को कहो कि वहाँ नाचें। भाँडों को बुलाकर कहो—भँडैती करें और कसूंबे की वहीं तैयारी करो—बुलाओ सबको—उठो।"

इन्कार करने की खुशामदियो मे हिम्मत नहीं थी। जोश के मारे सारे हुजूरिये भूतिया महल की तरफ़ गये तो सही परन्तु...परन्तु...

थोड़ी देर बाद राणा ने बुधाजी से हँसते हुए पूछा :- "कहो, क्या समाचार है? भजन ठिकाने लग गया?"

"अन्नदाता भजन ने सबको ठिकाने लगा दिया।" लड़खड़ाती जीभ से बुधाजी बोला, "सब वही बैठ गये।"

"क्या? फिर से कह? बुधाजी, तुम और केसरजी जाओ और उन बैठ जानेवालो के उड़ादो सिर—टूट पडो भक्तों और भक्तिनों पर और उनकी चोटियाँ पकडकर बाहर निकाल दो—लातें मारते हुए और थूकते हुए। जरा भी कोई चूँचपट करें उसे काट डालो। दुराचारियों को निर्दयता से मारने की एकलिंगजी की आज्ञा है...।"

बुधाजी का इशारा पाते ही कुछ दूर खड़े पैदल सिपाही चलने लगे। विचार करके बुधाजी भी साथ गया।

राणा तो इतना कहकर फिर कसूंबा पीने में लगा।

कुछ देर बाद याद आने पर कोई जवाब न पाकर नींद का झोका खाते हुए राणा आँखें फाड़कर बोला :—"कोई है' ला?"

"जो हुक्म?" केसरजी कोने में से बोला।

"वे क्यों नहीं आये?"

"अन्नदाता! वे भी वहीं बैठ गये!" केसरजी प्राण बचाते हुए बोला।

राणा का कसूंबी नशा एकदम उड़ गया। स्थिर आँखों से वह केसरजी को देखता रहा। केसरजी हिम्मत रखकर बोला:—"अन्नदाता! ऊदाबाई वहाँ विराजमान हैं, कहती हैं, देखें कौन है हमे भगवान की भक्ति से रोकने वाला। सबको सौगन्ध खिलाकर बैठा लिया है।"

केसरजी ने जैसा सोचा था वैसा ही हुआ। राणा ने निर्दोषों की गर्दनें उतारने वाली दुधारी तलवार निकाली और सीधा अपने शयनमन्दिर की ओर चलने लगा। उसे विश्वास था कि यह सारी करतूत महारानी की ही है और वह ऊदा के पास ही होगी। इसलिए उसने मन में निश्चय किया कि पहले विश्वास कर लूँ फिर सबकी ख़बर लूँगा।

राणा सीधा शयनमन्दिर की तरफ़ गया। परन्तु शयनमन्दिर में पैर रखते ही उसे रानी बैठी हुई दिखाई दी। महारानी दूर से सुन पड़ने वाले ऊदाबाई के भजन को तल्लीनता से सुन रही थीः—

भज मन चरणकँवल अबिनासी ॥

जेताई दीसे धरण गगन बिच
तेताई सब उठ ज्यासी ॥

कहाँ भयो तीरथ ब्रत कीन्हे
कहा लिए करवत कासी ॥

इण देही का गरब न करणा
माटी में मिल ज्यासी ॥

यो संसार चहर की बाज़ी,
साँज पड्या उठ ज्यासी ॥

अरज करूँ अबला कर जोडे,
स्याम तुम्हारी दासी ॥

मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर
काटो जम की फाँसी ॥

"महारानी !"

काँपती हुई आवाज़ से राणा बोला। रानी एकाएक चौंक उठी। बोली:

"कहो नाथ ?"

महारानी का नाथ चुप रह गया। ऊदा बाई का 'मीराँभजन' मानो बढ़ने लगा। भजन चालू रहा। राणा के हृदय मे साथ ही साथ कँपकँपी बढ़ने लगी। उसका नशा मानो उफनने लगा। रानी राणा के मुँह पर उठते हुए भावों से उसका आशय समझ कर झट खड़ी हुई और उसके आगे आ गई।

"दूर हो—नीच!'

राणाने उसे आते ही धक्का मार कर किनारे धकेला और बाहर चलने लगा—भूतिया महलकी तरफ।

पहले भी नंगी तलवार लेकर राणा इसी तरह एक बार आया था, परन्तु इस बार उसके पैरों की अपेक्षा उसके दिमाग़ में अधिक क्रोध था। राणा को भूतिया महल में आता देखकर जिसजिस की उस पर नज़र पड़ी उसी की बधिया बैठ गई। आँखों से अग्नि बरसाता हुआ राणा सबके सामने आ खड़ा हुआ और महल को गुँजाने वाली आवाज़ से बोला—" कहाँ हैं वे कुत्ते!'

राणा की भाषा बिगड़ गई थी। क्रोध ने बुद्धि, विनय, स्थान, योग्यता सब से राणा को पदच्युत किया था। उसने भूखी आँखों से चारों तरफ़ देखा। कसूँबा पूर्ण रूप से उसकी आँखों मे आ बैठा। उसने एकदम ऊदा की तरफ़ दहाड मारी और ऊदा "हाँ हाँ" कहती इससे पूर्व तो तलवार ऊदा के पास बैठे हुए बुधाजी के कन्धेपर गिरी और जनेऊ के साथ साथ छाती फाड़ती हुई कमर तक पहुँच गई... ..

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर......

बुधाजी हँसते हँसते इतना बोला और इसके बाद उसका प्रेत हँसता रहा।

"जात तो राठौड की है न! मर कर भी जिद्द नहीं छोड़ता!" राणा दाँत मींचकर बोला।

जैसे ख़ुद जिद् छोडने वाला हो!

बुधाजी राठौड़ आख़िरकार मीराँ का हुआ इसकी अपेक्षा मीराँ उसे डिगा सकी इस बात का राणा को अधिक क्रोध था। उसीके विचारों के अनुसार सोचने वाला और उसी की जीभ से बोलनेवाला परम विश्वासी बुधाजी मीराँ का क्यों कर बन बैठा, यह उसकी समझ में न आया। निस्सन्देह मीराँ उसका सत्यानाश करने बैठी थी। उसके दाहिने हाथ जैसे बुधाजी का अन्त उसके नाश का ही प्रारंभ था। उसके हृदय मे एक प्रकार की ग्लानि उत्पन्न होने लगी; परन्तु उसे छिपाने के लिए अधिक लापरवाही का डौल कर के उसने ऊदा की तरफ देखा और निष्ठुरता से हँसते हुए बोलाः—

"देखा? एक एक की ऐसी हालत करने वाला हूँ। राजद्रोही और धर्म द्रोही, कोई मेरी तलवार से बचने का नहीं—तुम यह समझती हो कि मीराँ का नाम ले ले कर मुझे पागल बना दोगी? नहीं, नहीं, नहीं, । मैं तुम्हें पागल बनाऊगा। मीराँ का नाम लेनेवाले, मीराँ का भजन गाने वाले, मीराँ के भगवान का बहाना करके फितूर करनेवाले किसी को भी मैं नहीं छोड़ूँगा। देखता हूँ तुम्हारी मीराँ और मीराँ के प्रभु गिरधर नागर मुझे कैसे रोकने आते हैं......खड़े हो जाओ सब—नीचो, कृतघ्नो, कायरो, मूर्खो......"

ऊदा निश्चल और शान्त खड़ी थी। उसने शान्ति से आँखें विस्फारित करते हुए राणा के हृदय को दबाने वाले गंभीर स्वर में कहा'—

"राणा, मीराँ तुम्हारे पास नहीं आयेगी, तुम्हे मीराँ के पास जाना पड़ेगा। उनके चरणों में सिर रखना होगा, कारण यह है कि आज से सीसोदिया राजवंश का पतन शुरू हुआ है। और इसके कारण आप ख़ुद हो। वैष्णव! डरो नहीं जो किसी का अहित ही नहीं सोचता उसे डर किस बात का? उठाओ भक्त का शव।"

राणा ऊदा को देखता रहा। उसकी शान्ति और श्रद्धा को आश्चर्य से देखता रहा।

निस्सन्देह मीराँ उसका सत्यानाश करने बैठी थी।

ऊदा ने उसी शाम पीहर से अन्तिम विदा ली। परन्तु भूतिया महल की बात चित्तौड़ वासियों को और चित्तौड़ वासियों की बात जनता को मालूम होते देर न लगी। जनता बालक जैसी है। समझाने पर समझ सकती है। प्रेम से मान लेती है। परन्तु उसके साथ किसी वस्तु की चर्चा करना और फिर उसे न देने या दिखाने की जिद से वह उसीको लेने की जिद् करती है।

मीराँ के प्रति उत्तरोत्तर विरोध से मीराँ का नाम मेवाड़ के घर घर और मुख मुख पर छा गया और उन्हीं मुखों से शतसहस्र शाप राणा के लिए निकलने लगे जिन की आग में जलता हुआ राणा शरीर और मन की अधम अवस्था मे पहुँचने लगा—पहुँच गया।

माँ ! लौट आ

"मुझे कहाँ खींचे जा रही है ?

"अपने साथ। क्यों ? मृत्यु का डर लगता है ?"

"तेरे साथ मृत्यु ?" मीराँ हँसती-सी बोली : "प्रकाश—अन्धकार जैसी बात करता है। एक नहीं तो दूसरा है ही। दोनों का अटूट सम्बन्ध है । एक को खोने में दूसरे की प्राप्ति ही होती है !"

"तो फिर ?"

"मुझे मेरा डर नही, तेरा डर है।"

"मेरा डर ?" कन्हैया हँसते हुए बोल उठा, "सखी तू भूलने लगी है।"

"मुझमे और तुझमे इतना ही अन्तर है। वर्ष बीत गये पर मैं नहीं जानती कि मैं कौन हूँ—परन्तु तू, जानता है, मैं कौन हूँ। रहने दे ये बातें। इधर आ। यहाँ बैठें।"

एक वृक्ष के नीचे बैठते हुए मीराँ ने कहा।

"बस। थक गई ?"

"हाँ। अब बहुत थकान चढ़ आई है। तू ही सोच ! तुझसे मिलने को मुझे बहुत दौड़ना पड़ता है। मिलने के बाद तेरे साथ साथ भी बहुत दौड़ना पड़ता है। और तेरे चले जाने पर तुझे पाने के लिए भी मुझे दौड़ना ही पड़ता है।"

"तुझे नहीं आना मेरे साथ ? गोलोक में जाता हूँ।"

"गोलोक? क्या कहा तूने? गिरिधारी, तेरी बात अब तक मैं क्यों नहीं समझती?"

"तुझे गोलोक में आना है या नहीं?"

"ना।" मीराँ थोड़ी विचार कर बोली, "नहीं आना है। यहीं ठीक हूँ।"

"कैसे?"

"जहाँ तू है वहीं गोलोक है। यहाँ क्या दोनों आनन्द से नहीं रहते? वहाँ आकर मैं तुझे मुसीबत में डालूँगी—तुझे और तेरी गोपियों को।"

"ढाह! स्त्री-जात जो ठहरी!"

"वाह रे पुरुष की जात! गंभीर बात को हलकी और हलकी बात को गंभीर न कर डाले तो पुरुष ही कैसा? मैं गंभीर होकर कहती हूँ।"

"मतलब यह कि मै हलका न होऊँ, यही न?"

"हाँ, हाँ।"

"ले, यह भारी बन कर बैठ जाता हूँ, बोला।"

"मैं इन गोपियों के साथ रहने लायक नहीं हूँ। मैं यहाँ सीमाद्वार के पास ही ठीक हूँ। इस पेड के नीचे मैं भले पडी रहूँ। यहाँ पडी पड़ी तुझे जाते और आते देखूँगी। मुझे इतना ही काफ़ी है। परन्तु मुझे यहाँ से धकेल न देना, वचन दो। अब मैं बहुत थक गई हूँ, इस शरीर का भार अब सहन नहीं होता। यह न हो तो मैं तेरे साथ तू कहे उतनी दौड़ूँ...।"

"क्या न हो तो...शरीर या भार?"

"दोनों।"

"परन्तु तू बूढ़ी नहीं हो गई है।"

"यही तो दुख है न! हूँ तो भी कैसे नहीं दीख पड़ती?"

"बूढ़ी दिखना चाहती है?"

"ना ! दौड़ने से थकान न आवे इतना करना है । तू......देख । वही मनोहर मूर्ति । तुझे थकान कैसे नहीं होती ?"

"मूर्ति हूँ, इसलिए ।"

"क्या ? फिर ठट्ठा करने लगा ? बोल गिरिधारी, तुझे थकान क्यों नहीं होती ?"

"मेरा शरीर नहीं इसलिए ।"

"तेरा शरीर नहीं ?"

"मेरे कहने का मतलब यह कि मेरे शरीर का भार तुझे नहीं । तू जब नहीं होता है तब यह शरीर जितना दुःखदायक होता है उतना किसी का नहीं होता ।"

"किसको दुःखदायक ?"

"मुझे नहीं । अन्य लोगों को । बता, इस शरीर का मैं क्या करूँ जिस की प्राप्ति में मुझे दुःख है, भार है, थकान है......"

"तब चल गोलोक में । वहाँ तुझे पता भी नहीं चलेगा ।"

"मीराँ कृष्ण को विचार में पड़ा देखती रही । कुछ देर में उसने निश्चय कर लिया, बोली :—

"ठहरना, मैं सारे शृंगार करके दौड़ी आती हूँ—"

"तू तो गंभीर बात करती थी न !"

"म गंभीर हूँ ।" मीराँ चलती-चलती रुक गई जैसे कुछ याद हो आया हो, फिर कृत्रिम रोष दिखाते हुए बोली :—

"तू सीधा रहेगा ? इस वेश में चलूँगी तो गोलोक की सारी गोपियाँ मुझे क्या समझेंगी ? तेरे साथ भी यदि चलूँ तो इस तरह चलना ठीक रहेगा न कि लोग तुझे लज्जित न करें ? चल, खड़ा हो । तू भी थका है—तुझे नहलाऊँ, भोजन कराऊँ और फिर तेरे साथ चलूँ—परन्तु अब ज़रूर ले चल......"

"किस लिए ?"

"अरे ! अभी तू ही तो मुझे गोलोक चलने का आग्रह करता था। एकाएक कैसे मुकर गया।

"फिर विचार आया कि तुझे ले जाऊँ किस लिए ?"

"मीराँ रुकी रही। इस नटखट को क्या उत्तर दे। वह धीरे से समीप के एक वृक्ष के तने के पीछे गई और फिर उसकी 'किस लिए ?' का उत्तर तने से अपना मुँह छुपाकर इस तरह देने लगी कि वह भी सुन सके .—

नेह लगी मनै थारी।
अहो जी नेह लगी मने थारी,
कामकाज त्यागूँ, घरबार त्यागूँ,
मन से चाहूँ मुरारी।
सोलह हजार तू गोपियाँ परणी,
तो भी बाल ब्रह्मचारी,
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर,
चरण कमल बलिहारी।

कन्हैया खड़ा हुआ और तने की दूसरी बाजू छिपते हुए उसने मुँह निकाला और मीराँ को देखने लगा। मीराँ ने मुँह फिरा लिया—बैठ गई।

कानूड़े न जाणी म्हारी पीर,
बाई हूँ तो बालकुँवारीरे, कानुड़े...

कन्हैया उसके पास आ बैठा। बोला : "यह बात ?"

जल रे जमना म्हे पाणीयौ नै गया हा, हाँजी हाँ.
कानुड़े उठाया आछा नीर...उड़्या छररररर रे।

कन्हैया बोला :—"उनकी इच्छा थी और मैंने उठाया।"

वृन्दावन में साँवरो रास रच्यो है
सोलह सौ गोप्याँ का ताण्या चीर... फाड्या फररररर रे।

कन्हैया बोला : "तूने गिनी थी ?"

हूँ बैरागण कन्हा थारै नाम री,
कानुड़े मार्या म्हाँने तीर...लाग्या अररररर रे।

कन्हैया बोला : "स्त्रियाँ इतनी झूठ बोल सकती हैं ?"

बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
कानुड़े बाल फैंको ऊँचै गीर...राख उड़े फररररर रे।

कन्हैया : "झूठी, बिलकुल झूठी। बता देखूँ एक भी चिह्न, जो तुझे जलाया हो तो ? कैसी मजे में बैठी है। यों कह, तुझे राख होना भाता है ?"

"कुछ समझ नहीं पड़ता कन्हैया ! जो मैं कहती हूँ वह सत्य है और जो तू कहता है वह भी सत्य है। तो फिर झूठा कौन ? क्या सत्य ? क्या असत्य ?" मीराँ ने असहाय होकर पूछा।

"जो तू देखती है वह सत्य है। यह जो है वह असत्य है।" कन्हैया ने उसकी तरफ़ देख कर हँसते हँसते कहा।

"मैं कुछ भी नहीं समझी, मेरे प्रभु ! परन्तु एक बात मेरे साफ़ समझ में आती है आज ही पहली बार तू भागता नहीं। मै बहुत थक चुकी हूँ, इसलिए, नहीं ? हाँ। गिरिधारी मैं बहुत थकी हुई हूँ।" कहते कहते मीराँ ने कन्हैया की छाती पर अपना शीश रख दिया—सोलह शृंगार एक ओर रहे। गोलोक जहाँ का तहाँ रहा। कन्हैया हँसते हँसते मीराँ के शीश पर हाथ फेरने लगा। मीराँ को गाढ़ निद्रा घेरने लगी—फिर, ज्यों ज्यों कन्हैया की मुरली धीरे धीरे जमने लगी त्यों त्यों मीराँ को खुमारी आने लगी। मीराँ

अपने गिरिधर नागर की छाती पर ही ज्यों की त्यों, उसे कस कर पकड़े हुए सो गईं।

एकाएक मुरली चुप हो गई।

मीराँ बाई की आँखें खुल गईं। क्या? उन्होंने अपने हाथ की तरफ देखा तो माला को जोर से कसकर छाती से दबा रक्खा था। उनकी आँखों से आँसू झर रहे थे और उनके सामने उनका दूल्हा, गिरिधर गोपाल सदैव की तरह शान्त मधुर हास्य करता हुआ खड़ा था।

शान्तिपूर्वक मीराँ ने मस्तक ऊपर उठाया। अब उनको आँसुओं का कारण समझ पड़ा।

कल इसी समय उस युवा उम्र के साधु ने उनके चरण पकड़ कर माँगा था...

"भगवती एक कृपा करो।" साधु ने याचना की।

"भाई, सचमुच तो तुम्हारी कृपा मुझ पर है। मैं क्षुद्रा कृपा करने वाली कौन?" मीराँ ने स्नेह से कहा, "कृपा तो तुम्हारी मुझ पर है। दो दशक से द्वारका में रहती हूँ, परन्तु सुबह शाम मेरे गिरिधारी की पूजा के समय नियमित फलफूल जिस प्रकार तुम लाकर रख जाते हो ऐसे और कहीं किसी ने नहीं रक्खे। तुम्हारी निष्ठा सच्ची है।"

"यह सब आपके कारण है।" साधु ने मीराँ को नीची निगाह किये कहा।

"तीन तीन बरस से तुम्हारी अचूक गिरिधर सेवा मेरा घमंड दूर कर देती है...तुम बड़ी भक्ति से भेंट लाते हो।"

"मैं बड़े प्रेम से...लाता हूँ।"

"तुम्हारा प्रेम अचल रहे।"

"मैं भी यही प्रार्थना करता हूँ।" आँखें ऊपर उठाते हुए साधु बोला।

और कुछ बोले बिना साधु नमस्कार करके चलने लगा। उसके जाने के बाद एक कोने मे पडी छाया की तरह मीराँ का रक्षण करने वाला वाघड़ चुपचाप नीचा मुँह करके बैठा रहा। वाघड मीराँ के रंग से रंगा था। उसे हरिभक्ति का नशा चढ़ा हुआ था, परन्तु स्त्री के लिए पुरुष को सहज द्वेष प्रकृत्ति उससे छोडी नहीं गई थी। इस समय वह नष्टप्राय हुए अपने किसी समय के जंगली जोश और हिंसा को सजीव करने के लिए प्रयत्न करता था, परन्तु वे इसके पास नहीं आते थे। और इसीलिए वह सिर झुकाये बैठा था।

"क्यों वाघड़ भाई ! चलो द्वारकाधीश चलने हो न ?"

"अभी तक तो एक भी दिन आप वाघड के सिवाय द्वारकाधीश मे नहीं दिखाई दिये !" नमस्कार करके प्रविष्ट होते होते वह वृद्ध गुजराती बोला, "गोलोकवासी गुरुदेव सत्य कहते थे कि मीराँ की भक्त मंडली मे मीराँ जैसा सच्चा भक्त मात्र वाघड़ है।

वाघड कुछ बोला नहीं, खड़ा हुआ और सदा की तरह फूल, चावल और मँजीरें लेने को चलने लगा। मीराँ कुछ क्षणों तक उसे देखती रहीं। फिर धीरे से वे अपने गिरिधारी के पास आईं और उसके पास बैठते हुए बोलीं।

"कन्हैया, मेरी हँसी करता है ?" कन्हैया हँसता रहा।

वही हास्य, वही रूप। दो दशक हुए, परन्तु उनका गिरिधारी गोपाल जरा भी नहीं बदला था। दो दशक हुए थे परन्तु मीराँ बदली नहीं थी।

उसकी आँखों में और उसकी आवाज मे वही प्रेमसुधा अविरत, अक्षय होकर उभर रही थी और उसका पान समूचा गुजरात करने लगा था। मीराँ का कोई शिष्य नही था। किसी का गुरुपद लेने के लिए उन्होंने साफ इन्कार कर दिया था। अपने चरणों में सिर रख देती थीं। वे मात्र सेवा करनेवाले ही जान पड़ते थे। उनके आसपास जमी हुई मंडली, मँडली नहीं, संघ था। कोई बड़ा नहीं था, कोई छोटा नहीं था। मीराँ को पूजनेवाले संसारी और असंसारी उनके साथी थे। और उन सबका उद्देश्य एक दूसरे को हरिश

लेकर प्रभुचरण की प्राप्ति के लिए हरि के निर्मल प्रेम में नहाकर दूसरों को नहलाना था।

इस कारण मीराँ की कुटिया साधु सन्त और संसारियों का एक समान तीर्थ बन गई थी। द्वारका के कृष्ण का दर्शन करनेवाला कोई भी भक्त गिरिधर नागर की मीराँ का दर्शन किए बिना वापस नहीं जाता था। दो दशकों पूर्व वृन्दावन से निकली हुई भक्तमंडली में से मात्र अति वृद्ध गुजराती और बूढा होते हुए बावड के सिवाय कोई न था। गुरु गोसाईं प्रभु के चरणो में समा गए थे परन्तु जीवन के अनेक दुःखों से जले हुए स्त्री-पुरुष द्वारका मे जमी हुई मीराँबाई की कुटिया मे शान्ति पाने को यदाकदा आते रहते और मस्त होकर अपने स्थानो को लौटने लगते।

एकान्त की अनुचित माँग करनेवाला साधु भी इसी प्रकार से आया था।

मीराँबाई से जुदा होने के बाद उसके पैर आनन्द मे नाचने लगे। वर्षों से छिपाकर रक्खा हुआ, कल्पित, आनन्द रोके हुए मतवाले की तरह अन्तराय दूर होते ही तूफ़ान में बहने लगा।

साधु साधु न था। श्री एकलिंगजी के मन्दिर में बैठनेवाला एक संसारी था। राणा विक्रम उसकी विद्वत्ता के आगे सिर झुकाता था। उसकी प्रभा में तल्लीन होकर उसने आग्रह करके उसे एकलिंगजी में रक्खा था, गुरु के रूप में स्थापित किया था। एक दिन उसने मीराँबाई का भजन सुना और स्वयं मीराँबाई मे लीन हो गया।

इसके बाद मीराँबाई के पीछे पीछे, परन्तु कोई देख न सके इस तरह दूर दूर, वह 'साधु' रहने लगा। उसके हृदय मे मीराँबाई की प्रतिमा बैठी, किन्तु उल्टी बैठी। विक्रम के मन की अशान्ति और अपने हृदय की अशान्ति एक ही साथ मिटाने के लिए मीराँबाई के पास जाती हुई एक सन्त मंडली में एक दिन भगवाँ पहनकर वह 'साधु' महाराज मिल गया...

भजन मंडली में भजन गाता जाता है। कठोर शैया पर सोता है। मन्दिरों मे मीराँबाई के साथ साथ फिरता है। उनकी किसी भी आवश्यकता

के लिए सबसे पहले, अरे वायव से भी पहले वह दौड़ता है। उनकी पूजा के समय नियमित फलफूल वह ला देता है और जहाँ तक ध्यानमग्न मीराँ अपने हँसते गिरिधर गोपाल की पूजा न कर ले तब तक कोने में बैठकर देखा करता है—हसते गिरधारी को नही, मीराँ को। तीन तीन वर्षों की निकटता से उसका मन ठीक नही हुआ। मीराँ की ढलती हुई प्रौढ़ावस्था उसकी आँखो के सामने से अदृश्य हो जाती है। मीराँ की अद्भुत आवाज़ के आकर्षण में वह सब कुछ भूल जाता है। हृदय का ताप बढ़ता जाता है, सहन करने की शक्ति है। सहन किया करता है। परन्तु उसकी भी सीमा आ गई है। आखिर एक दिन मौका पाकर वह कह ही देता है... उसी तरह जैसे पहले कहा था।

× × ×

अत्यानन्द में 'साधु' महाराज यथाशक्ति अपने आप को दुरुस्त करते हैं।

समय होता है और आखिर एक विधवा स्त्री आ कर कहती है—

"बाई आपको बुलाती हैं।"

"एकान्त में?" हृदय के आवेश को रोकते हुए जरा विनोदपूर्ण ढंग से धीमी आवाज में साधु बोला।

स्त्री ने जवाब नहीं दिया। साधु को लेकर चलने लगी। साधु के हृदय में आनन्द और घबराहट संघर्ष करने लगे। थोड़े ही क्षणों मे उसकी वर्षों पुरानी मनोकामना सिद्ध होने वाली थी और साथ ही अपने शिष्य राणा विक्रम के संतप्त हृदय को शान्ति मिलने वाली थी—या मीराँ के लिए जैसे कुछ वह समझता था वह सब ठीक था। राणा को बात सत्य हो यह कोई ऐसी वैसी बात नहीं थी। बहुत बड़ी बात थी—ख़ास तौर से राणा के लिए।

इस एक ही प्रसंग से राणा समूचे मेवाड़ को तमाचा लगा सकता था।

परन्तु साधु ज्यों-ज्यों मीराँ के पास आता गया त्यों-त्यों आनन्द ने नहीं, घबराहट ने उसके हृदय पर विजय प्राप्त कर ली। यहाँ तक कि मीराँ को देखते

ही वह मूढ़ की तरह स्थिर हो रहा। किसीने, मानो औरों की तरह उसको भी पैरों में कीलें ठोक कर जमीन पर स्थिर बना दिया हो।

कारण साफ था।

सन्त साधु और भजन गाने वालों की विशाल मंडली से घिरी हुई मीराँ बाई बैठी थीं और उनके बीचोंबीच मीराँ बाई के सम्मुख एक सुन्दर मृगचर्म बिछाया पड़ा था। साधु को खड़ा हुआ देखकर मीराँबाई खड़ी हुई और बहुत आदर सत्कार पूर्वक साधु को मृगचर्म की शैय्या दिखाते हुए एक आसन पर बिठाते हुए अत्यन्त विनीत भाव से, किन्तु निर्मल हास्य बिखेरते हुए बोली:—

"कहो साधु महाराज क्या आज्ञा है? सेवा करने को मै तैयार हूँ। विश्वास रखना यह एकान्त ही है!"

"यह...एकान्त?"

दिग्मूढ़ बना हुआ साधु अस्थिर जीभ से बोला। उसकी आवाज उसके गले से बाहर निकली इस की उसे संज्ञा न रही।

"महाराज! मैंने एकान्त ढूँढने का बहुत प्रयत्न किया।"

मीराँ इस तरह कहने लगीं जैसे किसी नाजुक बात को कोई बड़ा बूढ़ा समझा रहा हो। "परन्तु जहाँ जाऊँ वहीं कन्हैया की मूर्ति बड़ा स्वरूप धारण कर मेरे सम्मुख आ खड़ी हुई। और ज्यों ही मैं अकेली हुई त्यो ही स्वरूप और विशाल बनने लगा आखिर जब इस साधु मंडली मे बैठी तब यह मूर्ति अनेक छोटे स्वरूपो मे भक्तों के हृदय में अदृश्य हो गई। अब, मुझे एकान्त है आज्ञा कीजिए।"

एकान्त जैसा शब्द, एकान्त जैसी माँग, भक्त लोगो के, प्रभुमय जीवन बिताने वालों के बीच क्या क्या कर सकते है इसे साधुने कदापि अनुभव न किया था—अब अनुभव किया। उसकी आंखो की शर्म ने उसे जीवित ही मार डाला। विद्वान् था। बुद्धि ने उसे मर्माहत घाव करके छेद डाला। अपने आप पर उसे एकदम घृणा हुई। इस स्थिति से निकलने की उसको व्याकुलता

हुई। आखिर उसकी नीची निगाह मीराँ के पैरो पर पड़ी ।

वह खड़ा हुआ और उसने अपना सिर तथा अपना निजत्व मीराँ के चरणों में झुका दिया।

"क्षमा करो देवी, क्षमा करो, रक्षा करो, रक्षा करो।" कहते कहते उसकी आँखों और उसकी आवाज ने उसके रोते हुए हृदय को बाहर खींच लिया। मीराँ ने शीघ्र उसका सिर ऊँचा उठाकर के अपने दोनो हाथों मे ले लिया। जैसे निर्मल प्रेमभरी अगाध गंगा, अनेक प्रकार की गंदगियो को धोती सबको पवित्र बनाती हुई प्रवाहित होती रहती है, उसी प्रकार साधु के हृदयको धोती हुई मीराँ की प्रेम भक्ति बहती रही।

"मेरे पैर चूम कर मुझे पाप मे न डालें साधु महाराज। मै तो सेवा करने वाली हूँ।"

अचानक उसकी दृष्टि पुनः अपने पैरों पर गई। उसने देखा कि बाघड़ का सिर उसके पैरों में पड़ा था। उसने साधु को छोड़ कर बाघड़ को उठा कर खड़ा किया।

मीराँ स्नेहपूर्वक अपने जंगली भाई को देखती रही।

साधु के प्रज्ञाचक्षु खुल गए। वह मीराँ और बाघड़ की आँखों की तरफ़ देखता रहा। उनमे क्या था वह उसे समझ सका। जन्म जन्मान्तर के पर्दे उसकी दृष्टि के सामने से हट गए। मैं, तू, स्त्री, पुरुष से परे ऐसे शुद्ध उन्नत प्रेम का आभास उसे जान पड़ने लगा।

प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे
मने लागी कटारी प्रेमनी।

उस गुजराती ने बाघड़-मीराँ को देखते हुए, उस साधु को देखते हुए मीराँ का एक भजन शुरू किया। मीराँ ने समीपवर्ती कुटिया में हँसते हुए गिरिधारी की तरफ़ मुँह किया और भजन में साथ देने लगी। मीराँ के साथ साथ साथ मँजीरे और एकतारे गूँज उठे। दूरी पर खड़ा एक भरथरी रावण

हत्थे× के साथ जम गया, नज़दीक बैठे हुए ब्रह्मचारी बाबा भी चिमटे ले कर आ बैठे। डाक, डमरू, मृदंग कौन जाने कहाँ से इस प्रशान्त रात्रि में आ पहुँचे और भजन में बहते हुए प्रभुमग्न मीराँ के पतितपावन प्रेमरस का भजन-गायक आस्वादन करने लगे।

जल जमुनामाँ भरवा गयां ताँ,
हती गागर माथे हेमनी रे...
काचे ते ताँतणे हरिजीए बाँधी.
जेम खेंचे तेम तेम नी रे..
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर,
शामली सूरत शुभ एमनी रे...

भजन, राग और भक्ति के अनुराग की धूम मची। स्थान को भूल कर कुछ देर के लिए भक्तजन किसी दूसरी ही दुनिया का अनुभव करते हुए डोलने लगे। आखिर भजन पूरा हुआ। और, भजन के अन्त में साधु ने स्फुट स्वर में उच्चारण किया :—

"मीराँबाई की जय।"

तुरन्त, वाघड़ ने, गुजराती ने और समस्त मंडली ने एक आवाज़ से जवाब दिया :—

"मीराँबाई की जय! मीराँबाई की जय!

"अरे रे!"

मीराँ बाई सब को रोकते हुए एक दम घबरा कर कह उठीं—"जय किसकी बोली जाती है? मेरी? जो स्त्री जिन जिन को सुखी करना चाहती थी उन्हें नहीं कर सकी, उसको? भक्तजनों मैं तो अभागिनी हूं..रंक हूँ...

× एक वाद्ययंत्र

अशक्त हूं। मेरी जय बोलने में या बुलवाने मे भारी पाप है..." कहते कहते मीराँ बाई गद्गद् हो गई और एकाएक आवेश मे आकर कहने लगी :—

बोल मा बोल मा बोल मा रे
राधाकृष्ण बिना बीजुं बोल मा रे।
साकर शेरडी नी स्वाद तजी ने,
कडवो ते लीमडो घोल मा रे।
चाँदा सुरजनुं तेज तजीने,
आगिया संगाथे प्रित जोड़ मा रे।
हीरा रे माणेक झवेर तजी ने,
कथीर संगाते मणी तोल मा रे।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर,
शरीर आप्युं समतोल मां रे

मीराँबाई आवेश में गाती रही और भक्तमंडल भी ऐसे ही आवेश में डोलता रहा, साधु भी डोलता रहा।

परन्तु मीराँबाई के आवेश में इस समय गहरी वेदना थी ! भारी वेदना...

× × ×

नीचा सिर करके मीराँबाई अकेली बैठी थी और मीराँ का नन्हा गिरिधारी हँस रहा था...भजनमंडली बिखर गई थी। साधक और अन्य भक्त अपने अपने ठिकाने लग चुके थे। केवल मीराँ अकेली अपनी कुटिया में बैठी थी—हृदय में असीम वेदना का अनुभव करती हुई।

वह विचार करती थी; साधु ने उसकी जय बोली थी और लोगों ने घोषणा कर दी।

किसलिए ?

जयघोष मीराँ ने पहले न सुनें हों यह बात नहीं थी, परन्तु आज का जयजयकार उसके हृदय को भेदकर गहरा घाव कर गया था और उसकी वेदना वह अनुभव कर रही थी।

मीराँ गहरे विचार में पड़ी।

धीरे धीरे उसकी आँखें भीनी होने लगीं। उसने शान्ति से मस्तक ऊँचा किया और आतुर नयनों से गिरिधारी को देखा।

परन्तु...

अपनी जय से उसके हृदय की आग को शान्त करेगा—और हँसते हँसते, यह नटवर, उसे भगाता हुआ, थकाता हुआ, कष्ट देता हुआ गोलोक ले जायगा। परन्तु रे दैव! यहाँ तो उल्टी बात होती जाती है। लोग उसे पूजने लगे हैं—उसकी जय बोलते हैं।

प्रभु के प्रति उसकी एकनिष्ठ भक्ति और प्रेम का अन्त यह?

न हो, न होना चाहिए।

मीराँ जगत् का कल्याण चाहती थी, परन्तु जगत् का कल्याण करने निकली नहीं थी। वह तो अपने प्रभु को ढूँढने निकली थी।

दो दो दशकों के बाद भी उसका हृदय आज उतना ही बेचैन होने लगा, जितना अपने गिरिधारी के साथ छोटी उम्र में विवाह करने के बाद हुआ था। मीराँ को बड़ा क्षोभ हुआ, बड़ी दीन हुई-सी गिरिधारी को देखती रही......

इतने में, कुसमय मे, उसके जैसे किसी अकेले पड़े हुए दुःखी पपीहे ने पीयु! पीयु! की रट लगाई...धीरे धीरे...रह रहकर...मीठे दर्दभरे स्वर में बोलता रहा। मीराँ उसे सुनती रही और हँसते गिरिधारी को भी देखती रही...उसका हृदय त्रस्त हो उठा...सचमुच 'यही हो' उसके मन को क्षुब्ध कर उसके हृदय पर आक्रमण करने लगा। थोड़ी-सी देर कुटिया की नन्हीं बारी के बाहर एक वृक्ष की तरफ़ मीराँ देखती रही। वृक्ष पर कोई पक्षी न

दीख पड़ा; परन्तु उसकी आवाज़ उसके कोमल हृदय को चीरती हुई, अनेक मधुर संस्मरण जगाती हुई सुनाई देती रही। मीराँ ने गिरिधारी की तरफ निराधार होकर देखा और उसकी आंखों मे आँसू छलक आए। आर्द्र स्वर से मीराँ फिर वृक्ष की तरफ़ देखकर कहने लगी :—

पपइया रे पिव की वाणी न बोल।
सुणि पावेली विरहणी रे थारी रालैली पाँख मरोड़।
चोंच कटाऊँ पपैया रे ऊपर कालो र लूण।
पिव मेरा मै पीव की रे तू पिव कहै स कूण।

उसने प्रत्युत्तर मे आशाभरी आँखों से गिरिधारी की तरफ़ देखा; परन्तु उसने सहानुभूति में एक भी अक्षर का उच्चारण न किया। इतने वर्षों मे उसके गिरिधारी ने हँसने के सिवाय एक भी काम किया होगा जो वह बोलता?

निराश मीराँ वृक्ष की तरफ़ मुँह करके आगे कहने लगी :—

थारा सबद सुहावणाँ रे जो पिव मेलाँ आज
चोंच मँढ़ाऊँ थारी सोवनी रे तू मेरे सिरताज॥

जवाब मे पपीहे ने नहीं, परन्तु एक कौवे ने आकर 'काँव काँव' करना शुरू किया। मीराँ ने कौवे की तरफ़ आशा भरी आंखों से देखा और बहुत नम्र वाणी से बोली —

प्रीतम को पतियाँ लिखूँ रे कागा तूँ ले जाय।
जाइ प्रीतम जाँसूँ यूँ कहै रे थारि बिरहण धान न खाय।

परन्तु 'धान'* न खानेवाली विरहिणी की जरा भी परवाह किए बिना कौआ उड़ गया। मीराँ ने कुछ क्षणों तक उड़ते हुए कौए को तरफ़ देखा— इसी हँसते गिरिधारी की तरफ़। उसका गला भर आया—रो पड़ी।

* अन्न

मीराँ दासी व्याकुली रे पिव-पिव करत बिहाय।
बेगि मिलो प्रभु अंतरजामी तुम बिन रह्यो न जाय ॥

गाते गाते मीराँ प्रभु चरणों मे लुढ़क गईं। हाथ की माला हृदय से लगाकर मीराँ पडी रहीं......

बहुत देर तक मीराँ ने माला को फिर हृदय से लगाया। आँखों से लगाया और नीचे रख दिया।

यह सच है कि मीराँ को अन्न नहीं भाया। औरों को आश्वासन देने वाली आनन्दमग्न बनानेवाली मीराँ कभी कभी ऐसी बेचैन बन जाती और इतनी बेचैन बनती कि उसे किसी प्रकार चैन नहीं पडता। हृदय मे पड़ा हुआ प्रकाश उसे थोडा भी दिलासा नहीं देता तो संकटों मे से जीवन को खीचती हुई मीराँ जगत् की शीत में ठिठुर जाती, मर जाती।

परन्तु मीराँ जीवित थीं दु खों पर हँसकर दुःख का परिहार करके, दुःखी जगत् को हँसाकर......

बीस बीस बरसों से उसका प्रभुप्रेम भरा हास्य वैष्णवों को चेतना देता आया था। जिसकी थकान उसे मालूम न होती थी, परन्तु उसके शरीर को मालूम होती थी। मीराँ की आत्मा को धारण करनेवाला देह, जवानी खोकर ढलती प्रौढ़ावस्था की अशक्ति का अनुभव करता था। कठोर ग्रीष्म मे तपने का, कठोर शीत मे ठिठुरने का, और भीषण वर्षा में भीगने का उसे अभ्यास था, परन्तु जीवन के नियमित पोषण बिना ज्यो का त्यो रहने की शक्ति अब घट गई थी। उपवास व्रतादि में हृदय और मन को प्रफुल्लित करनेवाली मीराँ शरीर को बिल्कुल दुर्बल करने लगी थीं।

हमेशा की तरह मीराँ, आज, गिरिधारी की तरफ़ देख रही थीं तभी उसकी दृष्टि अपनी देह पर पडी। मीराँ गौर से देखती रहीं। दुर्बल देह की झुर्रियाँ उन्होंने देखी। अशक्ति के कारण काँपती हुई ऊँगलियाँ उन्होने देखीं और फिर दुबारा गिरिधारी की तरफ़ देखा; परन्तु गिरिधारी के सुख-हास्य

को देखकर उसके होठो पर भी हास्य आया! अगणित बार देखे हुए मुँह को प्रेमदीवानी मीराँ उसी तरह देखती रही मानो पहली ही बार देख रही हो और धीरे धीरे...मन्द हास्य से मन्द मन्द गाने लगी :—

जूनूँ थयुँ रे देवल जूनुँ थयुँ,
मारो हंसलो नानो ने देवल जूनुँ थयुँ,
आरे काया रे हंसा, डोलवाने लागी रे,
पड़ी गया दाँत माँयली रेखुँ तो रह्युँ। मारो।
तारे ने मारे हंसा प्रीत्युँ बँधाणी रे,
उडी गयो हंस, पींजर पड़ी रे रह्युँ। मारो।

"बहिन!"

भजन को रोकती हुई बाघड़ की धीमी आवाज आई। मीराँ ने पीछे की ओर देखा, द्वारकाधीश जाने का समय हो आया था। रोज के नियमानुसार मीराँ को लेने बाघड़ कभी का चुपचाप आ खड़ा हुआ था। मीराँ के उपर्युक्त शब्दों ने नम्र बने हुए बाघड़ की आँखें छलका दी थीं। मीराँ ने स्नेह से बाघड़ को अपने पास बिठाया और कहने लगी :—

बाई मीराँ कहे छे प्रभु गिरधर ना गुण,
प्रेमनो प्यालो तमने पाऊँ ने पीऊँ।
मारो हंसलो नानो ने देवल जूनुं थयुं।

अन्तिम पंक्तियाँ बाघड़ और बाघड़ जैसों को उद्देश्य करके मीराँ बोली थी...परन्तु उत्तर में बाघड़ चुप रहकर फूल, चावल और मंजीरे लेने को उठा...द्वारकाधीश के दर्शन करने।

...अलबत्ता आज उसका हृदय भारी हो गया।

प्रभुप्रेम का यह प्याला उसने पहली बार नहीं पिया था...मीराँ बाई ने

अनेक बार उसे प्याले पिलाए थे। उसे ही नहीं उसके जैसे शत-सहस्रों को।

और यह प्रेम भला था कैसा ? मैं, तू, स्त्री, पुरुष, आज, कल, जड़, चेतन सब से परे परन्तु सबका स्पर्श करने वाला, परब्रह्म के साथ एकता साधने के लिए सुषुप्त आत्मा को जाग्रत करता हुआ, अवर्णनीय आनन्द में नाचता हुआ और नचवाता हुआ प्रेम...मीराँ के हृदय मे से गूँजते हुए भजनों में सुनाई देने वाला, गिरिधर गोपाल के अहर्निश हास्य मे दीखने वाला, अनेक सुभग आत्मा मे अनुभव होने वाला. सच्चे और पूरे भक्तों ने उसे अनुभव किया था...अलबत्त, मीराँ बाई के भजन गाते गाते और सुनते सुनते।

और इससे अकेला बावड़ नहीं, अकेला साधु नही, अकेला द्वारका नहीं समस्त गुजरात बहुत ही तेजी से मीराँ के प्रेमगीतों से गूँज उठा था। गुजरात और गुजरात से बाहर राजरानी मीराँ, प्रेमभक्ति से वैष्णवों के चक्षु भीने करने लगी और इन आँसुओं से ज़हर, वैर और निर्दयता मानो जगत् से चली जाने लगी। कायरों और डरपोकों के हृदय में नवशक्ति जाग्रत हुई। तुलसी की माला फेरने वाला तलवार हाथ मे न लेता परन्तु तलवार वाला कंठों मे तुलसी माला ग्रहण करने लगा। यहाँ तक कि राणा कुंभा और राणा साँगा के कुल की पुत्रवधू थोड़े ही वर्षों में मेवाड़ियों के हृदय पर सबसे अधिक प्रबल अधिकार जमा बैठी।

मेवाड़के गाँव गाँव और घर घरसे मीराँ के भजन बहने लगे। और ज्यों ज्यों वे बहने लगे, ज्यो ज्यो उनकी ध्वनि अनेक गुनी बनकर आबालवृद्ध के मुख से बाहर आने लगी त्यों त्यों राणा का मन उन्मत्त दशा को प्राप्त होता गया। मीराँ का नाम लेने वाले को वह तिरस्कार करता ही था, अब मीराँ का भजन गाने वाले को वह मारने लगा और उसका भक्त बनने वाले को... मरवाने लगा।

ईश्वर ने पानी बनाया है जीवित रहने के लिए परन्तु वही पानी मनुष्य के प्राण हरण करता है। जो पंचतत्त्व शरीर को बनाता है और जिलाता है वही

उसका नाश करनेके लिए शक्तिवान् है। जो प्रभुकी प्रेमभक्ति एक तरफ असंख्यों की आत्मा को ऊपर उठाती थी, वही दूसरी ओर राणा की आत्मा को कालिख लगाने लगी। हृदय मे रात दिन दहकती हुई घृणा की होली राणा को ही सुलगाने लगी। रस्सी भले ही ऐंठ न छोड़े परन्तु जलकर भस्म तो हो ही जाती है न? परन्तु राणा ने भस्म होने से भी इन्कार किया। मरा नही, परन्तु मीराँ के प्रति अधमतम होकर घृणा का घृणित दृश्य बनाने के लिए जिन्दा रहा।

बीस बीस बरस बीते, तो भी राणा ने मीराँ को न छोड़ा और मीराँ के नाम ने राणा के मन को बेचैन बनाना न छोड़ा।

मेवाड़ के दुश्मन चढ़ आए और मेवाड़ प्रदेश को जीतने लगे इसका राणा पर अधिक असर न पड़ा। सामन्त सरदारोंके सामने हुए इस आक्रमणका उसपर अधिक असर न हुआ। दुश्मनों से पीडित होती हुई प्रजा की विवशता उसने अपनी आँखों से देखी तो भी उसका अधिक असर न हुआ। उस पर टिकाऊ असर रहा एकमात्र मीराँ का। वह यही मानता था कि उसका पतन करने वाली मीराँ थी। उसकी बुद्धि, शक्ति और शरीर की निर्बलता का कारण केवल मीराँ थी। मीराँ का नाश होने पर ही उसका और उसके राज्य का उद्धार था। मीराँ का राहु दूर हो तभी उसके सौभाग्य का सूर्य चमके। उसने अपने मस्तिष्क को आखिरकार ऐसी नाजुक स्थिति मे डाल दिया था कि राज्य न हो तो बेहतर परन्तु मीराँ मीराँ मिट जाय। और यह देखने के लिए वह बिलखता रहा।

और राज्य भी मानो जाने ही को बैठा था। गुजरात का सुलतान सम्पूर्ण सैन्य सहित चित्तौड़ के समीपवर्ती किले पर टूट पड़ा। मीराँ को भूल कर राणा ने सामना किया, परन्तु उसका शौर्य निकम्मा बन गया। वह और उसके नीच सैनिक निर्माल्य सिद्ध हुए। मेवाड के सिंहासन की अपने पराक्रम से रक्षा करनें वाले कई सरदार वीरता से लड़ते हुए रणक्षेत्र पर सो गये। शेष सैनिक राणा को वहीं छोड़ कर चित्तौड़ की रक्षा के लिए चित्तौड़ आए।

सुलतान विशाल दल के साथ चित्तौड पर चढ़ आया। समय बिगड़ा। राजपूत स्त्रियों ने अन्त मे चिता मे प्रवेश किया। चित्तौड़ के कंगूरे हिले। दरवाजे टूटे और चित्तौडगढ़ सुलतान के कोप मे भस्मीभूत होने लगा।

बचे खुचे सरदारों को साथ लेकर राणा विक्रम पहाडियो मे चला गया। रानी करमैती ने अजीब धैर्य रखकर अन्य राजाओं की सहायता मँगाई—अरे ठेठ, दिल्ली के बादशाह हुमायूँ को राखी भेजी। बहिन की रक्षा करने के लिए बुलाया। परन्तु कही से भी मदद आने के पूर्व चित्तौड का पतन हुआ—केवल राणा ही के पाप से।

परन्तु पूर्वजों के पुण्य शेष नहीं हो गए थे। दुश्मन का थोडे दिनों में शमन हो गया। खास खास सरदारों के प्रोत्साहन से राणा पहाडियों से बाहर निकला और विनष्ट पृथ्वी पर पैर रखता हुआ मेवाड की कुछ वीरता और पराक्रम के सहारे चित्तौड़ में पुनः प्रवेश कर सका।

इन खास सरदारों में था वनवीर। वीरवर पृथ्वीराज की उपपत्नी शीतलसेनी (दासी) की कोख से उसने जन्म लिया था। दासी-पुत्र (पंचमपुत्र) होने पर भी वह था राजकुमार। विक्रम के अनेक दुर्गुणों से तंग आकर मेवाड़ी सरदारों ने मेवाड़ की राजगद्दी की रक्षा करने के लिए उसे प्रोत्साहित किया था। वनवीर बहादुर था। अपना स्थान जानता था। पूज्य भाव से उसने राणा की मदद की थी।

परन्तु चित्तौड जीतने के बाद सरदारो ने उसके कान मे एक दूसरी बात डाली—

किसी न किसी तरह राणा को गद्दी से दूर करो।

नीच पासवानों और पाइकों की खुशामद मे जीवन बिताने वाला राणा विक्रम क्रोध और क्लेश मे जलता और जलाता, मेवाड़ की गद्दी के लिए, निस्सन्देह अयोग्य हो गया था।

सरदार और वनवीर इसका मूल कारण जानते थे।

और इसीलिए सरदार राणा को दूर करने के लिए वनवीर को समझाने में सफल हुए.

...और वे मौका देखने लगे ।

+ + +

महाराणा विक्रम के आगमन से पहले चित्तौड़ मे और चित्तौड़ के बाहर महामारी और दुष्काल ने अपने आक्रमण शुरू कर दिए थे । प्रजा बुरेहाल निराधार बन गई थी । दुःख और मुसीबतो से बहुतों के मन चंचल हो गए थे । विरोध के स्वर, धीरे धीरे तीक्ष्ण और कटु बनकर सुनाई पडने लगे ।

सरदारो को मौका मिलता दीखा ।

आखिरकार प्रजा के प्रतिनिधियों के रूप में खास प्रमुख सरदार एक दिन एकत्र हुए और सर्व-सम्मति से निश्चय किया कि राज्य के पतन का कारण मीराँबाई का शाप है ।

+ + +

"शाप और वह मीराँ का ?" इकट्ठे हुए सरदारों का निर्णय सुनकर राणा भीषण हास्य करता बोल उठा ।

"राणाजी, आपकी प्रजा मेवाड़ की भूमि का त्याग करने को तत्पर हुई है । प्रजाजन एक स्वर से मानते हैं कि मीराँ के मेवाड़ त्याग से ही भगवान का यह कोप उतरा है । एक को काबू में किया जा सकता है, सारी प्रजा को नहीं । सदा हरीभरी रहनेवाली मेवाड़ भूमि में महामारी और अकाल हों इसे लोग दैवी शाप मानकर मीराँबाई का शाप मान बैठे हैं ।" वृद्ध सरदार रतनसिंह बोले ।

"इसलिए आप मुझे ही मनवाने बैठे हैं ?"

"ना दीवानजी !" सामन्त शिरोमणि चन्दावत वीर कर्णसिंह ने शान्ति से कहा—"परन्तु प्रजा की श्रद्धा को तोड़ना हितकारी नहीं। मीराँबाई को वापस बुलाने के लिए राजाज्ञा हो।"

"और न करूँ तो ?"

"प्रजा राजत्याग करेगी।" चन्दावत सहज कठोरता से बोले ।

"कौन रोकता है, भले ही जाय।"

इतना कहकर बिल्कुल निर्बल बना हुआ राणा महल में चला गया। परन्तु महल में प्रविष्ट होते ही रानी करमैती सामने मिली।

"बेटा, सरदार ठीक कहते हैं। प्रजा को सन्तोष दे। मीराँ को बुला।"

"राजमाता, आप भी हिम्मत खो बैठीं ? राणा दाँत कटकटाकर बोला।

"विक्रम, मीराँ को बुला।" माता ठंडी किन्तु कठोर होकर बोलीं।

विक्रम आश्चर्य से राजमाता को देखता रहा, फिर तिरस्कारपूर्वक बोला— "आज रात को जरा ज्यादा कसूंबा ले लूँगा। मा, निर्भय रहना। मेवाड़ में मेरे जीते मीराँ का प्रवेश न होगा।"

राणा इतना कह चलने लगा। राजमाता कुछ भी न बोली। राणा अपने महल मे आया। उसे देखते ही बड़ी उत्सुकता से पटरानी ने कहाः—

"महाराज पधारे हैं।"

"एकलिंगजी वाले, गुरुदेव ?"

मरते हुए आदमी में जिस तरह प्राण का संचार होता हो इस प्रकार सचेत होकर राणा बोला और झट शयन मन्दिर की ओर बढ़ा। जिनमें उसे अत्यन्त श्रद्धा है ऐसे शान्त साधु महाराज को एक छोटे से सिंहासन पर बैठा देखकर राणा उन्हें आश्चर्य से नमस्कार करके उनके पास आ खड़ा हुआ। साधु ने हँसते मुँह से आशीर्वाद दिये। राणा उनके मुँह से शब्द सुनने को

आतुर हो रहा था। वह आसपास देखकर साधु के पास बैठते हुए कहने लगा :—

"साधु देवता, अब मैं थक गया हूँ। हृदय की परेशानी दूर नहीं होती, प्रजा दुःखी है, राज्य बर्बाद है, दुश्मन चारो तरफ ताल ठोककर हुंकार कर रहे हैं। बहुत ज़्यादा दु खी हूँ महाराज। हृदय को शान्ति मिल सके ऐसा कुछ भी कहें।"

"राजन् तुम्हारी पायमाली ही मुझे दीखती है !"

"गुरुदेव !"

'हाँ राणाजी ! आपने मुझे जब से गुरू माना तब से अबतक मैं आपका शुभ ही चाहता आया हूँ ! मेरे शब्दों में श्रद्धा हो, तो मीराँबाई को वापस बुला लें।"

"आप भी ?" राणा ने मुँह फाड़कर पूछा।

"हाँ राजा ! यथा राजा तथा प्रजा। आपके पाप आपकी प्रजा भोगती है।"

"मेरा पाप ?"

"भक्त को दुःखी करने वाला भगवान को दुःखी करता है और भगवान को दुःखी करने की इच्छा वाला पापी है। तू ने प्रभु की लाडली, कृष्ण की परमभक्त मीरां को सताया है, दुःखी किया है। उनके चरणों मे सिर रख। उनका शिष्य बन।"

"मैं राणा विक्रम—मीराँ का शिष्य ?" राणा इतने जोर से बोला कि महल गूँज उठा।

"तू बन चुका है।" साधु ने हँसते हँसते कहा, "राणा तू मेरा शिष्य है। मैं मीराँ का शिष्य हूँ। इसलिये तू उनका शिष्य हो चुका। अब मीराँ से क्षमा माँगकर उनको तू यहाँ लिवा ला।"

विक्रम आँखें खींचकर साधु को देखता रहा। साधु ने उसकी तरफ दुर्लक्ष करके स्मित करते हुए देखा और आगे बोला:—

"शीघ्र जा और लिवा ला। विक्रम, पुण्यशाली रहना दैवी है, परन्तु पापी होना मनुष्यपन है। अपने पाप की क्षमा माँग। पश्चात्ताप कर और अपने पाप में छिपे हुए तेरे शौर्य, तेज और शक्ति को बाहर ला। मीरां को लाकर पाप का प्रायश्चित्त कर।" राणी करमैती बहुत गंभीर वाणी से भीतर पैर रखती हुई अन्तिम वाक्य बोली।

अबतक चुपचाप खड़ी पतिपरायणा पटरानी अधिक सहन न कर सकी। विनय, मर्यादा और लज्जा त्यागकर वह पति के पैरों से लिपट गई और रोते रोते बोली —

"अपने लिए नहीं, प्रजा के लिए नहीं, वीर पूर्वजों के लिए आप द्वारका पधारें और मीरांबाई को ले आवें।'

राणा जड़ होकर बैठ रहा।

उसने किसी की ओर न देखा। राजमाता, रानी और साधु राणा को देखते रहे। हरी भरी दिखाई देनेवाली वनश्री जिस तरह दावानल के बाद भीषण स्वरूप धारण करती है वैसी ही भीषणता राणा के मुँह पर छा गई थी। उसकी आत्मा मानो गहरी गहरी बैठकर छिपने लगी। उसने धीमे स्वर में कहा:—"जाओ, दयाराम पांडे को बुलाओ!"

"और जयमल राठौड़ को।" रानी करमैती ने कहा।

राणा जहाँ विरोध किए बिना बैठा था वहीं पीछे की तरफ सिर करके लुढ़क गया।

राणा बहुत बीमार था, बहुत अशक्त था, बहुत थक चुका था।

★

मैं, विक्रम

"नहीं जाने दूँगी ! नहीं ! नही !"
रानी ने विक्रम के दोनों हाथ पकड़ते हुए कहा ।

"दूर हट......"

रात की नीरवता को गुँजाने वाली विक्रम की आवाज काँप उठी........
"विक्रम को कोई भी न रोक पाया ।"

"एक ही बार मेरी विनती आप......"

"रानी !" विक्रम ने रानी को बीच ही मे रोकते हुए कहा, "मैंने कह दिया था कि जहाँ मीराँ, वहाँ मैं नही । इस महल में और इस धरती पर हम दोनों मे से एक का ही पैर रहेगा ।"

"परन्तु राज्य का क्या होगा ?"

"मेवाड़ को राणा की जरूरत नहीं—भगतानी की जरूरत है । तू मेरी नहीं । माँ मेरी नही । सरदार मेरे नहीं । मेवाड़ मेरा नहीं । तुम सब मात्र एक के ही हो—मीराँ के । जाओ, बने रहो उस ढोंगी भक्तिन के । बिठाओ उसे राजगद्दी पर और पूजते रहो उस पापिनी के पैर । मैं विक्रम हूँ, भोजभाई नहीं । सूर्यवंशी सिसोदिया की गद्दी रसातल को जाय इससे पहले ही मै यहाँ से दूर होना चाहता हूँ ।"

"प्राणनाथ—"

खेल

"थक गई हो ?" वह बोला ।

"ना, कन्हैया । अभी तक कहती थी कि थक गई हूँ । अब जान पड़ता है जैसे मुझ में नया जोश आया है ।"

"क्या, पुराना जोश दीखता है ?"

"नटखट ! चुप रह ! देख, देख । वर्ष खिसकते प्रतीत होते हैं । निर्जीव हृदय नई चेतना से स्पन्दन पाता है—क्या रे कन्हैया ? मुझे क्या हो गया है ?

"साठ की उमर मे बुद्धि सठिया गई है ।"

"मैं साठ बरस की हूँ ?"

"साठ नहीं तो साठ के आस पास है ।"

"पर मैं तो तीस के लगभग हूँ ! यह क्या ! देखता नहीं—देख तो इस पानी में .....''

इतना कह शान्त नदी में अपना और कृष्ण का प्रतिबिम्ब दिखाते हुए मीराँ कृष्ण को देखती रही । सचमुच वर्ष झड़ गये थे । कृष्ण गिरधारी मोटे होते हुए भी अपने मोहक बाल स्वरूप मे ही दिखाई दे रहे थे और मीराँ ! ओ हो, हो, हो, ! नन्ही, एकदम नन्ही ब्याह की उम्रवाली दीखती थी ! मीराँ अत्यन्त आश्चर्य से प्रतिबिम्बों को देखकर कहने लगी:—

"अरे ! मेरी आँखों को हो क्या गया है ? मैं कैसे बदल गई ? और तू

भी बिलकुल बदल गया ? अरे मेरे गिरिधारी, अरे मेरे नटखट !"

इतना कह मीराँ गिरिधारी से लिपट गई और कहने लगी:—

"आज मैंने तुझे पाया। जैसा सोचा था ठीक वैसा ही। जैसा देखा था ठीक वैसा ही।"

"तभी अब तक मैं मिलता न था !"

"अब तू है तो भी नहीं मिलता ! देख मेरी तरफ देख.. . मैं कितनी नन्ही हो गई।"

"तू नन्ही कब नहीं थी ? तुझे बड़ी होने की तरंग आती है !"

"मूर्ख ! बिलकुल मूर्ख ! मुझे ऐसा लगा मानो मैं बूढ़ी हो गई हूँ !"

इतना कह मीराँ हँस पड़ी।

इतना सुन कर गिरिधारी हँस पड़ा।

अचानक मीराँ को कुछ स्मरण हो आया। वह बोली:—"निर्दय ! ऐसा तेरा हँसी-ठट्ठा ? नहीं, नहीं, तू मेरे साथ खेलता है—क्रीड़ा करता है।"

मीराँ का क्रोध देखकर कन्हैया और जोर से हँस पड़ा और फिर शान्त होकर बोला:—

"जो खेलता नहीं वह आदमी नहीं। परन्तु सच्चा खेल अकेले से नहीं खेला जाता दो की जरूरत है। सखी, तू भी खेलती थी, मैं भी खेलता था। केवल तुझे तेरे खेल का ज्ञान नहीं था। मुझे मेरे खेल का ज्ञान है। बस।"

"देख, फिर तूने बातें शुरू कर दीं, हैं ?"

"तो क्या करूँ ?"

"गा।"

"ना, सखी ! गाना तेरा काम है ! मैं तो बजाने वाला हूँ।"

"तू मदारी है। सब को नचाता है, गवाता है, रुलाता है।"

"मैंने तो तुझे किसी दिन रोते नहीं देखा ?" मुँह बनाकर गिरिधारी बोला।

"हैं, तूने मुझे किसी दिन रोते नहीं देखा ? तो मैं......"

मीराँ क्रोध से उछल कर बोली। अचानक उसकी नजर पुनः एकबार पानी पर पडी। उसने बार बार देखा। ना, वह बदली न थी। अपने बाला-स्वरूप मे स्वयं मोह पैदा करे ऐसे रूप मे दीख पडती थी। उसकी दृष्टि के सम्मुख उसके बाल्यकाल के दादा आ गये। मन्दिर दीख पड़ा, मेड़ता के महल दीखे, मानो कल की ही बात हो। वह मस्त होकर, आँखें बन्द कर कुछ देर खडी रही। फिर स्मृतिचित्रों के दूर होते ही आँखें खोलकर बोलीः—
"कन्हैया, मैं कहाँ थी ?"

"तू तो मेरे पास ही है !"

"तेरे पास ही हूँ तो बता मैं इतनी देर क्या करती थी ?"

"मुझे सताती थी—मुझे खिलाती थी।" इतना कह कन्हैया ने मुरली मुँहपर रखी और धीरे धीरे चलने लगा। मीराँ ने एकदम चिल्लाकर कहा:—

"गिरिधारी ! ठहर। कहाँ जाता है ! मै कहती हूँ अब मैं थक गई हूँ—मेरे पास आ।

"तू धीरे धीरे आ, थक गई है। मैं गोपियों को बुला लाता हूँ। बहुत दिन हो गये रास खेले को।"

"खड़ा रह। जा मत। मैं आती हूँ।"

"ना। तू वहीं रह—मैं अभी आया।"

"अब भी मैं यहीं रहूँ ? ठीक.. ...यहीं रहूँगी। यहीं रहूँगी।"

"नहीं माता। पधारो, मेवाड़ !"

अचानक अनेक, अपरिचित आवाजें मीराँ को सुन पड़ने लगीं। मीराँ धीरे धीरे होश में आई। अनेक दिनों बाद आज उसे उस का गिरिधारी मिला

और अदृश्य भी हो गया। क्यों कर उसके स्वप्न टूटते थे? पर, स्वप्न तो टूटेंगे ही।

क्या, ये सचमुच स्वप्न थे?

जहाँ दुनिया कहती है, वहाँ कृष्णा कहता है, वहाँ दुनिया अनबोल है।

कौन-सा स्वप्न? कौनसा सत्य?

तन्द्रा से जाग्रत हुई मीराँ को पूर्ण रूप से भान हुआ तब उसके आस-पास मेवाड़ी घुटने टेक कर बैठ गये थे।

परन्तु, हमेशा का हँसता हुआ गिरिधारी आज उसके सामने न था।

दो दिनों पहले द्वारकाधीश के मन्दिर में मीराँ उसकी पूजा के लिए आई थी; कुटिया के एक कोने मे इन गिरिधारी की बैठक के पीछे वाघड़ और गुजराती चुपचाप बैठे थे।

मीराँ को थोड़ी ही देर में भान हुआ कि उसे लिवाने के लिए मेवाड़ी कभी के ही आ बैठे हैं और दयाराम पांडे मुखिया है।

"नहीं माता! मेवाड़ पधारो," पांडे फिर से विनयपूर्वक बोला, "आपके विना धरती सूख गई है। धरती के पुत्र कपाल पर हाथ धरे बैठे हैं। धरती के पालक तलवार छोड़ बैठे हैं। आपके विना मेवाड़ मेवाड़ न रहेगा, बदल जायगा, उजड़ जायगा, बह जायगा—पधारो माता।'

मीराँ ने पांडे की ओर देखा।

मीराँ के ओठ के एक कोने पर उनका सदैव का अमृतमय स्मित फरका। 'थकान' 'थकान' कहती रहने वाली मीराँ के स्मित में थकान का जरा भी चिह्न दिखाई न पड़ता था। उसने स्नेहपूर्वक मेवाड़ियों की तरफ देखा और फिर बोलीः—

"भाइयो! राणाजी से मेरा नमस्कार कहना। पृथ्वीपाल का धर्म है रक्षा करना। राजा राजत्व खो दे तो तीनों लोकों में उसे ठौर नहीं और यदि उसका

मूल कारण मैं होऊँ तो मेरे जैसा कोई पापी नहीं। राणाजी को मेरी विनती है कि चित्त प्रसन्न रखकर, हृदय में प्रभुप्रेम का संचार कर अपना धर्म पालन करें.... .राज्य करें।"

"आपके क्षमा किये बिना राणा से राज्य न होगा, आपको पधारना होगा।"

एक आदमी ने मीराँ के चरणों मे सिर झुका कर आर्द्र कंठ से याचना की।

'भाई, भाई!' कहते कहते मीराँ ने पैर पीछे खींच लिये और झुकने-वाले का शीश पकड़ लिया। झुकने वाले ने झट ऊपर की ओर देखा और बोला,

"पहचाना बहिन? मेवाड की रक्षा के लिए मैंने तुम्हें वचन दिया था। मेवाड़ की रक्षा के लिए राणाने मुझे विशेष रूप से बुलावा दिया है। पापी को तो पाप भोगने से ही छुटकारा है; परन्तु मैं अपना वचन पालने के लिये आया हूँ। पधारो मेवाड़। तुम्हारे चले बिना मेवाड़ की गद्दी सुरक्षित नहीं।"

अपने मुँह को छिपाने वाला दुपट्टा हटाते हुए जयमल बोला।

"हरि! हरि! गिरिधारीलाल की लीला है, जयमल! अपने भक्त भाई को आश्चर्य से देख कर बहुत प्रेम से निहारते हुए मीराँ ने कहा, "भाईजी! गिरिधारी के बिना मैं मेवाड़ कैसे आऊँ?"

"तो गिरिधारी को लेकर चलो। तुम्हें लिवाये बिना मैं जाऊँगा नहीं। भाई के रूप मे नहीं, राठौड़ राजपूत के रूप में वचन दिलाकर आया हूँ कि मीराँबाई की देह सजीव होगी तो उनको लेकर ही मेवाड़ आऊँगा।"

"भाई, गिरिधारी की आज्ञा के बिना मैने यहाँ से न जाने का निश्चय किया है।" मीराँ ने सिर नीचा करके कहा।

"तो गिरिधारी की आज्ञा ले आओ, परन्तु जिनके बिना सारा मेवाड़ दुःखी है उन्हे लिये बिना मैं यहाँ जा न सकूँगा।"

मीराँ सिर ऊँचा कर जयमल के शब्दों को सुनती रहीं।

जाना या न जाना ? अपने एक जीव के खातिर ये लोग कहते है सारा देश दुःखी होता है, परन्तु उसे उसका गिरिधारी आज्ञा देगा ? किस तरह देगा ? फिर उसने जयमल के शब्द सुने—

"गिरिधारी की आज्ञा ले आओ।"

हाँ हाँ ! क्यों नही ? पूरे जीवन भर इसने कन्हैया से अपने पास आने की ही याचना की थी और वह नहीं बोलता। आज उससे अपने गमन की याचना करने से—कदाचित् उसका गिरिधारी गोपाल बोले तो ?

आशा भरी मीराँ धीमे से खडी हुईं। वाघड ने तुरन्त दौड़कर सहारा दिया।

"भाइयो। तो मैं गिरिधारी की आज्ञा ले आती हूँ। मधुर हास्य बिखेरते हुए मेवाड़ियों की तरफ देखकर मीराँ बोलीं।

"पधारो !" जयमल और पांडे साथ ही बोल उठे।

"चलो द्वारकाधीश, वाघड भाई !" मीराँ ने उत्साहपूर्वक वाघड़ की तरफ़ देखकर कहा। वाघड नियमानुसार शीघ्र फूल, चावल और मंजीरा लेकर तैयार हुआ। एक तरफ वाघड़ और दूसरी तरफ अतिवृद्ध गुजराती के सहारे से मीराँ धीरे धीरे जयमल और मेवाड़ियों के साथ चलने लगीं. ....

द्वारकाधीश की ओर।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर

छद्म वेष मे आये हुए मेवाडी प्रभु के दर्शन कर मन्दिर के बाहर आ खड़े हुए। मीराँबाई स्नानादि से निवृत हो स्वच्छ वस्त्र पहनने लगीं। छापा, तिलक और मालाएँ ग्रहण कीं। और वृद्ध पुजारियों ने उनके मंजीरे और नन्ही तंबूरी लाकर दी।

मीराँबाई मन्दिर के गर्भद्वार में गईं और उसकी इच्छानुसार पुजारी उसको भगवान के साथ अकेली छोड कर खडा......

......मीराँबाई ने एक दीर्घ-श्वास लेकर मूर्ति की ओर दृष्टि गडाई। द्वारकेश के पास ही गिरिधारी सदैव की तरह हँसता खडा था—मनोहर मूर्ति द्वारकेश का बहुत छोटा स्वरूप बन कर।

"गिरिधारी!" कहने से पूर्व ही तो मीराँबाई की आँखें छलक पड़ीं। आवाज बन्द हो गई। थोडी देर उन्होंने व्यर्थ प्रयत्न किया; परन्तु शब्दोच्चार न हुआ। धीरे धीरे उन्होंने चन्दन अर्चन किया। पुष्पमाला धारण कराई। नैवेद्य चढ़ाया और फिर धीमे धीमे, कँपती हुई उँगलियों से मंजीरे पकड़ कर, और दूसरे हाथ से एकतारे के तार कँपाने शुरू किये।

बहुत धीरे धीरे, लेकिन लय जमने लगी। मंजीरे और एकतारा अशक्त मीराँ की देह मे चैतन्य प्रकटाने लगें। धीरे धीरे उनके श्रमित अंग डोलने लगे। उनकी थकी हुई आँखों में चमक आने लगी।

लय बढ़ने लगी। ध्वनि अधिक स्पष्ट होने लगी।

मीराँ के हृदय मे मस्ती उछलने लगी।

देखते ही देखते वृद्धावस्था मानो मिट गई। अशक्त अंग अजीब स्फुरणा से डोलने लगे।

मीराँ की आँखें, मीराँ का हृदय, मीराँ की आत्मा भगवान की तरफ झुके। उनकी रुँधी हुई आवाज मुक्त हुई और ओठों द्वारा बाहर आने लगी—हृदय के एक एक स्पन्दन से कंपित होती हुई, हृदय की एक एक ऊर्मि का स्पष्ट स्वरूप बनती हुई :—

बंसीवारा आज्यो म्हारै देस,
थारी साँवरी सुरत व्हालो वेस॥

आऊँ आऊँ कर गया साँवरा,
कर गया कोल अनेक।

गिणताँ गिणताँ घिस गई म्हारी,
आँगळियाँ की रेख॥१॥

भगवान ने जवाब न दिया।

मीराँ की आवाज और अधिक स्पष्ट हुई :—

मै बैरागण आदि की जी
थारे म्हारै कदको सनेस।

बिन पाणी बिन साबुण साँवरा,
होय गई धोय सफेद॥२॥

भगवान ने जवाब न दिया।

मीराँ अधिक विवश हुई :—

जोगण होय जंगल सब हेरूँ
तेरा नाम न पाया भेस।
तेरी सुरत के कारणे
म्हे धर लिया भगवाँ भेस ॥३॥

भगवान ने न बोलने का ही निश्चय किया था।

मीराँ का हृदय एकदम तड़फ उठा :—

मोर मुगट पीताम्बर सोहै
घूँघर वाला केस।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
दूणो बढै सनेस ॥ ४ ॥

गिरिधारी न बोला सो न ही बोला।

"गिरिधारी!" पुन. कहते कहते मीराँ की आँखें फिर छलक पड़ीं। वियोग की असह्य पीड़ा विदा का नाम जीभ पर लाने से पहले मीराँ अनुभव करने लगी। गद्गद् स्वर मे मीराँ कहने लगी —

"बुलावा आया है, मुझे। क्या करूँ कन्हैया? जिन्दगी बिता दी मैंने, तुझसे मिलने को। किन्तु मैं मूर्खा रोती रही और तू प्यारे हँसता रहा। मुझे आखिर तू न ही मिला। क्या तू ज्यो का त्यो रहेगा? मेरे नाथ, सुना है तू कलिकाल मे झट प्रसन्न होता है......परन्तु कहाँ है तू? कहाँ है? जिन्दगी बिता दी तेरी रट में। सर्वस्व भूल गई तेरे प्रेम मे - तो भी गोपाल तू दूर का दूर! मौत मेरा अन्त नहीं लाती। तेरा प्रेम मेरी लगन नहीं छूटने देता। बोल मेरे नाथ, अब मै क्या करूँ? बोल मेरे नाथ, एक बार बोल, एक बार कृपा कर। एक बार हँस कर कह कि 'तू हारी', बस! गरीबो के मीत! निर्दोष और गरीब भटकते फिरते हैं। अनाचार और अत्याचार उनका रुधिर चूस रहे

हैं। पापी आगे बढ़ते हैं और सदाचारी कुमौत मरते हैं । किसलिए नाथ ! रास्ता दिखा ! आ ! बोल ! अब बोल ! और विदा दे !"

कहते कहते मीराँ आवेश में खड़ी हुई और द्वारकाधीश के चरण जोर से पकड़कर रो पड़ी...

"अरे ! यह क्या करती है ? खड़ी हो...खड़ी हो सखी । कहाँ थी तू ? देख तो सोलह सौ गोपियाँ तेरी कब से बाट जोहती हैं । उनके हाथ हवा में खाली तैर रहे हैं । मृदंग की बाट जोहते हुए उनके पैर थिरक रहे हैं । हवा, पानी, कदम्ब, पुष्प, पक्षी सब चुपचाप तुम्हारी बाट जोह रहे हैं । तेरे बिना सब निर्जीव हैं । गा सखी, गाना शुरू कर, गा...गा... ।"

कन्हैया की मीठी, मीठी, अति मीठी आवाज सुन पड़ी ।

मीराँ ने आँखें कुछ चौड़ी करके आसपास देखा । गिरिधारी ठीक कहता था । उसकी आँखें हर्ष के आँसुओं से भींग गईं । अरे उसके कपड़े कितने सुन्दर हैं ? कब पहने ? उसके आभूषण कितने मोहक हैं ? किसने उन्हें पहनाया ?

मीराँ ने पूछताछ न करने का निश्चय कर लिया ।

उसका गिरिधारी उसकी याचना को प्राप्त हो गया । वह मूर्खा जो ठहरी न ? व्यर्थ वियोग से व्याकुल थी । और वियोग किसका ? जिसकी उसे चाह थी वह तो उसके सामने, उसके पास था !—है ! मीराँ का हृदय आनन्द से नाच उठा । इतना 'नजदीक' होने पर भी गिरिधारी को वह अब तक एकदम "दूर" कैसे मान लेती थी ? मूर्खा ही थी ? उसने और अधिक विचार न करने का या न पूछने का निर्णय किया था । अत्यन्त आनन्द मग्न होकर वह गिरिधारी को देखने लगी ।

उसकी सदा की इच्छा के अनुसार उसके कहे बिना कन्हैया बाँसुरी बजाने लगा । त्रिभुवन को डुलानेवाली वेणु बजने लगी और अचानक अद्भुत यौवन प्राप्त करनेवाली मीराँ, मतवाली मीराँ, प्रेममयी मीराँ पलक भर में

कृष्ण के पास से सरक कर दूर खड़ी हुई । फिर शीघ्र उछलकर उसने उसका हाथ पकड़ लिया और हर्षमुग्धा होकर गाने लगीः—

म्हारा ओलगिया घर आया जी ।
तन की ताप मिटी सुख पाया
हिलमिल मंगल गायाजी ॥१॥

घन की धुनि सुनि मोर मगन भया
यूँ मेरे आणँद छाया जी ।
मगन भई मिल प्रभु अपणा सूँ
भौ का दरद मिटाया जी ॥

चंद कूँ निरख कमोदण फूलै
हरखि भया मेरी कायाजी ।

पास खड़ी एक गोपी को जोर से अपने पास खींचककर मीराँ कहने लगी :—

रग रग शीतळ भई मेरी सजनी,
हरि मेरे महल सिधाया जी ।
सब भगतन का कारज कीन्हा,
सोई प्रभु मै पाया जी ।
मीराँ बिरहण सीतल होई,
दुख दुँद दूर नसाया जी ।

और, साथ साथ ही,

सोलह सौ गोपियों के हाथ और पैर मीराँ के शब्दों का उत्तर देने के लिए एक साथ ठुमक उठे । मीराँ के पैर भी साथ साथ उठे । कदम्ब वृक्ष के

आसपास गोपियों ने रास रचा—मीराँ और कृष्ण को घेरकर। फिर तो पवन, पुष्प, नदी, पक्षी सब अपने नियमानुसार डोलने लगे और कुछ ही क्षणों में कृष्ण की बंसी ने जीव और निर्जीव को नचा दिया। नूपुर का झंकार, कंकण की खनखनाहट, कटिमेखला में उछलते हुए घुँघरू, नृत्य, गान, ताल, लय, बाँसुरी, कन्हैया, गोपी और मीराँ सबमें परम सुख की उन्मत्त स्थिति व्याप्त हो गई, जिनमें मीराँ, भगवान कृष्ण के अधिक से अधिक निकट खिंचने लगीं—आती गई—आती गई—

अन्त में हँसते हुए गिरिधर गोपाल ने मीराँ को हाथ पकड़कर अपनी छाती की तरफ खींच लिया। उसे पहले पहल तो लज्जा आई। शर्म से आँखें नीचे झुका दीं—परन्तु गिरिधारी ने उसकी लज्जा दूर की।

"आँखें खोल सखी! यहाँ कोई नहीं।"

मीराँ ने धीरे से आँखे खोलीं तो गोपियाँ अदृश्य थीं। हँसते हुए गिरिधारी ने घबराई हुई मीराँ का मुँह अपनी तरफ़ फिराया और अमृतमय हास्य बिखेरते हुए कहा—

"बोल, सखी! कहाँ जाना है?"

मीराँ आश्चर्यमुग्ध होकर कन्हैया को देखती रही।

उसके गिरिधारी का हाथ उसकी पीठ पर अधिक अधिक आने लगा—मीराँ ने भगवान के हृदय की धड़कन सुनी, उनके श्वासोच्छ्वास अनुभव किए, उनकी आँखों की पुतलियों का तेज बहुत नजदीक से ग्रहण किया—मीराँ ने गिरिधारी को दोनों हाथों मे जकड़ा—धीरे धीरे वह उनके अधिक से अधिक निकट खिंची, स्पर्श हुई, मिली—एक हो गई। अदृश्य हो गई।

फिर दिमाग को चक्कर में डालने वाली आवाजें सुन पड़ीं......

"खोलो द्वार! खोलो बाई। देवी! दर्शन करने दो..."

भक्तगण, पुजारी—और बाघड़ चिल्लाने लगे। इससे पहले जयमल और पांडे ने मेवाड़ियों को साथ लेकर गर्भद्वार पर आक्रमण शुरू कर दिया था।

आखिर—

मन्दिर के रुपहले द्वार टूटे।

जयमल, वाघड़ और पाँडे अन्दर गये। गुजराती और पुजारी व्याकुल होकर देखने लगे।

हरकोई भीतर घुसकर इधर उधर देखने लगा।

"बहिन!"

"बाई!"

"भगवती!"

भिन्न भिन्न कंठों से निकली हुई एक भी आवाज का प्रत्युत्तर न मिला।

मीराँबाई थीं ही नहीं।

तो, कहाँ गई?

"बहिन!" एकाएक वाघड चीख पड़ा। सब चौंककर उसकी तरफ़ देखने लगे। वाघड़ हाथ पसारकर द्वारकाधीश की मूर्ति को दिखाने लगा।

आँखें फाड़कर सब द्वारकाधीश को देखने लगे। द्वारकाधीश के शरीर के आसपास मीराँ की साडी लिपटी हुई थी। जयमल दौडकर साड़ी को खींचने लगा तो भीतर से सदैव का हास्य करता हुआ नटखट गिरिधर गोपाल दिखाई दिया!

मीराँ कहाँ गई?

व्यासपीठ ठोस थी। ऊपर का गुम्बज साबित था। अन्य द्वार था ही नहीं। तो फिर कहाँ गई प्रेम दीवानी, प्रेममयी मीराँ?

मीराँबाई? देवी! मीराँबाई! मीराँबाई! फिर से मेवाड़ियों की आवाजें सुनाई पड़ीं। फिर जवाब न मिला।

वृद्ध पुजारी की आँखों में आँसू उमडे। प्रेमानन्द की पराकाष्ठा अनुभव करता हुआ वृद्ध पुजारी गले से खाँसकर काँपती हुई आवाज़ में बोला:—

"किसने कहा भगवान् और भक्त अलग है? है कौन जो भक्त को भगवान् से अलग कर सके? पधारो राव! आप की बहिन आज ससुराल गईं।"

"विवाहितजी को यहाँ रख दूँ न?" आँखो के आँसू ज्यों त्यो पोंछते हुए परम वैष्णव जयमल, मीराँ के प्रिय नन्हें गिरिधर गोपाल के पास घुटने टेक कर उन्हे हाथ मे क्रीड़ा कराते हुए बोला।

शीघ्र ही सब के मस्तक द्वारकाधीश के पास जयमल के हाथ में खेलते हुए मीराँ के गिरिधर गोपाल के आगे झुक पड़े।

"भक्त भले ही जायँ; परन्तु भगवान् तुम्हे तो न जाने दूँगा।"

—जयमलने गिरिधारी को अश्रुपूरित आँखों से देखते हुए कहा।

"तभी तो भगवान ने मूर्तिरूप धारण किया है।"

—गुजराती धीरे से बोला।

सच है।

मीराँ का प्रभु गिरिधर गोपाल, नटखट, अपना हमेशा का हास्य बिखेरता हुआ प्रत्युत्तर मे सबकी तरफ देखते हुए हँस रहा था।